चित्रकला

भारतीय कला

भाग–2

कक्षा 12

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

कक्षा 12 चित्रकला

भारतीय कला भाग–2

चित्रकला

भारतीय कला

भाग–2

कक्षा–12

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

भारतीय कला भाग–2

पाठ्य–पुस्तक निर्माण समिति

डॉ. मदन सिंह राठौड (संयोजक)

प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग,

मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

लेखक

डॉ. इन्द्र सिंह राजपुरोहित

विभागाध्यक्ष, चित्रकला विभाग,

राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

डॉ. किरण सरना

प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग,

वनस्थली विश्वविद्यालय, टोंक

श्री महेन्द्र प्रताप शर्मा

व्याख्याता, चित्रकला,

राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,

नोहर, हनुमानगढ़

श्रीमती सविता सिंह गुरावा

व्याख्याता, चित्रकला,

राजकीय बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय,

आदर्श नगर, जयपुर

चित्रकला पाठ्यक्रम समिति

डॉ. मदनसिंह राठौड
(संयोजक)
कला–विभाग, यू.सी.एस.एस.एच.,
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय,
उदयपुर–313001

श्री अमित राजवंशी
राजकीय गर्ल्स महाविद्यालय,
अजमेर–305001

डॉ. बिरदी चंद गहलोत
वरिष्ठ व्याख्याता,
राजकीय उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान,
अजमेर–305001

श्री पंकज गहलोत
व्याख्याता, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
सुमेरपुर, (पाली)–306401

श्री सुनील कुमार शर्मा
व्याख्याता, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
बून्दी–323001

श्री सुबोध जोशी
व्याख्याता,
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
भिचोर, (चित्तौडगढ)–312001

प्रस्तावना

सृजन स्वयं में ही सौन्दर्य की मूल अवधारणा को समाहित किया होता है, जो कलाकार के सौन्दर्यबोध से उद्‌भासित हो कर कलाकृति के रूप में अभिव्यक्त होता है। भारतीय चिन्तन परम्परा में कला सदैव सत्यम और शिवम की अवधारणा लिए सौन्दर्य भाव से परिपूर्ण मानवीय मूल्यों की संवाहक रही है, जिसने प्राचीन काल से वर्तमान तक उन तमाम भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक विषमताओं के उपरान्त न केवल अपने मूल दार्शनिक चिन्तन को ही बचाए रखा अपितु नवाचारों को समाहित करते हुए निरन्तर विकास की ओर प्रवृत रही है। भारतीय कला परम्परा में चित्रण हो या मूर्तन, सभी में भारतीय मूल्यों को रेखांकित किया गया है, जिसमें सम्यक सौन्दर्यबोध व सामाजिक व नीतिपरक मूल्यों की अवधारणा परिलक्षित होती है। कालान्तर में आए परिवर्तनों और स्वतन्त्रता के पश्चात वैश्विक प्रभावों ने भारतीय कला और कलाकारों को एक नया दृष्टिबोध प्रदान किया, जिसके चलते आधुनिक युग में भारतीय कला को वैश्विक पटल पर एक विशेष पहचान प्राप्त हुई। कला एवं सांस्कृतिक धरोहर किसी भी राष्ट्र की सम्प्रभुता एवं सामाजिक एक्य की आधारभूत अवधारणा होती है जिसमें भावी पीढ़ी को संस्कारित करने एवं राष्ट्र निर्माण की शक्ति निहित रहती है। इस समृद्ध परम्परा, पोषण एवं सरंक्षण के आग्रह एवं रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण की आवश्यकता के दृष्टिगत शिक्षा में कला के प्रति जागरूकता और कला शिक्षा की महत्ता के अनुरूप माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा पाठ्यक्रम में आंशिक संशोधन कर विद्यालयी शिक्षा स्तर पर इसे चरणबद्ध रूप से लागू किया गया है।

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा कक्षा 12 के चित्रकला पाठ्यक्रमानुसार सैद्धांतिक प्रश्न पत्र हेतु पाठ्य पुस्तक, ''भारतीय कला, भाग–2'' को तीन इकाइयों में विभक्त कर अध्ययन सुलभ बनाते हुए विभिन्न कला खण्डों में भारतीय कला इतिहास के क्रमिक विकास को प्रस्तुत कर खण्ड – 'अ' में मध्यकालीन लघु चित्र शैलियों के उद्‌भव विकास और कलागत विषयवस्तु को अध्ययन की दृष्टि से शामिल किया गया है, वहीं खण्ड– 'ब' में स्वतन्त्रता आन्दोलन और स्वतन्त्रता पश्चात के कला रूपों को आधुनिक भारतीय चित्रकला की अध्ययन वस्तु बनाया है। चूंकि पुस्तक का प्रस्तुतीकरण काल क्रमानुसार है, अतः खण्ड – 'स' में मध्यकालीन मूर्तन एवं मंदिर स्थापत्य के विषय संदर्भ में भारतीय एवं राजस्थानी मूर्तिशिल्पों के साथ–साथ आधुनिक मूर्तिकला का विश्लेषणात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक में यथास्थान चित्र, मानचित्र व रेखाचित्र आदि का समावेश अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होगा।

छात्रों को विषय के सैद्धान्तिक अध्ययन के साथ प्रायोगिक कार्य में भी सहयोग प्राप्त हो, इस हेतु पुस्तक के अंतिम अध्याय में प्रायोगिक पक्ष की अध्ययन प्रणाली की चर्चा की गई है। चूंकि प्रायोगिक कार्य पाठ्यक्रमानुसार अध्यापक के दिशा निर्देश में सम्पन्न होता है फिर भी छात्रों को सहयोग की दृष्टि से वस्तु चित्रण प्रविधि, रंगांकन तकनीक एवं संयोजन हेतु आवश्यक निर्देशों के साथ–साथ तकनीकी शब्दावली एवं विशेष परिभाषाओं का समावेश किया गया है।

पुस्तक लेखन में सभी लेखकों ने अपने अनुभव व ज्ञान से मौलिक एवं प्रभावी लेखन प्रस्तुत किया है, इस हेतु मैं उनको हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक की भाषा यथासम्भव वैज्ञानिक, तार्किक एवं बोधगम्य रखने का प्रयास किया गया है और पुस्तक लेखन और सम्पादन में पूर्ण सावधानी बरती गई है, फिर भी मानवीय त्रुटि सम्भव है। सुधार और सुझाव हेतु सुधिजनों के विचारों का सदैव स्वागत है, जो निश्चित ही आगामी प्रकाशन में समाहित कर परिष्कृत प्रकाशन में सहायक होंगे।

डॉ. मदन सिंह राठौड़
संयोजक

अनुक्रमणिका

अध्याय	विवरण	पृष्ठ संख्या
	(खण्ड – अ)	
	इकाई – 1	
	मध्यकालीन भारतीय चित्रकला	
1	दक्खिनी चित्र शैली	01–03
2	मुगल चित्र शैली	04–12
3	राजस्थानी लघुचित्र शैलियां	13–30
4	पहाड़ी चित्रकला	31–41
	इकाई – 2	
	आधुनिक भारतीय चित्रकला	
5	कम्पनी शैली एवं राजा रवि वर्मा	42–46
6	भारतीय पुनरूत्थानकालीन कला	47–55
7	आधुनिक कला और कलाकार	56–61
8	राजस्थान की आधुनिक कला	62–74
	इकाई – 3	
	भारतीय मूर्तिकला और मंदिर स्थापत्य	
9	मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला और स्थापत्य	75–83
10	राजस्थान की मूर्तिकला व मंदिर स्थापत्य	84–94
11	आधुनिक भारतीय मूर्तिकला	95–106
12	राजस्थान की आधुनिक मूर्तिकला	107–111
	(खण्ड – ब)	
	चित्रकला प्रायोगिक	
	प्रायोगिक कार्य	112–116
	परिशिष्ट	117–125
	शब्दावली	126–130

कक्षा–12
भारतीय कला–भाग–2
विषय–चित्रकला

समय : 3:15 घण्टे | पूर्णांक: 24

क्र.स.	अधिगम क्षेत्र	अंकभार
1.	मध्यकालीन भारतीय चित्रकला	8.5
2.	आधुनिक भारतीय चित्रकला	8.5
3.	मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला एवं मन्दिर स्थापत्य	7

क्र.स.	पाठ्यवस्तु	कालांश	अंकभार
	इकाई–1 मध्यकालीन भारतीय चित्रकला		
1.	दक्खिनी चित्र शैली (**i**) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (**ii**) दक्खिनी शैली की कलागत विशेषताएँ (अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा) (**iii**) दक्खिनी चित्र शैली के प्रतिनिधि चित्रों का अध्ययन	3	1
2.	मुगल चित्र शैली (**i**) उद्भव व विकास (**ii**) मुगल शैली की कलागत विशेषताएँ (**iii**) मुगलशैली के प्रतिनिधि चित्रों का अध्ययन	7	2.5
3.	राजस्थानी चित्र शैली (**i**) उद्भव व विकास (**ii**) राजस्थान की उपशैलियों का कलागत अध्ययन उपशैलियाँ– मेवाड़–उदयपुर–नाथद्वारा, मारवाड़–जोधपुर–बीकानेर, किशनगढ़ हाड़ौती–कोटा–बून्दी ढूढ़ाड़–जयपुर, अलवर, उनियारा (**iii**) राजस्थानी चित्र शैली के प्रतिनिधि चित्रों का कलागत अध्ययन	8	3
4.	पहाड़ी चित्र शैली (**i**) उद्भव व विकास (**ii**) उपशैलियाँ (कांगड़ा–बसोहली) (**iii**) पहाड़ी शैली के प्रतिनिधी चित्रों का कलागत अध्ययन	6	2

	इकाई–2 आधुनिक भारतीय चित्रकला	4	1.5
5.	कम्पनी शैली एवं राजा रवि वर्मा (**i**) कम्पनी शैली–उद्‌भव, विकास एवं कलागत विशेषताएँ (**ii**) राजा रवि वर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व (**iii**) कम्पनी शैली और राजा रवि वर्मा के प्रतिनिधि चित्रों का अध्ययन		
6.	भारतीय पुनरूत्थानकालीन कला (**i**) बंगाल शैली उद्‌भव व विकास (**ii**) बंगाल शैली की कलागत विशेषताएँ (**iii**) बंगाल शैली के कला विचारक एवं प्रतिनिधि चित्रकार और उनके चित्रों का अध्ययन। आनन्द कैटिश कुमारस्वामी, ई.बी.हेवेल, रवीन्द्रनाथ टैगोर, अवनीन्द्रनाथ टैगोर, नन्दलाल बसु, अब्दुर्रहमान चुगतई, असित कुमार हाल्दार, यामिनी रॉय, व अमृता शेरगिल।	8	3
7.	आधुनिक कला और कलाकार (**i**) प्रमुख कला समूह (कलकत्ता कला समूह, प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप,शिल्पीचक्र) (**ii**) प्रतिनिधी चित्रकार एवं उनके चित्रों का कलागत अध्ययन। के.के. हेब्बर, एन.एस.बेन्द्रे, बी.सी.सान्याल, जे स्वामीनाथन, के.जी.सुब्रमण्यम, ए.रामचन्द्रन	6	2
8.	राजस्थान की आधुनिक कला (**i**) भूरसिंह शेखावत, रामगोपाल विजयवर्गीय, कृपालसिंह शेखावत, रत्नाकर विनायक साखलकर, बी.सी.गुई, देवकीनन्दन शर्मा, गोवर्धन लाल जोशी, पी.एन. चोयल, द्वारका प्रसाद शर्मा, राम जैसवाल व सुरेश शर्मा। (**ii**) राजस्थान की समकालीन कला का परिचय	6	2
	इकाई–3		
9.	मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला एवं मन्दिर स्थापत्य (**i**) एलोरा, एलिफेन्टा, महाबलीपुरम, कोणार्क, खजुराहो आदि मन्दिरों के मूर्ति शिल्प और चोलकालीन नटराज व अन्य धातु मूर्तिशिल्पों का कलागत अध्ययन।	6	2

10.	राजस्थान की मूर्तिकला व मन्दिर स्थापत्य (**i**) देलवाड़ा, रणकपुर, किराडू, ओसियां, आभानेरी, जगत मन्दिर (उदयपुर), बाड़ोली (कोटा) आदि मन्दिरों के मूर्तिशिल्पों का कलागत अध्ययन।	4	1.5
11.	आधुनिक भारतीय मूर्तिकला (**i**) रामकिंकर बैज, देवीप्रसाद राय चौधरी, शंखो चौधरी, धनराज भगत, सतीश गुजराल, हिम्मत शाह एवं मृणालिनी मुखर्जी।	6	2
12.	राजस्थान की आधुनिक मूर्तिकला (**i**) उषा रानी हुजा, गोपी चन्द्र मिश्रा एवं अर्जुन प्रजापति (**ii**) राजस्थान की समकालीन मूर्तिकला का परिचय।	4	1.5

कक्षा–12
चित्रकला (प्रायोगिक)

प्रायोगिक खण्ड	अंक
खण्ड–अः प्राकृतिक (फल, फूल, सब्जी, इत्यादि) तथा वस्तु चित्रण (वृत्ताकार, घनाकार व बेलनाकार) का अध्ययन	25
खण्ड–बः चित्र संयोजन	25
• सत्रीय कार्य	20
कुल अंक	70

खण्ड अः प्राकृतिक तथा वस्तु चित्रण अध्ययन
कक्षा 11 में किए गए अभ्यासों के आधार पर तथा साथ में परदे की पृष्ठभूमि में दो या तीन वस्तुओं का एक निश्चित बिन्दु से पेंसिल माध्यम में प्रकाश व छाया सहित तथा रंगीन चित्रण
खण्ड बः चित्र संयोजन
दैनिक जीवन और प्रकृति के विषयों पर आधारित काल्पनिक चित्रों का जल–रंगो अथवा पोस्टर–रंगो में वर्ण–मान सहित सृजन।

• सत्रीय कार्य
एक फाइल प्रस्तुत करना, जिसमें निम्नलिखित रचनाएँ शामिल हों–
(क) सत्र के दौरान किसी भी माध्यम में सृजित प्रकृति तथा वस्तु–चित्रण (स्टिल लाइफ) अध्ययन के पाँच चयनित अभ्यास चित्रों में कम से कम दो वस्तु चित्रण के अभ्यास चित्र हों।
(ख) दैनिक जीवन और प्रकृति पर आधारित पाँच चयनित चित्र संयोजन (कम्पोजिशन)।

परीक्षार्थी द्वारा अध्ययन के दौरान निर्मित कृतियों को विषयाध्यापक से प्रमाणित करवाकर विद्यालय के प्राधिकारियों द्वारा यह प्रमाणित कराके मूल्यांकन के लिए परीक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए।

टिप्पणी : समय–सारिणी इस प्रकार बनाई जाए कि विद्यार्थियों को एक बार में कम से कम दो कालांश तक एक साथ निरंतर कार्य करने का अवसर मिले।

प्रायोगिक परीक्षा के मूल्यांकन के लिए दिशा निर्देश

1. अंक योजना :

खण्ड–अ : प्रकृति तथा वस्तु चित्रण (स्टिल लाइफ)

(i) अंकन एवं संयोजन पक्ष	10
(ii) माध्यम/रंगों का प्रयोग	10
(iii) समग्र प्रभाव	5
	कुल 25 अंक

खण्ड–ब : चित्र संयोजन (कम्पोजिशन)

(i) संयोजन–व्यवस्था, विषय पर बल सहित	10
(ii) माध्यम (रंगों) का प्रयोग	10
(iii) मौलिकता और समग्र प्रभाव	5
	कुल 25 अंक

सत्रीय कार्य 10 X 2 = 20

(i) किसी भी माध्यम में प्रकृति तथा वस्तु–अध्ययन के पाँच चयन किये हुए अभ्यास चित्र जिनमें कम से कम दो वस्तु चित्र (स्टिल लाइफ) हो।

(ii) दैनिक जीवन और प्रकृति पर आधारित तैयार किये गये पाँच चयनित चित्र संयोजन

टिप्पणी : सत्रीय कार्य का मूल्यांकन भी इसी आधार पर किया जाएगा

2. प्रश्नों का प्रारूप

खण्ड–अ : प्रकृति तथा वस्तु–चित्रण :

अपने सामने एक ड्राइंग बोर्ड पर व्यवस्थित वस्तु–समूह का रेखांकन और चित्रण एक स्थिर बिन्दु (जो आपको दिया गया है) से 1/4–इम्पीरियल (15''X11'') आकार वाले एक ड्राइंग–कागज पर पेंसिल अथवा रंगों में चित्रण कीजिए। आपका चित्र कागज के अनुपातनुसार होना चाहिए। वस्तुओं को प्रकाश–छाया तथा प्रतिच्छाया, परछाई, सहित यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया जाना चाहिए। इस अध्ययन में ड्राइंग बोर्ड को शामिल नहीं करना है।

टिप्पणी : परीक्षा हेतु वस्तुओं के समूह का चयन बाह्य और आंतरिक परीक्षकों द्वारा संयुक्त रूप से निर्देशानुसार परामर्श करके करना है। प्रकृति तथा वस्तु–चित्रण की वस्तुओं को परीक्षार्थियों के सम्मुख व्यवस्थित किया जाए।

खण्ड–ब : चित्र संयोजन :

1/4 इम्पीरियल आकार वाले ड्राइंग–कागज पर क्षैतिज अथवा ऊर्ध्वाधर दिशा में अपनी पसंद के किसी माध्यम (जल/पेस्टल/टेम्परा एक्रैलिक रंगों) में निम्नलिखित पांच विषयों में से किसी एक पर चित्र संयोजन कीजिए। आपका संयोजन मौलिक तथा प्रभावकारी होना चाहिए। सुव्यवस्थित रेखांकन, माध्यम (रंग आदि) के प्रभावोत्पादक प्रयोग, विषय वस्तु पर यथोचित बल तथा सम्पूर्ण स्थान के सदुपयोग करने को अधिक अंक दिये जाएंगे।

टिप्पणी : चित्र संयोजन के लिए किन्हीं पांच उपयुक्त विषयों का चयन/निर्धारण बाह्य तथा आंतरिक परीक्षक निर्देशानुसार संयुक्त रूप से करेंगे और भाग खण्ड–ब की परीक्षा के आरंभ होने से ठीक पहले यहां उनका उल्लेख करेंगे।

3. (अ) प्रकृति तथा वस्तु चित्रण के लिए वस्तुओं का चयन करने के बारे में अनुदेश

1. परीक्षक ऐसी दो या तीन उपयुक्त वस्तुओं का इस ढंग से चयन/निर्धारण करें कि वस्तुओं के इस समूह में प्राकृतिक तथा ज्यामितीय रूपाकार शामिल हो।

(i) प्राकृतिक रूप–बड़े आकार के बेलबूटे तथा फूल, फल एवं वनस्पतियाँ आदि।

(ii) लकड़ी/प्लास्टिक/कागज/धातु/मिट्टी आदि से बने ज्यामितीय रूप, जैसे घन, शंकु, समपार्श्व, बेलनाकार और वर्तुलाकार वस्तुएं।

(ii) अज्यामितीय रूप, जैसे–घरेलू बर्तन एवं दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुएं आदि।

2. सामान्यतः बड़े (उपयुक्त) आकार की वस्तुओं का चयन किया जाना चाहिए।

3. परीक्षा केन्द्र के स्थल तथा ऋतु के अनुसार प्रकृति से संबंधित एक फल इत्यादि अवश्य शामिल किया जाएं। प्राकृतिक वस्तुओं की खरीद/व्यवस्था परीक्षा वाले दिन ही की जाए ताकि उनकी ताजगी बरकरार रहे।

4. चयन की गई वस्तुओं के रंगों तथा उनकी (टोन) तान के अनुरूप पृष्ठभूमि तथा अग्रभूमि के लिए अलग–अलग रंगों के दो कपड़ों को (एक गहरी रंगत में और दूसरा हल्की रंगत में) भी शामिल किया जाए।

(c) चित्र संयोजन के विषय–निर्धारण के लिए अनुदेश

1. परीक्षकों को चित्र–संयोजन के लिए पांच उपयुक्त विषयों का चयन/निर्धारण करना है।

2. प्रत्येक विषय इस प्रकार बनाया जाये कि परीक्षार्थियों को विषय का स्पष्ट बोध हो जाए और वे उनके निर्माण में अपनी कल्पना शक्ति का खुलकर प्रयोग कर सकें।
3. विषयों का चयन करने के लिए परीक्षक स्वतंत्र हैं परन्तु ये विषय कक्षा बारहवीं के स्तर और विद्यालय/परीक्षार्थियों के वातावरण के अनुसार होने चाहिए।

चित्र–संयोजन के विषयों के कुछ पहचान क्षेत्रों का उल्लेख नीचे किया गया है इनमें आवश्यकतानुसार कुछ अन्य क्षेत्रों का समावेश भी किया जा सकता है :

(I) परिवार, मित्रों तथा दैनिक जीवन के कार्यकलाप
(ii) पारिवारिक, व्यावसायियों के कार्यकलाप
(iii) खेल–कूद के कार्यकलाप
(iv) प्रकृति
(v) काल्पनिकता
(vi) राष्ट्रीय, धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक घटनाएं उत्सव एवं समारोह

टिप्पणी – समीपस्थ दृश्यजगत से किये गये रेखांकनों को चित्रों में रूपान्तरित करने के कौशल को विकसित किया जाये तथा कल्पना के आधार पर आकारों को नवीन अन्तराल व्यवस्था में पुनः सृजित करने का अभ्यास करवाया जाये, जैसे– गाते–नाचते, उत्सव मनाते हुए, पूजा करते हुए, कुएँ से पानी लाते हुए लोग। ऐसे विषयों को चित्रित करवाया जाये जिनसे विद्यार्थी का सीधा संबंध हो ; जैसे– ग्रामीण परिवेश, उत्सव, मेला श्रम इत्यादि। तीन मानवाकृतियाँ आवश्यक रूप से हो।

4. सामान्य अनुदेश :

1. वस्तु समूह को 2X2 फीट के मॉडल स्टेण्ड पर रखा जाये। मॉडल स्टैण्ड न होने की स्थिति में स्टूल/ड्रॉइंग बोर्ड पर रखा जावे। पृष्ठभूमि में उपयुक्त रंग का कपड़ा अथवा कागज लगाया जावे। वस्तु समूह दृष्टि से ऊपर न हो। मॉडल स्टैण्ड अथवा स्टूल की ऊँचाई 50 सेमी. से अधिक न हो।
2. प्रायोगिक कार्य हेतु ड्रॉइंग शीट के साथ एक सादा कागज परीक्षार्थियों को दिया जायेगा।
3. खण्ड–'अ' व खण्ड 'ब' की प्रायोगिक परीक्षा एक ही दिन में 6 घटें में सम्पन्न करवाई जाए। व्यावहारिकता की दृष्टि से दोनों के मध्य 30 मिनिट का अन्तराल दिया जाए।
4. छात्रों को कला मेलों, चित्र प्रदर्शनियों (राज्य स्तरीय) का अवलोकन करवाया जावे एवं सत्र में एक बार मण्डल स्तर पर छात्र–छात्राओं के चित्रों की प्रदर्शनी आयोजित करवायी जाए।

अध्यापकों के लिए प्रस्तावित संदर्भ पुस्तकें (प्रायोगिक खण्ड हेतु) :

1. 'पेन्ट स्टिल लाइफ', क्लोरेड्डा व्हाइट, (वाल्टर टी. फॉस्टर प्रकाशन)।
2. 'आर्ट ऑफ ड्राइंग' ग्रुम्बाचेर लायब्रेरी बुक (वाल्टर टी. फॉस्टर प्रकाशन)।
3. 'ऑन टेक्नीक्स', लिओन फ्रैंक, (वाल्टर टी. फॉस्टर प्रकाशन)।
4. 'मोर ट्रीज', फ्रेड्रिक गार्डनर, (वाल्टर टी. फॉस्टर प्रकाशन)।
5. 'हाउ टु ड्रा एण्ड पेंट टैक्सचर्ज आपफ ऐनिमल्ज', वाल्टर जे विल्वेडिंग (वाल्टर टी. फॉस्टर प्रकाशन)।
6. 'हाउ टु ड्रा एण्ड पेंट ऐनिमल्ज', एक्सप्रेशन वाल्टर जे विल्वेडिंग (वाल्टर टी. फॉस्टर प्रकाशन)।
7. 'आर्ट ऑफ दि पेन्सिल', बोरो जॉनसन, (सर आइजक पिटमैन एण्ड संज लि. नई दिल्ली)।
8. 'डिजाइन फॉर यू', एथेल जैन बीटलेर, (जॉन विलारी एण्ड सन्ज लि. नई दिल्ली)
9. 'कम्पलीट बुक ऑपफ आर्टिस्ट्स टेक्नीक्स', डॉ. कुर्ट हर्बर्ज (थॉमसन एण्ड हड्सन, लंदन)।

निर्धारित पुस्तक–
भारतीय कला–भाग–2 – माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर द्वारा प्रकाशित

खण्ड – अ
मध्यकालीन भारतीय चित्रकला

अध्याय–1
दक्खिनी चित्र शैली

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

14वीं शताब्दी में दक्षिण भारत के दो महत्वपूर्ण राज्यों का उदय भारतीय कला इतिहास में कला विकास की दृष्टि से उल्लेखनीय है। 1336 ईस्वी में स्थापित विजयनगर साम्राज्य और 1347 ईस्वी में स्थापित बहमनी सल्तनत। इन दोनों रियासतों के मध्य संघर्ष चलता रहा परन्तु विविध कलाओं के विकास के लिए दोनों ही राज्य सकारात्मक रहे। शासकों ने कलाओं को यथाशक्ति संरक्षण व प्रोत्साहन दिया।

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हरिहर एवं बुक्का नामक दो भाइयों द्वारा की गई। यह दक्षिण का एक वैभवशाली साम्राज्य बना, जिसका विस्तार कृष्णा से कावेरी तथा बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक था। इस राज्य में सनातन संस्कृति, कला–साहित्य की प्रचुर उन्नति हुई। राजा कृष्ण देव इस राज्य के श्रेष्ठ राजाओं में से एक थे। विजयनगर की चित्रकला में अजन्ता की उच्चता दिखाई देती है हालांकि अपभ्रंश शैली के लक्षण यहाँ भी उपस्थित हैं। लेपाक्षी वीरभद्र मन्दिर की भित्तियों पर अंकित विजयनगर की चित्रकला के अद्भुत उदाहरण दर्शनीय हैं। शिव के विविध अवतार, दिव्य प्राणी, भगवान विष्णु, संत, संगीतज्ञ आदि का अनुपम रूपांकन यहाँ हुआ है।

विजयनगर साम्राज्य के समानान्तर ही बहमनी साम्राज्य की स्थापना हुई। इस सल्तनत का नाम सुल्तान अलाउद्दीन बहमन शाह से बहमनी सल्तनत पड़ा। इस रियासत में फिरोजशाह बहमनी विद्वान व कला प्रेमी शासक हुआ। वह विविध भाषाओं के साथ–साथ गणित व विज्ञान के प्रति भी अत्यन्त रूचि रखता था। इस सल्तनत ने उत्तर व दक्षिण के मध्य सांस्कृतिक सेतु का कार्य किया। इस राज्य में ईरानी प्रभाव वाली चित्रकला का विकास हुआ। यहाँ पनपी कला, इतिहास में दक्षिणी शैली कहलाती है। अहमदशाह वली बहमनी ने बीदर दुर्ग के रंग महल में बेल बूटों की प्रधानता वाला चित्रांकन करवाया था।

बहमनी शासक धर्मभीरू थे, जिस कारण पड़ौसी राज्य विजयनगर में पल्लवित सनातनी कला को न तो अपना पाए और ना ही कुछ सीख पाए। पन्द्रहवीं शताब्दी में सत्ता लोलुपतावश आपस में लड़कर यह रियासत पांच राज्यों में बंट गई–अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा, बिरार और बीदर। लेकिन सत्ता विस्तार की कामना से इन पांचों राज्यों ने एक होकर विजयनगर के गौरवशाली राज्य को परास्त कर दिया तथा पुनः पांचों अलग हो गए। बाद मे अहमद नगर ने बिरार को व बीजापुर ने बीदर को अपने अधीन कर लिया।

ऐतिहासिक दृष्टि से इन रियासतों की कला महत्वपूर्ण है। यहाँ की कला ईरानी प्रभाव युक्त है परन्तु मुग़ल कला से भिन्न है। कला इतिहास हरमेन गोयट्ज के अनुसार दक्खिनी चित्रकला पर दक्षिणी–ईरानी व अरेबियन कला का प्रभाव पड़ा तथा मुग़ल चित्रकला पर उत्तरी–ईरानी व तुर्की कला का प्रभाव पड़ा।

अहमद नगर

विजय नगर साम्राज्य को हराने में अहमद नगर के सुल्तान हुसैन निजाम शाही की अहम भूमिका थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् बालक मुर्तजा को वारिस घोषित किया गया परन्तु राज्य का कामकाज मुर्तजा की मां सम्भालती रही। बाद में अकबर की सहायता से मुर्तजा से उसके छोटे भाई बुरहान ने सत्ता हासिल की।

मुर्तजा के समय "तारीख–ए–हुसैन शाही" नामक ग्रन्थ का चित्रण हुआ जिस पर मालवा के नियामतनामा का

चित्र संख्या–1 तारीख ए हुसैनशाही का एक दृश्य

चित्र संख्या–2 चाँद बीबी पोलो खेलते हुए

प्रभाव दिखता है। इस ग्रन्थ में हुसैन निजामशाही के विवाह दृश्यों में नारी आतियों का मनोरम व भावपूर्ण चित्रांकन हुआ है जिनकी वेशभूषा उत्तर भारतीय है(चित्र संख्या–1)। यहाँ चित्रित रागमाला चित्रावली में अंकित 'राग हिण्डोल' एक अद्भुत चित्र है। ऊंचा गोलाकर क्षितिज इस शैली की विशेषता है। बाद में मुगलिया प्रभाव के कारण यहाँ चमकदार रंग, सुनहरी आसमान व अलंकृत प्रकृति का भी अंकन हुआ।

बीजापुर

बीजापुर आदिल शाह सुल्तानों की सल्तनत थी। यहाँ के सुल्तान इस्माईल आदिल शाह स्वयं चित्रकार थे। इतिहास प्रसिद्ध विदुषी चांद सुल्ताना इसी राज्य के सुल्तान अली आदिल शाह प्रथम की पत्नी थी जो स्वयं चित्रकला में निपुण थी। खगोल विद्या पर आधारित सचित्र ग्रन्थ "नुजूम–अल–उलूम" की रचना इन्हीं के समय की गई। बीजापुर के अधिसंख्य सुल्तानों का झुकाव चित्रकला के प्रति रहा। अपनी रूचि के अनुसार उन्होंने चित्र बनवाए एवं चित्रकारों को प्रोत्साहित किया। यहाँ की कला पर जहाँगीरकालीन मुग़ल कला का व्यापक प्रभाव पड़ा। सघन वन में स्त्री, हाथियों की लड़ाई, चाँद बीबी पोलो खेलते हुए आदि यहाँ के प्रसिद्ध चित्र हैं(चित्र संख्या–2)। यहाँ चेहरा चमकदार, पृष्ठभूमि साधारण परन्तु हरी भरी अंकित की गई है। 16वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में यहाँ की कला में मौलिकता नष्ट हो गई।

गोलकुण्डा

बहमनी सल्तनत के पतन के पश्चात् गोलकुण्डा कुतुबशाही सुल्तानों के आधिपत्य में आ गया। इब्राहिम कुतुबशाह 1550 ईस्वी में यहाँ का शासक बना। बाद में इस रियासत की राजधानी हैदराबाद बनाई गई। यह राजवंश मूलतः ईरानी था जिस कारण ईरानी सत्ता से यहाँ के मधुर सम्बन्ध थे। उन्नत व्यापारिक केन्द्र होने के कारण यह धनवान रियासत थी। कला विकास के लिए शासक प्रचुर धन व्यय करते थे। हीरों के लिए भी गोलकुण्डा की ख्याति थी।

यहाँ के नारी चित्र सौन्दर्य से परिपूर्ण है। "मैना और स्त्री" शीर्षक वाला चित्र इसका उदाहरण है जो

चित्र संख्या–3 मैना और स्त्री

डबलिन के चेस्टर बेरी संग्रहालय में सुरक्षित है(चित्र संख्या–3)। मुहम्मद कुतुबशाह के समय दरबारी दृश्य व मुखातियों का सुन्दर अंकन हुआ। हैदराबाद व गोलकुण्डा, दोनों ही स्थानों पर चित्रकला का श्रेष्ठ विकास हुआ। उमरावों, दरबारियों व राग रागिनी के अनुपम चित्र बने हैं। "तुजुक–ए–आसफी" यहाँ का एक उल्लेखनीय चित्रित ग्रन्थ हैं। नारी चित्रण को गोलकुण्डा शैली ने नई ऊँचाईयां दी।

लेकिन कालान्तर में इस शैली पर मराठा चित्रकला व मीनाकारी का प्रभाव बढ़ गया जिससे इसकी मौलिकता नष्ट हो गई।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. दक्षिण के विजयनगर साम्राज्य में सनातन कला–संस्कृति का श्रेष्ठ विकास हुआ।
2. बहमनी सल्तनत के संरक्षण में पनपी कला दक्खिनी शैली कहलाती है।
3. अलाउद्दीन बहमनशाह के नाम से बहमनी सल्तनत का नामकरण हुआ।
4. अहमदनगर, बीजापुर व गोलकुण्डा दक्खिनी शैली के महत्वपूर्ण केन्द्र थे।
5. इतिहास प्रसिद्ध कला विदुषी चाँद सुल्ताना का सम्बन्ध बीजापुर से था।
6. दक्खिनी शैली दक्षिणी ईरानी व अरेबियन कला से प्रभावित थी।
7. कालान्तर दक्खिनी शैली मुगलिया प्रभाव में आकर अपनी मौलिकता खो बैठी थी।
8. मैंना और स्त्री, चाँद बीबी पोलो खेलते हुये आदि दक्खिनी शैली के महत्वपूर्ण चित्र हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1 किन दो भाइयों ने विजयनगर समम्राज्य का सूत्रपात किया ?

2 बहमनी सलतनत कितने भागों में बंटी थी ?

3 बीजापुर के किसी एक चित्र का शीर्षक बताएं ?

4 दक्खिनी कला पर किस शैली का प्रभाव था ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1 चांद बीबी पोलो खेलते चित्र किस शैली का है?

2 मैना और स्त्री किस शैली का चित्र है?

3 तारीख–ए– हुसैन शाही नामक ग्रंथ कहां चित्रित हुआ?

निबंधात्मक प्रश्न

1 दक्खिनी कला की विषय वस्तु व विशेषताएं लिखिए।

2 दक्खिनी कला के विकास क्रम पर निबंध लिखिए ।

अध्याय–2
मुग़ल चित्र शैली

पंद्रहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध तक आते–आते भारतीय चित्रकला में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देने लगते हैं। जैन अपभ्रंश शैली में व्यापक परिवर्तन आ गया था। वृहद मालवा में चित्रों के नवीन स्वरूप प्रचलन में आ गए थे, जिनमे प्रयुक्त आकार, विषय व कलागत विशेषताएं नवीन परिवर्तन के स्पष्ट संकेत दे रहे थे। इस समय में चित्रित नियामतनामा, आरण्यकपर्व (आगरा), लौरचन्दा, महापुराण, चौरपंचासिका(पालम) इस परिवर्तन के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं । सौलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ की कला में जहाँ नवचेतना की पदचाप अनुभव की जा रही थी वहीं रियासतों के आपसी टकराव ने विदेशी आक्रान्ताओं को यहाँ अपने पैर पसारनें के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न की। भारत में मुग़लों का प्रवेश 1526 ई. में हुआ जब बाबर पानीपत युद्ध में विजय प्राप्त कर दिल्ली का शासक बना। बाबर तैमूर (पितृपक्ष) की पांचवी पीढ़ी में तथा मंगोल यौद्धा चंगेज खां (मातृ पक्ष) की चौदहवीं पीढी में जन्मा। इसलिए इन्हें मुग़ल कहा गया। मुग़ल शहंशाह प्रारम्भ से ही कलाप्रेमी रहे हैं। बाबर, हुमायूँ अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ तक इस शैली में निरन्तरता एवं क्रमिक विकास दिखाई देता है। मुग़ल शैली प्रारम्भ में पूर्णतः ईरानी कला थी जिसे भारतीय सन्दर्भों में प्रस्तुत किया जा रहा था। अकबर के समय यह शैली राजस्थानी, अपभ्रंश व दक्षिणी शैलियों के समन्वय से नवीनता प्राप्त कर मौलिकता प्राप्त करने लगी। कहा जा सकता है कि ईरानी व राजस्थानी शैली मुग़ल शैली की जन्मदाता हैं। जहाँगीर के समय यह पूर्णतया भारतीय हो गई परन्तु शाहजहाँ के समय इस पर यूरोपीय प्रभाव अधिक हो गया था। रायकृष्ण दास के मतानुसार भारत में मुग़ल शैली का जन्म बाबर के आगमन से हुआ है और बाद में शाहजहाँ तक के मुग़ल शासकों के काल में उसका निरन्तर विकास होता रहा, जिसका चरमोत्कर्ष जहाँगीर का शासन काल था। शाहजहाँ के पश्चात औरंगजेब सत्तारूढ हुआ। वह कट्टर शासक था। उसने कलाकारों को चित्रांकन छोड़ने पर बाध्य कर दिया। जान बचाने कलाकार दूसरी रियासतों में शरण लेने लगे या अन्य कार्य कर जीविकोपार्जन करने लगे। यहीं से मुग़ल कला का पतन प्रारम्भ हुआ। दरबारी कला होने के कारण मुग़ल शैली प्रत्येक बादशाह के साथ उसकी रूचि के अनुसार परिवर्तित होती रही इसलिए मुग़ल कला को प्रत्येक मुग़ल बादशाह के काल क्रमानुसार समझना औचित्यपूर्ण रहेगा।

बाबर

बाबर को भारत में मुग़ल– साम्राज्य की स्थापना (1526 ई) का श्रेय है । लेकिन वह बहुत कम समय के लिए ही शासन कर सका। 1530 ई में उसकी मृत्यु हो गई । इस काल के चित्र उपलब्ध नहीं हैं लेकिन बाबर की चित्रकला में बड़ी रूचि थी क्योंकि उसने ''पूर्व का राफेल'' कहलाने वाले प्रसिद्ध ईरानी चित्रकार बिहजाद तथा शाह मुजफ्फर की चित्रकृतियाँ देखी व उनकी समीक्षा भी की थी। बाबर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुक ए बाबरी' (बाबरनामा) में इन कलाकारों का उल्लेख प्रशंसा के साथ किया है।

हुमायूँ

बाबर के पश्चात उसके ज्येष्ठ पुत्र हुमायूं (1530–1556 ई.) ने राज्य संभाला। हुमायूं का पूरा जीवन संघर्षो में बीता। लेकिन वह कला प्रेमी था। अपने लश्कर में वह चित्रकार भी रखता था। जब वह ईरान के शाह की मदद

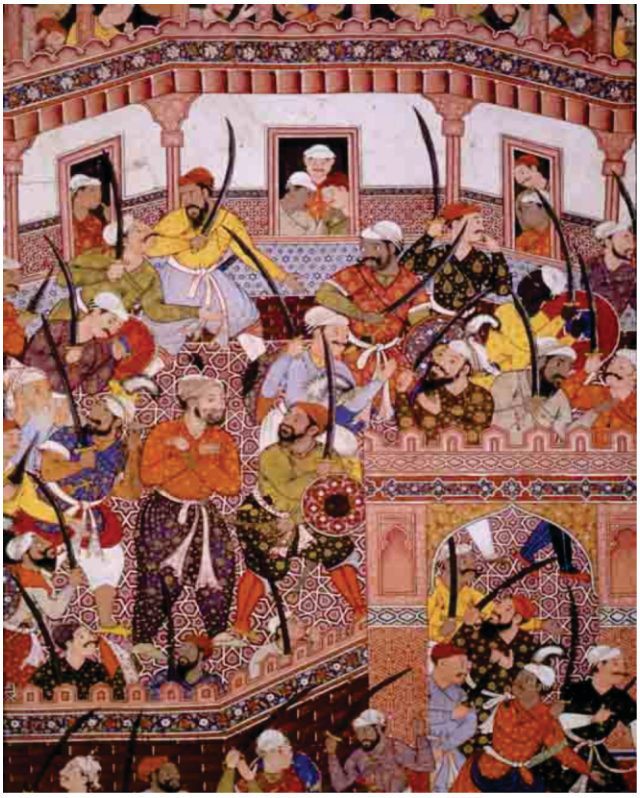

चित्र संख्या–1 हम्जा नामा

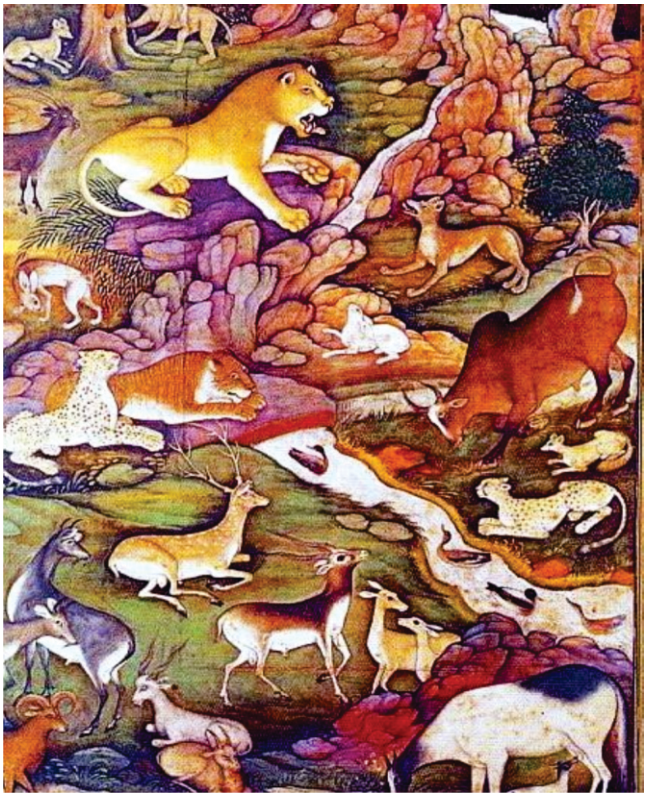

चित्र संख्या–2 अनवार ए सुहैली

लेकर पुनः भारत आया तो अपने कला प्रेम के कारण ईरानी चित्रकार मीर सैय्यद अली 'जुदाई' और ख्वाजा अब्दुसमद शीराजी को भी भारत लेकर आया। ये दोनो ईरानी शैली के सिद्धहस्त कलाकार थे। बालक अकबर ने उनसे चित्रकला सीखी। इस समय जो चित्र तैयार किये गये थे, वे पूर्णतया फारसी या ईरानी शैली में तैयार किये गये थे। हुमायूं के समय में 'दास्तान–ए–अमीर हम्जा' (हम्जानामा)(चित्र संख्या 1) का चित्रण प्रारम्भ हुआ परन्तु यह अकबर के समय में पूरा हुआ।

अकबर

पोथीखाना (पुस्तकालय) की सीढ़ीयों से पैर फिसलकर गिरने से हुमायूं की मृत्यु हुई जिस कारण मात्र तेरह वर्ष की आयु में अकबर को राज्य की बागडोर सम्भालनी पड़ी। बाबर व हुमायूँ कला की दृष्टि से जीवन का आनन्द राजनीतिक परिस्थितियों की अस्थिरता के कारण न ले सके परन्तु अकबर ने अपनी कुशलता से न केवल राज्य का विस्तार किया बल्कि एक मजबूत व समन्वयवादी शासक की भी छवि प्राप्त की। अकबर के शासनकाल में ईरानी चित्रकार जो पहले ही भारत में आ गये थे, उनमें मीर सैयद अली व ख्वाजा अब्दुसमद शिराजी प्रमुख थे। इन दोनों कलाकारों ने अकबर की रूचि व नीति के अनुरूप कला क्षेत्र में भी समन्वय की भावना भर दी।

इन्होंने ईरानी रूपाकारों को भारतीय रंगों में संजोकर अकबर के विचारों को साकार कर दिया तथा दसवन्त और बसावन जैसे प्रतिभा सम्पन्न भारतीय चित्रकारों ने मिलकर मुग़ल शैली को प्राणवान बनाया, जिससे मुग़ल शैली में ईरानी कठोरता के स्थान पर भारतीय कोमलता का सुखद समावेश हुआ। अकबर विद्वान व नीतिज्ञ होने के साथ ही कला पारखी भी था। अतः उसने सैंकड़ों चित्रकारों को संरक्षण, सम्मान और प्रेरणा प्रदान की। मुग़ल इतिहासकार अबुल फजल ने अपनी पुस्तक ''आइन–ए–अकबरी'' में लिखा है कि अकबर का बाल्यकाल से ही चित्रकला के प्रति स्वाभाविक झुकाव था। उसने बड़े–बड़े कलाकारों को अपने दरबार में आश्रय दिया। इन चित्रकारों की ख्याति ईरान व यूरोप तक फैल चुकी थी। भारतीय चित्रकला को व्यापक रूप से देखकर भारतीय संस्कृति व सभ्यता के अनुरूप ईरानी शैली में उसने ऐसे चित्रों का निर्माण करवाया जो समन्वयपूर्ण थे। अकबर ने भारतीय कला, धर्म व संस्कृति

को नज़दीक से देखकर मुग़ल चित्रकारों को इन्हें चित्रित करने के लिए प्रेरित किया। दास्तान–ए–अमीरहम्जा, शाहनामा, तारीख–ए–खानदान–ए–तैमूरिया, रज्मनामा, वाकयात बाबरी, अकबरनामा, अनवार–ए–सुहैली, दराहनामा जैसी सचित्र पुस्तकों के साथ ही रामायण, महाभारत, योगवशिष्ठ, नल–दमयन्ती, शकुन्तला, कथा–सरित–सागर, कृष्ण चरित आदि पुस्तकों का बड़ी कुशलता से चित्रण व परस्पर अनुवाद करवाया।(चित्र संख्या 2)

अकबर का कला प्रेम – अकबर स्वयं एक सिद्धहस्त कलाकार था क्योंकि उसके पिता हुमायूँ ने उसके चरित्र निर्माण के लिए ईरान के प्रसिद्ध चित्रकारों से उसे चित्रकला का अभ्यास करवाया था। अकबर के समय राजनीतिक परिस्थितियों में थोड़ी स्थिरता व शांति आ गई थी अतः शाही क्रिया–कलापों के पश्चात् जो समय बचता था, उसे अकबर चित्रशालाओं में जाकर व्यतीत करता था। उसके दरबार में मुस्लिम व हिन्दू दोनों धर्मों के चित्रकार–ख्वाज़ा अब्दुसम्मद शीराजी, मीर सैयद अली, सुखलाल, दसवन्त, मुकुन्द, जगन्नाथ माधव, महेश, ताराचंद, सांवल, खेमकरण, हरवंश, राम तथा बसावन आदि थे। अबुल फजल ने लिखा है कि ईरानी चित्रकारों की अपेक्षा भारतीय चित्रकार अधिक निपुण सूक्ष्मदर्शी व भावनाप्रवण थे। उनकी कला के सामने विश्व के कुछ ही कलाकार ठहर सकते थे। उनकी कला में जैसे जीवन बोल उठता था। तानसेन जैसा महान संगीतकार भी उसके दरबार में था। अकबर चित्रकला के साथ शेष अन्य कलाओं पर भी ध्यान देता था। चित्रकारों को उनके हुनर पर अकबर विभिन्न उपाधियों से सम्मानित करता था, जैसे– नादिर उल मुल्क, हुमायूँ नसारी आदि। सभी ललित कलाओं की समान रूप से प्रगति करने वाले उसके दरबार के योग्य नवरत्न अपने कार्य में पूर्ण दक्ष थे। अकबर कालीन चित्रों को रायकृष्ण दास ने निम्नानुसार विभाजित किया है –

1. अभारतीय कथाओं के चित्र – हम्जानामा, खमसा निजामी आदि।

2 भारतीय कथाओं के चित्र – रामायण, रज्मनामा (महाभारत), नलदमन (नल दमयंती) अनवार ए सुहेली (पंचतंत्र) आदि।

3. ऐतिहासिक ग्रंथ – शाहनामा (ईरान के शासकों का इतिहास), तैमूरनामा (तैमूर का इतिहास), बाबर नामा, अकबर नामा आदि।

4.व्यक्ति चित्र (शबीह) तथा सामाजिक चित्र

रायकृष्णदास के अनुसार अकबर काल में लगभग बीस हजार चित्र बनाये गये थे जो आज भी विश्व के विभिन्न संग्रहालयों में संरक्षित हैं।

अकबरकालीन चित्र शैली की विशेषताएँ – अकबर ने भारतीय जीवन को निकट से समझा था यही कारण था कि बादशाह की रूचि को महत्व मिलने से तत्कालीन चित्रकला पर प्रचलित भारतीय कलाओं का विशेष प्रभाव पड़ा। राजपूत, ईरानी व यूरोपीय तत्वों के मिश्रण से यह विशिष्ट शैली नई पहचान बना सकी। अकबर ने हिन्दू–मुसलमानों के सौहार्द को बढ़ावा देने के लिए चित्र–शैली में एक समन्वित विचार दिया। इस काल में दरबारी शान–शौकत, सुकुमारता, मुग़ल बादशाहों की वीरता तथा शिकार के दृश्यों की अधिकता है। ईरानी प्रभाव के चलते मुग़ल चित्रकारों ने रंगों का चमकदार ढंग से प्रयोग किया। उन्होंने केसरिया, पीला, नीला, लाल, गुलाबी, हरे रंग का अधिक प्रयोग किया। अकबरकालीन चित्रों में रेखा को महत्व मिला। अकबरकालीन चित्रों में एक चश्म चेहरा बनाने की सामान्य परम्परा थी अर्थात् एक तरफ की मुखाकृति का ही अंकन किया जाता था। चित्रों में यथा स्थान मुगलिया वस्त्रों व आभूषणों, पशु–पक्षियों तथा वृक्षों को अंकित किया गया। अकबरकालीन चित्रकार 'शबीह' अर्थात् 'व्यक्ति चित्र' बनाने में पूर्ण दक्ष थे। राजा पृथु का चित्र इनमें महत्वपूर्ण है जो बनारस के भारत कला भवन में सुरक्षित है। अधिकांश चित्रकारों ने इन व्यक्ति चित्रों में नियमों का पूर्ण पालन किया है। वस्त्रों मे होने वाली सलवटों को स्वाभाविक रूप में चित्रित किया गया है। एक ही चित्र को कई चित्रकार मिलकर बनाते थे। महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के चित्र बनवाकर उन्हें प्रदर्शित भी करवाया जाता था। संयोजन की दृष्टि से चित्रों में भीड़–भाड़ दिखाई जाती थी तथा प्रधान विषय को बड़ी शान–शौकत से दर्शाया जाता था। 'आईन–ए–अकबरी' में अकबरकालीन चित्रकला का समुचित उल्लेख प्राप्त होता है। चित्रकार की तूलिका को 'कलम' कहा जाता था और चित्रकार को 'कलम–करतार'। तूलिकाएँ पशुओं के बालों से बनाई जाती थी। 'आईने अकबरी' में उस समय चित्र बनाने के लिए प्रचलित अनेक प्रकार के कागज़ों का उल्लेख हुआ है। सियालकोट (पंजाब) में कागज़ का एक मुग़ल

कारखाना स्थापित किया गया और इसमें बने कागज़ को 'सियाल कोटी' कागज़ या 'मुगलिया कागज़' कहा जाता था।

अकबरकालीन प्रमुख चित्रकार

अकबर के समय कलाकारों की बहुत बड़ी संख्या चित्रांकन कर रही थी। इनमें हिन्दू मुसलमान दोनों धर्मों के चित्रकार थे।

(1) मीर सैयद अली :– यह ईरानी चित्रकार हुमायूँ के साथ भारत आया था। यह ईरान की सफवी शैली का चित्रकार था। इसके पिता का नाम मंसूर था, जो स्वयं चित्रकार था। मीर सैयद अली अपना उपनाम ''जुदाई'' लिखता था। इसके चित्रों में सुन्दर और मोहक वातावरण मिलता है। हम्जानामा के चित्र इसके निर्देशन में बने। इसे लौकिक और दैनिक जीवन से संबंधित विषयों का चित्रण अधिक प्रिय था। इसके बनाए चित्रों में लैला–मजनू का चित्र, मजनू का जन्म तथा पिता का व्यक्ति चित्र प्रमुख है।

(2) ख्वाजा अब्दुसमद शिराजी : – यह हुमायूँ के साथ भारत आया था। यह ईरानी कला केन्द्र शिराज का रहने वाला था। श्रेष्ठ चित्रकारी के कारण इसे 'शीरी कलम' की उपाधि दी गई। इसने हुमायूँ और अकबर को कला शिक्षा दी। यह अकबर की चित्रशाला का प्रमुख था। इसके शिष्य भी श्रेष्ठ कलाकार हुए। यह अकबर का प्रिय कलाकार था।

(3) दसवन्त : – दसवन्त अकबर की चित्रशाला में श्रेष्ठ हिन्दू चित्रकार था। प्रारम्भ में यह चित्रशाला में सेवक था। इसने अब्दुसमद से चित्रकारी सीखी। रज्मनामा में इसने सुन्दर चित्र बनाए। इसने विचित्र अकृतियों को भी अंकित किया। उसने दैनिक जीवन पर आधारित पौराणिक दृश्यों को भी अंकित किया। मुग़ल कला में भारतीयता का भाव इसी कलाकार की देन है।

(4) बसावन : – यह भी अकबर दरबार का महत्वपूर्ण हिन्दू चित्रकार था। इसने सौ के आसपास चित्र बनाए। अबुल फजल ने इसकी बहुत प्रशंसा की है। बसावन के चित्र यथार्थ के अधिक नज़दीक है। यह कलाकार पृष्ठभूमि बनाने, मुखकृति की विशेषताओं का अंकन करने, रंगों के मिश्रण तैयार करने आदि में श्रेष्ठ था। दरबारनामा, अकबरनामा आदि ग्रंथों में इस कलाकार ने चित्रण कार्य किया।

चित्र संख्या 3 विविध पक्षी व टर्की बाज

जहाँगीर कालीन मुग़ल कला : –

1605 ई. में जहाँगीर ने मुग़ल साम्राज्य की बागडोर संभाली। जहाँगीर एक विद्वान, सहृदय, प्रति प्रेमी व कला उपासक प्रशासक था। जहाँगीर के काल में कुछ वर्षों तक अकबर शैली का ही अनुसरण होता रहा लेकिन बाद में यह शैली छाया प्रकाश की अधिकता के साथ नये तत्वों को लेकर परिवर्तित हुई। अकारीजा नामक ईरानी चित्रकार जहाँगीर की चित्रशाला का प्रमुख था। अकारीजा की शैली भारतीयता से परिपूर्ण थी। अकारीजा का पुत्र अबुल हसन जहाँगीर का प्रिय कलाकार था। उस्ताद मसूंर के बनाए पशु–पक्षियों के चित्र आकर्षक हैं, जिनमें टर्की कोक व बाज के चित्र विश्व प्रसिद्ध हैं। (चित्र संख्या 3)

जहाँगीर के समय विभिन्न मनोभावों का चित्रण किया गया है। प्रायः जहाँगीर के चेहरे के पीछे प्रभामण्डल अंकित किया गया है । जहाँगीर चित्रकारों को अध्ययन के लिए बाहर भी भेजता था। बिशनदास ने ईरान में प्रशिक्षण लिया था। उसने ईरान के शाह के लिए भी कई वर्षों तक चित्रण किया जहाँ उसका बनाया हुआ "शेख फूल सूफी संत" का चित्र विश्व प्रसिद्ध है। नूरजहाँ के विवाह के बाद चित्रकला के प्रति जहाँगीर की रूचि बढ़ गई थी। मनोहर, उस्ताद मंसूर, अकारीजा, हसन, बिसनदास, गोवर्धन आदि इस समय के चित्रकार थे। प्रकृति प्रेम के कारण ही जहाँगीर ने अपना मकबरा खुला बनाने के आदेश दिये। इस काल को मुग़ल कला का सर्वश्रेष्ठ समय माना जाता है।

जहाँगीर कालीन चित्रों के विषय–

जहाँगीर कालीन कला में प्रकृति व मानवीय भावों का समावेश हुआ। वहीं ऐतिहासिक ग्रंथ चित्रों का महत्व कम हो गया था।

इस काल में सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक विषयों से संबधित चित्रों को बहुत ही कुशलता से चित्रित किया गया है। दरबारी विषयों का चित्रण शालीनता से हुआ है। आमोद–प्रमोद, आखेट, रथ यात्रा, रनिवास, उत्सव आदि विषयों के चित्र भी यथार्थता से चित्रित हुए। चित्रों में मौलिकता है। चित्रों के संयोजन में पूर्णता लाने के लिए सौन्दर्य के सभी आवश्यक तत्वों का समावेश किया गया। जहाँगीर के समय यूरोपियन चित्रों की अनुकृतियों की ओर चित्रकारों का ध्यान गया। सभी चित्रों का आकर्षक व सुकोमल अंकन हुआ। चित्रों में राजसी जीवन के साथ–साथ ऐतिहासिक घटनाओं, इसाई, यूरोपियन तथा अन्य विषयों का भी सुन्दर चित्रण हुआ।

जहाँगीर कालीन कला की विशेषताएँ : –

जहाँगीरकालीन चित्रकला में प्राकृतिक दृश्यांकन पूर्णतया भारतीय तत्वों से परिपूर्ण है। चित्रों में यथार्थवादी प्रभाव है। अत्यन्त बारीक रेखांकन व वस्त्रों में सलवटें और फहरान की बनावट दर्शनीय है। चेहरे में उभार के लिए महीन रेखाओं के पुनरावृत प्रयोग से छाया या परदाज दर्शाया गया है जिसे 'ख़तपरदाज़' कहा जाता था। छोटे–छोटे बिन्दु लगाकर छाया दर्शाने को दाना–परदाज़ कहते थे। छायाप्रकाश के कारण जहाँगीरकालीन चित्रों में त्रि–आयामी प्रभाव आ गया है। प्रकृति व प्राणियों के अंकन में अत्यधिक स्वाभाविकता आई। हाथियों के चित्रण में अजन्ता का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। रेखाएं लयात्मक व प्रभावी हैं। चित्रों में सूफियाना रंग–योजना सौम्य व हल्की है और रंग आँखों को प्रिय लगते हैं। हल्के गुलाबी, सफेद, सोने व चाँदी के रंगों का श्रेष्ठ प्रयोग किया गया है। चेहरे एक चश्म हैं लेकिन भावपूर्ण हैं। नारी चित्र भी इस काल में दिखाई देते हैं। जहाँगीर कालीन कला बादशाह की रूचि व स्वभाव के अनुसार पल्लवित हुई, जिसमें प्रकृति व मानवीय भावनाओं को महत्व मिला। पुरूष वेशभूषा में लम्बा जामा, पटका, खिड़कीदार पगडी का बाहुल्य है और स्त्री वेश–भूषा में ओढ़नी को बढ़ावा मिला है। इस प्रकार की अनेक विशेषताओं से जहाँगीरकालीन चित्र ईरानी प्रभाव से मुक्त हुए हैं और उनमें भारतीयता का समावेश हुआ। स्वाभाविकता व यथार्थता उनका विशिष्ट गुण रहा है।

शाहजहाँ कालीन मुग़ल चित्रकला –

जहाँगीर के पश्चात् मुग़ल शासन शाहजहाँ ने संभाला। शाहजहाँ अपने पूर्वजों की अपेक्षा कट्टर था। वह चित्रकला और चित्रकारों का सम्मान करता था, परन्तु वास्तव में वह स्थापत्य कला को अधिक महत्त्व देता था, ताजमहल इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। मुमताज से विवाहोपरान्त यह रूचि और बढ़ गई थी। इस समय की कला बिल्कुल नये अवतार में दिखती है। शाहजहाँ के समय की चित्रकला दरबारी व्यवस्था में बंधी हुई है, परन्तु तकनीक उच्च स्तरीय थी। भावों के स्थान पर प्रबन्धन को महत्त्व मिला। इस समय यूरोपीय प्रभाव बढ़ रहा था। छाया–प्रकाश का अत्यधिक प्रयोग हुआ व तीसरे आयाम के प्रति कलाकारों का मोह बढ़ गया शाहजहाँ कालीन ''शाहनामा'' सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इस समय के चित्रों में मुगलिया दरबार का वैभव तथा विलासिता के दृश्यों को महत्त्व के साथ अंकित किया गया। रेखाएँ दमहीन हो गई थी। वस्तुओं में बहुत बारीक काम किया गया। तकनीक भी उन्नत थी। परिप्रेक्ष्य का प्रयोग हुआ। भाव एवं भंगिमाओं के अंकन में सफाई व स्वाभाविकता है। नारी चित्र भी बने हैं। हिन्दू विषयों के चित्रण में कमी आई। सन्तों से मुलाकात या दरबारी दृश्यों का अंकन हुआ। ईसाई धर्म के चित्र भी बने। शाहजहाँ के समय 'स्याह कलम' के चित्र भी प्रचलन में थे। स्याह कलम में कागज़ पर सरेस या अण्डे व फिटकरी का अस्तर लगाया जाता था। केवल काले रंग से चित्रांकन किया जाता था। होठों आदि पर हल्का रंग लगाते थे लेकिन रेखांकन अत्यधिक बारीक होता था। विचित्तर, चितरमन, होनहार, लालचन्द आदि इस समय दरबारी चित्रकार थे।

शाहजहाँ कालीन चित्रकला के विषय व विशेषताएँ–

शाहजहाँ कालीन चित्रकला में अत्यन्त बारीक रेखांकन, मीनाकारी व सफाई है। शाहजहाँ को यूरोपीय तैल चित्र बहुत पसंद थे इसलिए इस काल में छाया–प्रकाश के साथ यथार्थता को महत्व मिला। ईसाई विषयों पर चित्र बनाने की प्रथा प्रचलित हो गई। शाहजहाँ कालीन चित्र शैली दरबार तक ही सिमट कर रह गई। पुरूषों के वेशभूषा में लम्बा पायजामा, लम्बे बेल–बूंटेदार दुपट्टे बनवाये गये और स्त्री वेशभूषा में पारदर्शी वस्त्र तथा सिकुड़ा पायजामा आदि पहनाए गये। विभिन्न प्रकार के बेल–बूंटेदार आलेखनो से चित्रकला को नवीनता मिली। हिन्दू संस्कृति का पुट समाप्त हो गया। चित्रों में हाथियों के आकारों में बदलाव आया और हाथी चौड़े

आकार में बनवाये जाने लगे। दरबारी सभ्यता, वैभव, अदब–कायदे, राजदूतों, पूर्वजों सम्मानित व्यक्तियों, गोष्ठियों के चित्र अधिक बने। लोक गायकों आदि के चित्र भी बनाए गए हैं। स्वर्णलेप का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार के व्यक्ति चित्र विशेष प्रसिद्ध है। हाशिए चौड़े बनाये जाते। सज्जा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। पुस्तकों के आवरण जिन्हें 'बयाज़' कहा जाता था, आकर्षक बनाये जाते थे।

मुग़लकला का पतन : –

शाहजहाँ के पश्चात् औरंगजैब ने जब शासन सम्भाला तो कला पर कुठाराघात हुआ। वह कट्टर शासक था। उसने अपने भाईयों की हत्या कर दिल्ली की सत्ता हासिल की थी। उसने अपने पिता शाहजहाँ को भी कैदखाने में डाल दिया। वह कला से घृणा करता था। वह इसे धर्मविरूद्ध मानता था। उसने अपने ही पुरखों के बनवाये भित्ति चित्रों पर सफेदी पुतवा दी थी। उसने कलाकारों को चित्रांकन छोड़ने पर बाध्य कर दिया। फलस्वरूप कलाकार इधर–उधर की रियासतों में शरण लेने चले गए या फिर अन्य कार्य करने लगे। चित्रांकन पूर्णतया बंद हो गया। औरंगजेब के समय मुग़ल कला का सूरज ऐसा अस्त हुआ कि फिर कभी उदय ही नहीं हुआ। औरंगजेब के पश्चात के शासक विलासिता में डूबे रहे। जब उन्हें अपनी ही सुध नहीं थी तो वो कला की क्या सुध लेते? परिणामतः कला अपने अतीत को भुलाकर नष्ट प्रायः हो गई।

महत्वपूर्ण चित्र :–

मुगल काल में बडी संख्या में चित्रों का निमार्ण हुआ उनमें कुछ चित्र विशेष प्रसिद्ध हैं –

सलीम का जन्म :– अकबर कालीन चित्रों में 'सलीम का जन्म' चित्र बहुत महत्वपूर्ण है। यह चित्र अपने तल विभाजन तथा विहंगम दृश्यमानता के लिए जाना जाता है। इस चित्र में सम्पूर्ण कथानक को विभिन्न खण्डों में बांटकर अंकित किया गया है। महल के बाहर खैरात बांटने का दृश्य, महल के भीतर नृत्यरत स्त्रियां अंकित हैं। एक खण्ड में सलीम को स्नान कराने का दृश्य है वहीं अगले खण्ड में प्रसूति गृह दिखाया गया है। ऊपरी भाग में छत पर मोर को अंकित किया गया है। ऊंचे क्षितिज व पार्श्व में प्रकृति का मनोरम अंकन हुआ है। सम्पूर्ण चित्र में आकर्षक रंग संगति है। यह चित्र चित्रकार केशु द्वारा बनाया गया है ।(चित्र संख्या 4)

कबीर और रैदास :– शाहजहाँ कालीन चित्रों की सम्पूर्ण विशेषताओं को दर्शाता यह चित्र उस्ताद फकीरउल्लाह द्वारा 1640 ई. में अंकित किया गया है। धूसर रंग संगति वाले इस चित्र में ग्रामीण परिवेश दर्शनीय है। झोंपडी के बाहर कबीर

चित्र संख्या 4 सलीम का जन्म

चित्र संख्या 5 कबीर और रैदास

चित्र संख्या 6 दारा शिकोह की बारात

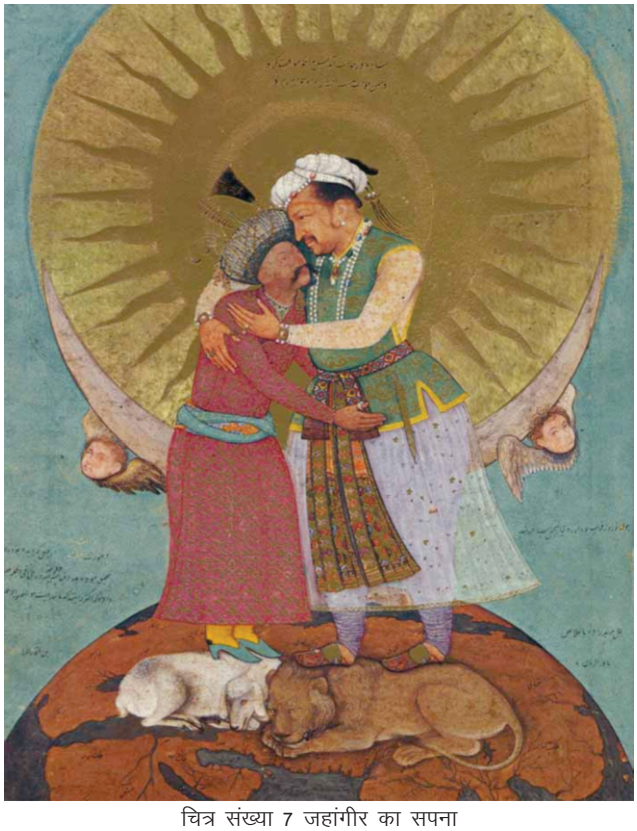

चित्र संख्या 7 जहांगीर का सपना

कपडा बुन रहे हैं वहीं उनके पास रैदास एक चटाई पर बैठै हैं। दोनो ही दीन–दुनिया को भूल ईश्वर के ध्यान में मस्त हैं। दोनों भक्तों को कृषकाय बनाया गया है। मटमैले भूरे रंग की प्रधानता से विषयगत प्रासंगिकता को बल मिला है। बॉर्डर नीले रंग में दर्शाया गया है। शाहजहाँ कालीन चित्रों का यह श्रेष्ठ उदाहरण है ।(चित्र संख्या 5)

दारा शिकोह की बारात :– यह चित्र मुगल कालीन चित्रों में अपने संयोजन के लिए जाना जाता है। इस चित्र में वस्त्राभूषण, घोडों, व शाही लवाजमें का चित्ताकर्षक अंकन है। दूल्हे के परिधान में घोडी पर सवार दारा, पीछे घोड़े पर शाहजहाँ, हाथियों पर राज परिवार की स्त्रियाँ व वादक दल को बहुत ही आकर्षक ढंग से संयोजित किया गया है। बारात के स्वागत के लिए हाथ जोडे खडे स्त्री– पुरूषों का अंकन इस चित्र के कथानक को अधिक स्पष्ट करता है। पार्श्व में आतिशबाजी व सजावट चित्रकार की सुन्दर कल्पना शक्ति का परिचय देती है। मावकृतियां एक चश्म बनाई गई हैं । यह चित्र हाजी मदानी द्वारा बनाया गया।(चित्र संख्या 6)

जहाँगीर का सपना :– यह चित्र जहाँगीर के प्रिय चित्रकार अबु हसन द्वारा चित्रित किया गया है। इस चित्र में जहाँगीर को ईरानी शाह अब्बास से गले मिलते दर्शाया गया है। वास्तव में दोनो शासक कभी मिले ही नहीं थे। यह चित्र उस दौर का है जब जहाँगीर के ईरानी सफवी सुल्तान के साथ रिश्ते मधुर नहीं थे। चित्रकार अबु हसन ने चतुराई से चित्र में जहाँगीर को श्रेष्ठ व विश्व विजेता के भाव से अंकित किया है। चित्र में ग्लोब पर जहाँगीर को शेर व शाह अब्बास को भेड पर खडे बनाया है। वस्त्राभूषणों व प्रभामण्डल से भी जहाँगीर को श्रेष्ठ दिखाने का प्रयास किया गया है । ग्लोब पर अंकित विश्व मानचित्र तत्कालीन संदर्भ में सबसे सटीक माना जाता है। चित्र में स्वर्ण प्रभामण्डल अंकित कर जहाँगीर की उपाधि 'नूर– अल– दीन' (आस्था की रोशनी) को प्रतिबिम्बित किया है । चित्र टेम्परा रंगों से बना है जिनमें स्वर्ण, रजत रंग की अधिकता है। चित्रकार अबु हसन को जहाँगीर ने नादिर–अल–जमा (युग शिरोमणी) की उपाधि से विभूषित किया था ।(चित्र संख्या 7)

मुग़ल शैली की सामान्य विशेषताएँ :–

मुग़ल शैली की अनेक विशेषताएँ हैं। मुग़ल शैली के चित्रों में विविधता तो है परन्तु अजन्ता के चित्रों के समान सजीवता नहीं

है। मुग़ल शैली की चित्रकारी में सुरूचि और सफाई का पूरा ध्यान रखा गया। घरेलू चित्रण मुग़ल शैली मे नहीं हो सका। सामाजिक जीवन के विषयों का अंकन हुआ। दरबारी अनुशासन के कारण मानवी चित्रों की कतार–सी दिखाई देती है। आखेट के चित्र, ऐतिहासिक घटनाओं के चित्र, प्राकृतिक चित्रण, पशु–पक्षी चित्रण, धार्मिक चित्र, पौराणिक चित्र तथा दरबारी चित्रों का प्रभावी चित्रण हुआ है। वास्तविकता का चित्रण हुआ तथा प्रकृति के सुन्दर दृश्यों की झांकियां बनाई जाती थीं। कई प्रकार के भारतीय पशु–पक्षियों का भी सुन्दर चित्रण हुआ। दरबारी शान–शौकत, शिकार एवं युद्ध सम्बन्धी चित्र इस शैली में विशिष्टता लिए हुए हैं। हाथी, बैल, मुर्गे, बटेर व तीतरों की लड़ाइयों के चित्र भी बड़े सुन्दर हैं। अमीर हम्जा, शाहनामा जैसी ईरानी कथाओ, लैला–मजनूं, शीरी–फरहाद की प्रेम कथाओं के चित्र बनवाये गये। हिन्दू धार्मिक कथाओं जैसे रामायण, महाभारत, योगवशिष्ठ के चित्र बने। ऐतिहासिक चित्रों में स्वयं मुग़ल शासकों के जीवन की बीती हुई घटनाओं का बखूबी चित्रांकन करवाया गया।

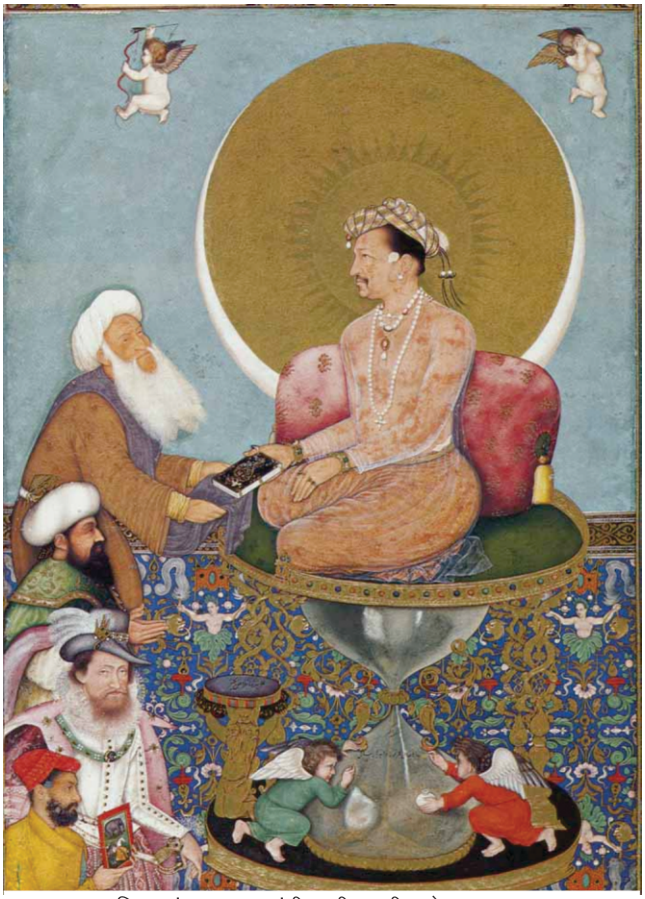

चित्र संख्या 8 जहांगीर की फकीर से मुलाकात

तारीख–ए–खानदान–ए–तैमूरिया आदि पर आधारित चित्रण करवाया गया। सम्राटों, राजकुमारों, अमीरों, सन्तों एवं फकीरों तथा इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों के व्यक्ति चित्रों अर्थात् शबीहों का बड़ी चतुराई व कलात्मक ढंग से चित्रण किया गया। संतो–फकीरों से मुलाकात के चित्र भी बने है। (चित्र संख्या 8)

भारतीय तथा विदेशी चित्रकारों की फारसी–ईरानी मिश्रित शैली से मुग़ल मुखाकृति चित्रण की कला का विकास हुआ जिसमें कुशलता नजर आती है। रंग योजना में चित्रों की पृष्ठभूमि में प्रायः धुँधले अर्थात् उदासीन व शीतल रंगों का प्रयोग हुआ। कपड़ों, पर्दो, कालीनों तथा अन्य साज–सामान में जटिल आलेखन बनाये गये और उनमें सोने के रंग का भी प्रयोग किया गया। आरम्भिक ईरानी शैली में बने चित्रों में चेहरे डेढ़ चश्म हैं परन्तु बाद के अधिकांश व्यक्ति चित्र एक चश्म हैं। मुग़ल चित्रों में भवनों का अत्यधिक प्रयोग किया गया, घुमावदार महराबें व स्तम्भों पर मोजाईक के आलेखन बनाये गये तथा दुर्गों के चित्रण में विशाल द्वार, परकोटे, कंगूरे, बुर्जियाँ आदि विशेषताएँ दर्शनीय हैं। मुग़ल दरबार में यूरोपियन कला का प्रभाव बढ़ रहा था तो भी मुग़ल कला ने अपनी निजी विशेषताएँ'– आलंकारिक योजना, संगत रंगों की शीतलता तथा सुमधुर कोमलता, सीमा रेखा के साथ गोलाई, उभार या डौल की विशेषताओं को बनाए रखा। मुग़ल चित्रों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बादशाहों और उनके मुसाहिबों की दरबारी कला थी, जिसमें जन–जीवन की झाँकी नहीं है। इसमें केवल राज्याधिकारियों, समाज–नियंत्रको और देश के भाग्य निर्णायकों की ही जीवनचर्या व रूचियाँ दिखाई देती हैं। यह चित्रकला जनसाधारण के जीवन से दूर रही और कभी–भी उसका सम्बन्ध लोक भावना से नहीं हो पाया। मुग़ल कला मुग़ल वैभव, विकास और ठाट–बाट में ही खोई रही और उसके अधिकांश चित्र इतने मूल्यवान होते थे कि साधारण जनता इतना व्यय भी नहीं कर सकती थी।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :–

1.1526 ई. में पानीपत के युद्ध में विजय प्राप्त कर बाबर दिल्ली का शासक बना, तभी से भारत में मुग़लों का प्रवेश हुआ।

2. प्रारम्भ में मुग़लकला पर ईरानी कला का प्रभाव था। धीरे–धीरे राजस्थानी अपभ्रंश व दक्षिण शैलियों के प्रभावों

के समन्वय से मौलिक रूप प्राप्त किया।

3. जहाँगीर के समय में मुग़ल कला पूर्ण विकसित हुई।
4. औरंगजेब के शासन में इस कला का पतन हो गया।
5. मुग़ल कला के विषय दरबारी शानोशौकत, शासकों के शबीह चित्र, आखेट– दृश्य, ऐतिहासिक व पौराणिक कथाओं के चित्र व धार्मिक कथाओं से सम्बन्धित थे।
6. अग्रभूमि के चित्रण में यथार्थवादी दृष्टिकोण है।
7. रेखाओं में लयात्मकता व गति है।
8. प्रकृति चित्रण को यथेष्ट स्थान दिया है। नारी–चित्रण गौण है।
9 हाशियों कों भी चित्रित किया है। कहीं– कहीं हाशिये मुख्य चित्र से भी अधिक सुन्दर बने हैं।
10. सादृश्य व यथार्थता लाने के लिये छाया का प्रयोग किया है जिससे गहराई वाला भाग व उठा हुआ भाग स्पष्ट दिखाई देता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1 किन दो ईरानी चित्रकारों ने मुग़ल कला का सूत्रपात किया ?
2 मुग़ल कला को दरबारी कला क्यों कहा जाता है ?
3 जहाँगीर कालीन प्रमुख चित्रकार कौन कौन थे ?
4 मुग़ल कला के पतन के क्या कारण थे ?
5 'शबीह' किसे कहा जाता था ?
6 पशु–पक्षियों के चित्र बनाने के लिए किस मुग़ल चित्रकार को जाना जाता है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1 अकबर कालीन मुग़ल कला की विषय वस्तु व विशेषताएं लिखिए।
2 'जहाँगीर काल मुग़ल कला का सर्वश्रेष्ठ समय था' सिद्ध कीजिए ।
3 मुग़ल कला के विकास क्रम पर निबंध लिखिए ।
4 शाहजहाँ कालीन कला पर विस्तृत टिप्पणी लिखो ।
5 अकबरकालीन प्रमुख चित्रकारों का परिचय दीजिए ।

अध्याय–3

राजस्थानी लघुचित्र शैलियाँ

भारतीय कला विश्व की कला धरोहर में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। अजंता–ऐलोरा की समृद्ध भित्ति चित्रण परम्परा एवं मूर्तन की शास्त्रीयता हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्मों व सम्प्रदायों का प्रभाव लिए मध्यकालीन कलाओं के विकास का आधार बनी। मध्यकालीन कला परम्परा मंदिर निर्माण व मूर्तन के साथ–साथ चित्रण का लघु रूप पाल, अपभ्रंश (जैन), राजस्थानी, मुग़ल एवं पहाड़ी शैलियों के नाम से स्थापित हुआ। इसी चित्रण शैली ने अजंता की वैभवशाली कला परम्परा को कालान्तर में शाश्वतता प्रदान कर भारतीय कला गौरव को ईसा पूर्व दूसरी सदी से वर्तमान तक सुरक्षित रखा है।

उद्‌भव और विकास :–

प्राचीन भारतीय चित्रण परम्परा का लघु रूप में निर्वाह करने वाली राजस्थानी चित्रकला की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उसके नामकरण एवं उद्‌भव स्थान को लेकर विद्वानों ने मतभेद प्रकट किये हैं। लेकिन उत्तरोत्तर शोध अध्ययनों, प्रकाशित पुस्तकों एवं ऐतिहासिक तथ्यपरक प्रमाणों के आधार पर राजस्थानी शैली का उद्‌भव एवं विकास 17वीं सदी से 19वीं सदी के मध्य निश्चित किया गया, किन्तु इससे पूर्व के इतिहास पर विद्वान एक मत नहीं हैं।

लघु चित्रण परम्परा को सर्वप्रथम कला मर्मज्ञ डॉ. आनन्द कैटिश कुमारस्वामी ने अपनी पुस्तक ''राजपूत पेंटिंग (1916 ई) में रेखांकित किया। डॉ. स्वामी ने अर्वाचीन भारतीय चित्रकला के प्रमुख दो वर्ग माने– (1) राजपूत शैली (2) मुग़ल शैली। चूंकि राजपूताना की सीमाओं का विस्तार गुजरात से बुन्देलखण्ड तक और दूसरी ओर हिमालय की तलहटी की पहाड़ी रियासतों से मालवा के मैदानी क्षेत्रों तक था। इस क्षेत्रीय विस्तार के कारण डॉ. ए. के. कुमारस्वामी ने इस शैली को राजपूत शैली के नाम से सम्बोधित किया जो तर्कसंगत जान पड़ता है लेकिन कालान्तर में बेसिल ग्रे, डॉ. हरमेन ग्वेट्स, ओ. सी. गांगुली, रायकृष्ण दास, कुंवर संग्रामसिंह, मोतीचंद्र खजांची, कार्ल खण्डालवाला आदि द्वारा प्रस्तुत शोध पत्रों, ऐतिहासिक तथ्यपरक कला साक्ष्यों एवं पुस्तकों के आधार पर राजपूत शैली की विभिन्न शैलियाँ एवं उपशैलियाँ प्रकाश में आयी। उक्त प्रमाणों एवं कला साक्ष्यों के आधार पर राजपूत शैली को दो मुख्य शैलियों – राजस्थानी चित्रशैली एवं पहाड़ी चित्र शैली के नाम से पुकारा जाने लगा।

स्वतंत्रता के पश्चात राजपूताना ने 'राजस्थान' के नाम से अपनी पहचान कायम की, जिसका उल्लेख हमें 'कर्नल टॉड' ने अपनी पुस्तक ''एनल्स एण्ड एन्टीक्यूटिज ऑफ राजस्थान'' 1829 ई. में 'रायथान' के नाम से सर्व प्रथम किया, जो कालान्तर में राजस्थान कहलाया। अतः राजस्थानी चित्रकला का तात्पर्य इसी प्रदेश में पल्लवित एवं पोषित कला परम्परा से है।

भारतीय इतिहास के अध्ययन एवं विद्वानों द्वारा उपलब्ध साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि पूर्व मध्यकाल अर्थात 7वीं सदी से 12वीं सदी का समय राजस्थान के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण रहा। विशेषकर यह समय साहित्य एवं कला के उत्थान का रहा। उपलब्ध प्राचीनतम प्रमाणों में राजस्थान में ही चित्रित ताड़पत्रिय ग्रंथ ''श्रावण प्रतिक्रमण चूर्णी'' (1260 ई.) आहड़ (उदयपुर) तथा देलवाड़ा से प्राप्त ''सुपासनाहचरियम'' (1422–23ई.) नामक सचित्र ग्रंथ राजस्थानी चित्रकला की आरम्भिक अवस्था को दर्शाता है जिन पर जैन एवं गुजरात

शैली का पूर्ण प्रभाव है। लेकिन इसके पश्चात मिले सचित्र ग्रन्थों जैसे 1426 ई. का कल्पसूत्र, 1451 ई. का बसंत विलास पटचित्र, 1450 ई. का गीत गोविन्द और बाल गोपाल स्तुति प्रमुख हैं, जिनसे राजस्थान शैली के बीजांकुर स्पष्ट दृष्टव्य हैं।

7वीं सदी से 15वीं सदी तक जैन तथा अजैन ग्रंथों को आधार बनाकर लघुचित्रों का व्यापक रूप प्रादेशिक मौलिकता और शास्त्रीय कला तत्त्वों की सामंजस्यपूर्ण सिद्धान्तों के अनुरूप एक नवीन रूप में राजस्थानी शैली में मुखरित हुआ। (12वीं सदी से 15वीं सदी के) मध्यकालीन सचित्र ग्रंथों जैसे – 1540 ई. में चित्रित आदिपुराण, मेवाड़ से प्राप्त चौरपंचाशिखा (1598 ई.), गीत गोविन्द(1610 ई.), 1540 ई. की महापुराण, 15वीं सदी का नियामतनामा, 1540 ई. की मृगावती, जोधपुर भागवत (1610 ई.) एवं कुवंर संग्राम सिंह के संग्रह से प्राप्त रागमाला के चित्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पूर्व के चित्रों में व्याप्त सवाचश्म चेहरे, गरूड़ सी नाक, परवल–फाँक सी बाहर निकली परली आँख, घुमावदार लम्बी ऐठनदार हस्त मुद्राएँ, अधिक उभरा हुआ वक्ष स्थल, अतिभंगीय मुद्राएँ, अकड़न युक्त आसन और प्रतीकात्मक प्रकृति अंकन आदि अपभ्रंशीय रूप 16वी सदी के मध्य तक स्थानीय विशेषताओं से युक्त होकर मेवाड़ शैली के रुप में मुखरित हुआ। चावण्ड से प्राप्त नसिरुद्दीन कृत 1605 ई. की रागमाला चित्र श्रृंखला ने राजस्थानी शैली के तथ्यात्मक आधार को सुदृढ़ता प्रदान की, जिससे यह सर्वमान्य हो गया कि राजस्थानी शैली का उद्भव स्थान मेदपाट (मेवाड़) ही रहा है।

16वीं सदी के पूर्वार्द्ध में गुजरात शैली से प्रभावित जिस समृद्धिशाली मेवाड़ शैली (प्रारम्भिक राजस्थानी शैली) के उदय से भारतीय चित्रकला में नवचेतना संचारित हुई, वह अपभ्रंश शैली, मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन एवं रीतिकालीन साहित्य का नवीन संस्करण था। बिहारी, मतिराम, देव, केशव आदि द्वारा रचित श्रृंगार प्रधान काव्य और सूर, मीरा, नानक, कबीर आदि द्वारा प्रवाहित भक्ति रस की धारा में राधा कृष्ण के लौकिक और अलौकिक स्वरुप को नवीन भाव–विधान और आलेखन की दृष्टि से राजस्थानी शैली ने एक नवीन परिवेश प्रदान किया। जिससे पूर्ववर्ती विषय वस्तु के साथ–साथ रागमाला, बारहमासा, ऋतु वर्णन, नायक–नायिका भेद आदि विषयों का उत्कृष्ट चित्रण हुआ।

शैलीगत वर्गीकरण

राजस्थानी चित्रकला का उद्भव एवं विकास अन्य शैलियों की भाँति न होकर क्षेत्रीय विविधताओं के साथ हुआ। राज्याश्रयों की अनेकता के कारण इसमें रुप वैविध्य का दिग्दर्शन होता है। राजस्थान में जितने भी प्राचीन नगर, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रतिष्ठान रहे, वहीं कलाएँ पनपी और विकसित हुई। धर्मपीठों, धर्माचार्यों, राज्याश्रयों, सामंतों आदि के धर्म एवं कला प्रेम के अतिरिक्त साहित्यकारों, कवियों, चित्रकारों, संगीतज्ञों एवं शिल्पाचार्यों आदि के महत्वपूर्ण योगदान से राजस्थानी शैली अनेक रियासती उप शैलियों में विकसित हुई। 17वीं से 19वीं सदी के मध्य चरमोत्कर्ष को प्राप्त राजस्थानी शैली विभिन्न क्षेत्रीय उपशैलियों का सम्मिश्रित रुप है। राजस्थानी शैली को अध्ययन की दृष्टि से उनकी क्षेत्रीय विशेषताओं एवं भौगोलिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर मुख्यरुप से चार भागों में विभाजित किया गया।

(1) मेवाड़ शैली – उदयपुर, नाथद्वारा, प्रतापगढ़।

(2) मारवाड़ शैली – जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, नागौर, सिरोही।

(3) हाड़ौती शैली – कोटा, बूंदी, झालावाड़।

(4) ढूँढ़ाड़ शैली – जयपुर, उणियारा, अलवर, शेखावटी।

लेकिन कालान्तर में प्रत्येक शैली की मौलिकता पर विचार कर राजस्थानी शैली की प्रमुख शैलियों एवं उपशैलियों का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार कर बीकानेर, किशनगढ़, कोटा, बूंदी, अलवर आदि को स्वतंत्र शैली के रूप में स्थापित किया गया।

मेवाड़ शैली

राजस्थानी चित्रकला में मेवाड़ शैली का सर्वोपरि स्थान है। मेदपाट या मेवाड़ (उदयपुर) प्राचीन समय से ही कलाओं का प्रेरणा स्रोत रहा है इसलिए राजस्थानी चित्रकला के उद्भव और विकास तथा ऐतिहासिक मूल्यांकन में मेवाड़ शैली की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मेवाड़ का इतिहास वीरता, स्वतंत्रता व समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की रक्षा एवं धर्म के संरक्षण के लिए प्रसिद्ध रहा है। विपत्तियों और बाधाओं से विचलित हुए बिना धर्म, कला व संस्कृति की रक्षार्थ मेवाड़ सदैव अग्रणी रहा है। वास्तु, साहित्य, संगीत, एवं कला के प्रति राणा कुंभा के असीम प्रेम के उदाहरण कुम्भलगढ़ के दुर्ग, राजप्रसादों के रुप में आज भी विद्यमान हैं राणा सांगा (1509–28 ई.) के मुग़लों के

साथ संघर्ष और उसके पश्चात चितौड़ के ध्वस्त होने के पश्चात महाराणा उदयसिंह (1536–72 ई.) द्वारा उदयपुर की स्थापना की। कालान्तर में महाराणा प्रताप द्वारा छप्पन की पहाड़ियों में चावण्ड को राजधानी बनाया। मुग़लों से सदैव संघर्षरत रहने के उपरान्त भी मेवाड़ के शासकों ने कलाओं को बराबर आश्रय प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप कुम्भलगढ़, चित्तौड़, उदयपुर एवं चावण्ड प्रारम्भिक मेवाड़ शैली के प्रमुख केन्द्र रहे।

17वीं सदी में अमरसिंह प्रथम (1597–1620 ई.) द्वारा मुग़लों की आंशिक अधीनता स्वीकारने के पश्चात मेवाड़ शैली पर मुगलिया प्रभाव परिलक्षित होने लगा। जो महाराणा कर्णसिंह और महाराणा जगतसिंह प्रथम तक अनवरत जारी रहा। मेवाड़ शैली के विकास में महाराणा प्रताप के समय में चावण्ड में चित्रित नसिरूद्दीन कृत 'रागमाला' चित्रमाला (1605 ई.) का विशेष महत्व है। जिसमें स्थानीय लोक कला तत्वों और रंगों का चटकीलापन उसकी स्थानीय पहचान को स्थापित करती है। इसी क्रम में जगतसिंह के समय का 'नायक–नायिका भेद' का युगल चित्र शैली की उन्नत परम्परा को रेखांकित करता है। 1640 ई. महाराणा जगतसिंह का समय मेवाड़ शैली का स्वर्णकाल रहा। इस समय जहाँगीर कालीन मुग़ल शैली का प्रभाव और वल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव स्वरूप कृष्ण के प्रति अनुराग अपने चरम पर था। जहाँ तत्कालीन चित्रकारों के समक्ष कृष्ण की भाव–लीलाओं के साथ–साथ भागवत पुराण, गीत गोविन्द, सूर सागर, रामायण आदि ग्रंथ चित्रण के प्रमुख विषय रहे। 1648 ई. में शाहबुद्दीन द्वारा चित्रित भागवत पुराण के चार स्कंधों के 123 चित्र अत्यधिक महत्व के हैं जिनमें जोगिया पीला, लाल, हरा और नीला रंग विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त मनोहर द्वारा चित्रित 1649 ई. में रामायण, गीत गोविन्द और 1650–51 ई. में चित्रित सूर सागर नामक ग्रन्थ आदि जगतसिंह के कला प्रेम की पुष्टि करते हैं। इनके अतिरिक्त रीतिकालीन साहित्य से प्रभावित होकर श्रृंगार प्रधान विषयों के रूप में बारहमासा, ऋतुवर्णन, नायक नायिका भेद एवं रागमाला आदि विषयों पर आधारित सुन्दर चित्रण मेवाड़ शैली में अधिक हुआ है। जिसकी पुष्टि राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित रागमाला चित्रावली और केशव की रसिकप्रिया व रामचंद्रिका आदि ग्रन्थों के आधार पर होती है।

जगतसिंह के समय की मेवाड़ शैली की समृद्ध परम्परा ने राजसिंह के शासन काल में उत्कर्ष को प्राप्त किया। प्रसिद्ध चित्रकार शाहबुद्दीन कृत 'भ्रमरगीत' 1655 ई, नामक चित्रित ग्रंथ इस समय की विशेष उपलब्धि थी। यह वह समय था जब औरंगजेब की हिन्दु विरोधी नीति चरम पर थी। इसी दौरान मुग़ल आक्रमण की परवाह किये बिना महाराणा राजसिंह ने 1670 ई. में मेवाड़ के सिहाड़ नामक गांव में गोवर्धन से पधारे श्रीनाथ जी के विग्रह को स्थापित कर मेवाड़ की धर्म रक्षा परम्परा को बनाये रखा।

मेवाड़ में वल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टिमार्गी परम्परा की स्थापना से मेवाड़ अंचल में कृष्ण का स्वरूप निखरकर सामने आया। ज्ञातव्य है कि पुष्टिमार्गी परम्परा में चित्र सेवा और हवेली संगीत परम्परा एक मुख्य अनुग्रह मार्ग रहा है। जिसके फलस्वरूप श्री नाथ जी के विग्रह के साथ मथुरा और गोवर्धन से अनेक धर्मनिष्ठ चित्रकार और संगीतज्ञ भी आये। उन्होंने मेवाड़ शैली से सामंजस्य स्थापित कर एक नवीन किंतु पूर्णतया कृष्ण समर्पित नाथद्वारा शैली का प्रादुर्भाव किया, जो आगे चलकर मेवाड़ की उपशैली के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इस शैली के चित्रों की विषय वस्तु के रूप में श्री नाथ जी के प्राकट्य एवं लीला–भाव सम्बंधित असंख्य चित्र कागज़ और कपड़े पर बनने लगे। उनमें भी श्री नाथ जी की प्रतिमा के पीछे लगने वाले कपड़े पर बने चित्र 'पिछवई चित्र' कहलाये। जो अपनी मौलिकता के कारण देश–विदेश में विशेष ख्याति प्राप्त हैं।

महाराणा जगतसिंह एवं राजसिंह के समय में अपने उत्कर्ष को प्राप्त मेवाड़ शैली पर परवर्ती शासकों जैसे – महाराणा जयसिंह, अमरसिंह द्वितीय संग्राम सिंह द्वितीय आदि के समय

चित्र संख्या–1 पिछवाइ चित्रण

में मुग़ल प्रभाव पूर्णतया झलकने लगा। जो हमें संग्राम सिंह द्वितीय के समय चित्रित 'बिहारी सतसई' (1717 ई.) में स्पष्ट परिलक्षित होता है। मेवाड़ शैली का यह मिश्रित स्वरूप राजदरबारों, स्थानीय रियासतों, वैष्णव पीठों में 19वीं सदी तक चलता रहा। जो आज भी यह क्रम श्री नाथ जी की सेवा में और स्वतंत्र रूप से अनवरत जारी है लेकिन व्यावसायिक दृष्टिकोण ने इसकी मौलिकता को अवश्य प्रभावित किया है।(चित्र सं. 1)

विशेषताएँ :–

1. प्रारम्भिक मेवाड़ शैली पर अपभ्रंश शैली (गुजरात– मालवा) का प्रभाव दृष्टव्य है, जो स्थानीय लोक शैली से मिलकर रंगों के चटकपन, प्रकृति की अलंकारिक रूप–सृजना एवं मोटे रेखांकन से युक्त देशज प्रभाव लिए प्रकट हुई।

2. 17वीं सदी के चित्रों में रंगों का सूफियापन, छाया–प्रकाश एवं चेहरे की सौष्ठवता उभरी। पुरूष आकृति गठीली मूछों युक्त, उभरा ललाट, विशाल नैत्र तथा सुन्दर पगड़ी से सुशोभित चित्रित किया गया। वहीं नारी आकृति छोटा कद, कसा हुआ वक्ष स्थल, मीनाकार नयन, छोटी चिबुक और आभूषणों एवं फुदनों से सजी लम्बी वेणी युक्त राजस्थानी परिधानों में चित्रित किया गया है।

3. मेवाड़ शैली में आलेखन स्थान को कथानक के अनुरूप कई भागों में विभक्त कर चित्र को संयोजित किया गया। चित्र में एक खण्ड में श्रृंगारिक नायिका है तो दूसरे खण्ड में वासक सज्जा नायिका का चित्र सृजित है वहीं चित्र के तृतीय खण्ड में परिचारिकाओं से घिरी नायिका चित्रित है। इस प्रकार प्रत्येक खण्ड अपने आप में स्वतंत्र संयोजन है लेकिन सभी खण्ड मिलकर चित्र को एक पूर्ण कृति का स्वरूप देते हैं।

4. हाशिये विशेष रूप से स्थानीय प्रभाव लिए लाल–हिंगुल तथा सिंदूरी रंगों से युक्त बनाये गये। कालान्तर में मुग़ल प्रभाव के कारण अलंकरण युक्त बने।

5. मेवाड़ शैली में चित्रित विषयों में भागवत पुराण, गीत गोविन्द, सूर सागर, बिहारी सतसई, रसिकप्रिया, लौरचंदा, रामायण, कृष्ण–लीलाओं के अलावा रागमाला, बारहमासा, ऋतुवर्णन, नायक–नायिका भेद और लोक–कथाओं का चित्रण प्रमुख विषय रहे। 18वीं सदी के अंत तक श्री नाथ जी को विषय बनाकर बहुलता से चित्र बने। संक्षेप में बाल कृष्ण, गोपाल कृष्ण और श्रृंगारी मदन–मोहन का चित्रण मेवाड़ शैली की प्रमुख देन है। मूलतः सौन्दर्यानुभूति ही मेवाड़ शैली का मुख्य ध्येय रहा है।

6. मेवाड़ शैली के प्रारम्भिक चित्रों की पृष्ठभूमि में लोक प्रभाव लिए पर्देनुमा सपाट वास्तु और वनस्पति अंकित की गई, लेकिन कालान्तर में अन्तराल गुण का समावेश हुआ जहाँ चित्रों की पृष्ठभूमि में स्थानीय प्रभाव लिए सफेद वास्तु एवं क्षेत्रीय वनस्पति के रूप में आम, कदली युक्त सघन वन संपदा के चित्रण के साथ पशु–पक्षियों में हाथी, शेर, हिरण, बंदर, मयूर, शुक, सारस, हंस, कोयल, चकोर आदि का चित्रण प्रमुखता से हुआ। 18वी सदी में मुग़ल प्रभाव के कारण पृष्ठभूमि में रात्रि कालीन दृश्यों में चांद और तारों से आच्छादित आकाश का भव्य चित्रण देखने को मिलता है।

7. मेवाड़ शैली के प्रमुख चित्रकारों को मनोहर, शाहबुद्दीन, नासिरूद्दीन, मेरू, कृपाराम, रामप्रताप, नयनचन्द्र जीवा, अमरा, शिवदयाल और रघुनाथ आदि प्रमुख रहे।

18वीं सदी के अंत में मेवाड़ शैली अपनी चारूता एवं भव्यता मुग़ल एवं पाश्चात्य शैली के प्रभाव स्वरूप खोने लगी।

मारवाड़ शैली

राठौड़ राजवंशी राव जोधा द्वारा स्थापित राज्य और वहाँ के विभिन्न ठिकानों में पल्लवित होने वाली चित्र शैली मारवाड़ या जोधपुर शैली के नाम से जानी जाती है। यह शैली भी मेवाड़ शैली की भाँति अपनी प्राचीनता के लिए प्रसिद्ध है। मेवाड़ के अनुरूप मरूप्रदेश में भी भारतीय चित्र एवं मूर्तन की वैभवशाली विरासत के जीवंत उदाहरण प्रतिहारों की राजधानी मण्डोर के द्वारस्थलों, राजप्रासादों एवं मंदिरों में देखने को मिलता है। तिब्बती यात्री लामा तारानाथ द्वारा 7वीं सदी में मरूप्रदेश में श्रृंगधर नामक चित्रकार का उल्लेख मारवाड़ शैली की चित्रण परम्परा की प्राचीनता को प्रमाणित करती है। जैन धर्म के अत्यधिक प्रभाव एवं तात्कालिक व्यापारिक केन्द्र होने के कारण 10वीं से 15वीं सदी के बीच चित्रित अनेक ताड़पत्रीय जैन ग्रन्थों के द्वारा मारवाड़ शैली की कलात्मक पृष्ठभूमि प्रमाणित होती है। मारवाड़ की सांस्कृतिक परम्परा एवं कलात्मक परिवेश को नवीन धरातल प्रदान करने का श्रेय राव मालदेव को है। मालदेव ने अपनी दूरदर्शिता, वीरता, विद्वत्ता के द्वारा विभिन्न रियासतों जैसे घाणेराव, सिरोही, नागौर, नाडोल, पाली, सोजत, जालोर, पोकरण आदि को मिला कर स्वतंत्र मारवाड़

राज्य की नींव रखी। जो कई सदियों तक राठौड़ राजवंश के अधीन रहे।

मारवाड़ शैली के प्रारम्भिक चित्र साक्ष्यों में बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित 1591 ई. का 'उत्तराध्ययन सूत्र' ग्रंथ एवं नाडौल, पाली, जालोर के जैन स्थलों एवं जोधपुर पुस्तक प्रकाशन जोधपुर और जैसलमेर के भण्डारों से प्राप्त 'कल्पसूत्र' और अन्य ग्रन्थों की प्रतिलिपियों की उपलब्धता मारवाड़ शैली पर जैन–गुजरात शैली के प्रभाव को रेखांकित करती है लेकिन साथ में यह भी स्पष्ट होता है कि मारवाड़ अपने समय का महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र भी रहा होगा। कुंवर संग्राम सिंह के संग्रह में 1623 ई. की बनी रागमाला चित्र शृंखला के कुछ चित्रों को मारवाड़ की प्रारम्भिक अवस्था के प्रामाणिक साक्ष्य माना जाता है।

मारवाड़ शैली का विकास समकालीन परिस्थितियों के अनुरूप हुआ। अपभ्रंश और मुग़ल प्रभाव से युक्त मारवाड़ शैली अपनी मौलिकता के लिए उल्लेखनीय है। महाराजा सूरसिंह के समय (1545–1620 ई.) मारवाड़ शैली ने एक निश्चित रूप ग्रहण किया। राजा सूरसिंह कालीन अनेक चित्र बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित है। उनके समय के सचित्र ग्रंथों में जोधपुर भागवत 1610 ई. और सूर–सागर के पद रसिक प्रिया का चित्रण एवं ढोला–मारू के चित्र मरूप्रदेशीय रंगों की चटकता एवं वस्त्राभूषणों का अभिजात्य रूप भौतिक चारूता को परिलक्षित करते हैं।

राजा जसवंत सिंह एक विद्वान एवं कला प्रेमी थे। उनके समय में मारवाड़ वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र रहा और कृष्ण चरित्र को आधार बनाकर अधिकाधिक चित्रण हुआ। जसवंतसिंह के पश्चात मारवाड़ राज्य मुग़लों से सदैव संर्घषरत रहा। कालान्तर में अजीतसिंह के समय(1724 ई.) यह पुनः अपने वैभव को प्राप्त हुआ। अजीत सिंह के पश्चात उनके पुत्र अभयसिंह (1724–48 ई.) और बढ़त सिंह (1624–52 ई.) के समय क्रमशः जोधपुर, नागौर में चित्रकला के रुप में भित्ति चित्रण एवं पोथी चित्रण परम्परा में राधा–कृष्ण और प्रेम आख्यानों में ढोला–मारू, उजळा–जेठवा व अंतःपुर की स्त्रियों के अनेक सुन्दर चित्रों की रचना हुई। यह परम्परा महाराजा विजयसिंह से भीमसिंह तक अर्थात 1803 ई. तक यथावत चलती रही। महाराजा मानसिंह के राज्यारोहरण (1803–43 ई.) के पश्चात

चित्र संख्या–2 कृष्ण पूजा

मारवाड़ शैली में एक नवीन विषय वस्तु के रूप में 'नाथ पंथ' सम्प्रदाय से सम्बन्धित चित्रों की भी रचना होने लगी। मानसिंह के पश्चात तख्तसिंह (1843–75 ई.) ने पुनः कृष्ण विषयक चित्रों का निर्माण करवाया। उनके समय के तख्त विलास, तीजां मांजीसा के मन्दिर आदि में सुन्दर भित्ति चित्र जोधपुर दुर्ग में विद्यमान हैं। लेकिन 18वीं सदी से मुग़ल प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा जिसकी पूर्ण परिणती महाराजा जसवंत सिंह द्वितीय (1873–95 ई.) के समय के चित्रों में देखी जा सकती है। चित्र सं. 2

19वीं सदी के मध्य तक अन्य राजस्थानी चित्र शैलियों की भाँति मारवाड़ शैली भी पाश्चात्य कला प्रभाव में अपनी मौलिकता से विमुख हो गई। लेकिन मारवाड़ शैली में जोधपुर के अतिरिक्त बीकानेर एवं किशनगढ़ राज्य प्रमुख कला केन्द्र प्रभावशाली ढ़ंग से उभरे। जिनका अध्ययन हम स्वतंत्र शैलियों के रुप में आगे करेंगे।

विशेषताएँ

मेवाड़ और अपभ्रंश शैली से आंशिक प्रभावित मारवाड़ शैली अपनी मौलिक विशेषताओं के कारण अलग स्थान रखती है।

1. मारवाड़ शैली में पुरूष आकृति लम्बी कदकाठी युक्त, शौर्य

से परिपूर्ण मुखमण्डल घनी दाढ़ी मूँछों युक्त अरूणाभ विशाल नेत्र, लम्बी नासिका एवं शिखरनुमा पगड़ियाँ विशेष दर्शनीय हैं। कालान्तर में मुगलिया प्रभाव वस्त्राभूषणों में दृष्टिगोचर होता है।

2. नारी आकृति लम्बी छरहरी कदकाठी और आभूषणों से युक्त सुन्दर मुख मण्डल, उभरा ललाट, खंजनाकृति नेत्र, कपोलों तक झूलती सर्पाकार अलकावलियां और अंग–प्रत्यंगों का अनूठा गठन ठेठ राजस्थानी लहंगा, तंग कंचुकी और पारदर्शी ओढ़नी में झांकती लाल फुदनों से युक्त वेणी स्त्री देह को सौष्ठव प्रदान करती है। कालान्तर में मुग़ल प्रभाव स्वरूप नारी आकृतियों को धराकृति लम्बे फ्रिलदार जामें पहने चित्रित किया गया।

3. मारवाड़ी शैली के चित्रों में प्रायः गेरूआ पीला रंग अधिकता से प्रयुक्त हुआ। हाशिये लाल रंग से चित्रित कर उन्हें पीले रंग से सीमांकित किया गया है। दक्खिन शैली के आंशिक प्रभाव से पृष्ठभूमि में हरे रंग की झलक उत्तरकालीन चित्रों में देखने को मिलती है।

4. पृष्ठभूमि में सफेद रंग के वास्तु का अंकन और मरूस्थलीय प्रभाव लिए वनस्पति चित्रतल में कहीं–कहीं अंकित की गई। पशु–पक्षियों में ऊँट, घोड़े, कुत्ते, खरगोश, हिरण, मयूर, कौवे, तीतर, बाज, बटर आदि का चित्रण प्रधानता लिए हुए है।

5. विषय वस्तु में मारवाड़ शैली राजस्थान की अन्य चित्र शैलियों की अपेक्षा अधिक समसामयिक रही। अस्तु यहाँ परम्परागत विषयवस्तु जैसे दुर्गा सप्तशती, रामायण, शिवपुराण, कृष्ण विषयक चित्र और रागमाला, ऋतुवर्णन, कामसूत्र, अन्तःपुर के चित्र, दरबारी सभी हैं। नायक–नायिका भेद, बारहमासा आदि के चित्रण के अतिरिक्त प्रेम आख्यानों का प्रभावी चित्रण हमें ढोला–मारू, मूमलदे–निहालदे, उजळा–जेठवा, रानी रूपमति–बाज बहादुर के चित्रों और लोक कथाओं में पाबूजी, हडबूजी, नाथपंथ आदि विषयों के रूप में जनसामान्य के जीवन सम्बन्धित चित्रण मारवाड़ शैली की निजी विशेषताएं हैं।

6. मारवाड़ शैली के प्रमुख चित्रकारों में भाटी जाति के लोग संबद्ध रहे जिनमें भाटी किशनदास, भाटी शिवदास भाटी देवदास, भाटी वीरजी, नारायण दास, छज्जु भाटी, शंकरा भभूता जीतमल, दाना, फतेह मौहम्मद, गोपी आदि का योगदान उल्लेखनीय रहा।

बीकानेर :–

बीकानेर की स्थापना राव बीका जी ने की थी। मारवाड़ का ही एक अंग होने के कारण बीकानेर की कलात्मक धरोहर मारवाड़ स्कूल की ही परम्परा में एक महत्वपूर्ण कड़ी गिनी जाती है। बीकानेर राज्य अनेक बाह्य प्रभावों के उपरांत भी कलात्मक दृष्टि से अपना मौलिक स्थान रखता है। अन्य राजस्थानी शैलियों की भांति बीकानेर की चित्रकला का भी प्रादुर्भाव 16वीं शताब्दी के अंत में माना जाता है। बीकानेर राज्य का मुग़ल दरबार से गहन सम्बन्ध होने के कारण मुग़ल शैली की सभी विशेषताऐ बीकानेर की प्रारंभिक चित्रकला में दिखाई देती हैं। बीकानेर के राजा अधिकतर दक्षिणी मोर्चो पर मुग़लों के गर्वनर रहे, अतः दक्षिण शैली का प्रभाव बीकानेर पर सर्वाधिक है। बीकानेर शैली के चित्रों में कलाकार का नाम, उसके पिता का नाम और संवत् उपलब्ध होता है। महाराजा राय सिंह ने बीकानेर शैली के विकास में बहुत योगदान दिया। प्रसिद्ध उस्ता परिवार औरंगजेब के समय में महाराजा कर्णसिंह और अनूप सिंह के दरबार में बीकानेर आया। महाराजा कर्ण सिंह ने अली रजा नाम के मुग़ल चित्रकार को अपना प्रिय चित्रकार बनाया

चित्र संख्या–3 रानी रुपमती बाज बहादुर

था। अनूपसिंह के काल में जो चित्र तैयार हुए उनमें विशुद्ध बीकानेरी शैली के दर्शन होते हैं। उनके दरबारी मुसब्बिर रुक्नुद्दीन का योगदान महत्वपूर्ण है। उसने सैकड़ों चित्र बनाए। केशव की रसिकप्रिया तथा बारहमासा के चित्र महत्वपूर्ण हैं। रुक्नुद्दीन का पूरा परिवार बीकानेर की कला के लिए समर्पित हो गया। उसके बेटे साहबदीन ने भागवत पुराण के चित्र बनाये तथा उसके पोते कायम ने 18 वीं सदी के प्रारंभ में बीकानेर शैली का चित्रण किया। महाराजा अनूप सिंह के समय में मथेरण परिवार के मुन्नालाल, मुकुन्द, चन्दूलाल आदि ने भी बीकानेर शैली के विकास में विशेष योगदान दिया। मथेरण परिवार तथा उस्ता परिवार के कलाकारों के कला–प्रेमी राजा अनूपसिंह के युग में बीकानेर शैली को चर्मोत्कर्ष पर पहुंचा दिया। मुग़लों के पतन के कारण बीकानेर शैली मुग़ल शैली से मुक्त हो गई तथा जयपुर, बूंदी, मेवाड़, पहाड़ी आदि शैलियों का प्रभाव बीकानेर शैली पर आया। भित्ति–चित्रों की राजस्थानी परंपरा को भी बीकानेर शैली ने आगे बढ़ाया। बीकानेर किले के महल, लालगढ़ पैलेस, अनेक छतरियाँ आदि का भित्ति–चित्रण इस ष्टि से महत्वपूर्ण है। ऊँट की खाल पर चित्रण भी बीकानेर की निजी विशेषता रही है। इस परंपरा को उस्ता कलाकार आज भी निभा रहे हैं।

बीकानेर चित्र शैली की मुख्य विषय– वस्तु भागवत पुराण, माधवानल कामकेदला, चौर–पंचासिका, चावंड़ की रागमाला, रसिक प्रिया, बारहमासा, रामायण, देवी माहात्म्य, दरबार, आखेट, श्रृंगारिक विषय एवं व्यक्ति चित्रण रही हैं। इसके अतिरिक्त नारी–शिबिका, शाल भंजिका, नायिका श्रृंगार, पुरुषक्रीड़ा, फुलझड़ियां लिए हुए स्त्रियां, दम्पति द्वारा चौपड़ का खेल आदि विषयों का प्रचुरता से अंकन हुआ है। इस शैली में आकाश को सुनहरे छल्लों से युक्त मेघाच्छादित दिखाया गया है। बीकानेर शैली की मानवतियाँ जोधपुर की ही परंपरा पर लंबे कद की है। चेहरा भूरा, मूछों से ढका हुआ, भारी मांसल शरीर, विशाल वक्ष पर मोतियों की कंठी, नीचे जामा, कमर में कटार दुपट्टे में रखी बनाई गई है। नारी आकृतियाँ भी जोधपुर परंपरा पर लम्बी छरहरी नायिकाएँ, खंजन पक्षी से तीखे नेत्र, तंग कंचुकी, घेरदार घाघरे, कसा हुआ शरीर एवं आलंकारिक आभूषणों से सुसज्जित हैं। लंबी इकहरी नायिकाएँ, नारियल के वृक्षों का दक्कनी अंकन, उछलते फव्वारों, हरे रंग का प्रयोग विशेष दर्शनीय है। बीकानेर शैली में रेखाओं की गत्यात्मकता, कोमलांकन एवं बारीक रेखांकन दर्शनीय है। रेखाओं का संयोजन प्रभावशाली है। चटक रंगों के स्थान पर यहाँ कोमल रंगों का प्रयोग हुआ है। लाल, बैगनी, जामुनी, सलेटी, बादामी रंगों का अधिकाधिक प्रयोग इस शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस शैली के चित्रों में लघु चित्र एवं भित्ति चित्र दोनों का समान अंकन हुआ है। बीकानेर शैली के चित्रों की मुख्य विषय–वस्तु महाभारत, रामायण, कृष्णलीला एवं नायक–नायिका भेद हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ रसिकप्रिया, रागमाला, व्यक्ति चित्रण, शिकार का दृश्य, शाल–भंजिका, भागवत् पुराण एवं राजस्थानी लोक कथाओं का अंकन यहाँ के चित्रों की मुख्य विषय–वस्तु थी। (चित्र सं. 3) बीकानेर चित्र शैली के प्रमुख चित्रकारों में मुन्नालाल, मुकुन्द, रामकिशन, जयकिशन, मथेरण, चन्दूलाल का नाम उल्लेखनीय है। बीकानेर शैली के चित्रण में उस्ता परिवार के चित्रकारों उस्ता कायम, कासिम, अबुहमीद, शाह मुहम्मद, अहमद अली एवं शाहबुद्दीन आदि प्रमुख चित्रकार थे। इन्होंने रसिकप्रिया, बारहमासा, राग–रागिनी श्णलीला, शिकार, महफिल तथा सामंती वैभव का चित्रण किया। यहाँ भवनों के गुम्बदों को विशेष रुप से चित्रित किया गया है। प्रति चित्रण में विशेष छल्लेदार बादलों, वर्षा काल में बिजली का अंकन एवं सारस युगल को सुन्दरता से चित्रित किया गया है। आकाश में नीली, सुनहरी एवं लाल आदि आभायुक्त वर्णिका का प्रयोग हुआ है। व्यक्ति चित्रों में टीलों का प्रतीकात्मक अंकन है। चित्रों की पृष्ठभूमि का अंकन कोमल एवं वातावरण के अनुसार परिप्रेक्ष्य का चित्रांकन किया गया है। शाल भंजिका चित्रों में वृक्षों एवं मानव आतियों में अधिक लोच व आकर्षण है। बीकानेर चित्र शैली बारीक रेखांकन, कोमल एवं गत्यात्मक रेखाओं, चटक एवं कोमल रंगों के समन्वय से राजस्थानी चित्रकला में अपना विशिष्ट स्थान एवं महत्व रखती है।

किशनगढ़ शैली :–

पहाड़ी कला में कांगड़ा शैली का जो स्थान है वही राजस्थानी कला में किशनगढ़ शैली का है। कांगड़ा के चितेरों ने जिस प्रकार नारी छवि का मनोरम अंकन कर अपनी कला को निखारा ठीक वैसा ही नारी का अनुपम सौन्दर्य किशनगढ़ शैली की महत्ता नारी चित्रण में निहित माधुर्य एवं भाव वैशिष्ट्य की दृष्टि से है। राधा–कृष्ण की मनोरम झाँकियां प्रस्तुत करने

चित्र संख्या–4 कृष्ण राधा

में तो यहाँ के कलाकारों ने कमाल किया है। स्वर्ग को भी विमुग्ध कर देने वाली कल्पना की ऐसी पार दृष्टि किशनगढ़ शैली की मौलिक देन है जहाँ राधा के रूप में मनमोहिनी नारी आकृति 'बणी–ठणी' के नाम से विश्व प्रसिद्ध है जो राजस्थानी शैली में नारी आकृति के काव्यपूर्ण भाव सौन्दर्य का सर्वोत्तम उदाहरण है। किशनगढ़ शैली को विशिष्टता प्रदान करने तथा इसकी मौलिकता को रेखांकित करते हुए इसे स्वतंत्र शैली के रूप में ख्यातिनाम करने का क्षेत्र कलामर्मज्ञ सर ऐरिक डिकिन्सन एवं डॉ. फैयाज अली को है। जिनके प्रयासों से वर्षों तक कपड़ भण्डार की गठरियों में बंद पड़ा रहा यह विलक्षण चित्र सौन्दर्य अचानक ही नाटकीय ढंग से 1943 ई. में उद्घाटित हुआ।

वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र रहे किशनगढ़ की स्थापना राजा किशनसिंह ने 1609 ई. में एक स्वतंत्र रियासत के रूप में की। जोधपुर राज्य एवं मुग़लों से मैत्रीपूर्ण सम्बंधों के कारण किशनगढ़ को राजसी वैभव और कलात्मक जीवन विरासत की में मिली। मारवाड़ शैली की उन्नत शाखा किशनगढ़ शैली एक सदी उपरांत राजा सावंत सिंह के समय में अपने चरम पर पहुँची। अपनी मौलिकता एवं निजी विशेषताओं के कारण यह शैली राजस्थानी शैलियों में सर्वोपरि स्थान रखती है। किशनसिंह और उनके पुत्र सहस्रमल के समय से ही किशनगढ़ वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्रों में से था। इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए पीढ़ी के पांचवें राजा रूपसिंह ने राधा–कृष्ण की भक्ति को ही जीवन का साध्य माना। उनके पश्चात उनके पुत्र मानसिंह, जो स्वयं कवि एवं कला प्रेमी थे, ने कृष्ण अनुयायी होने के नाते कृष्ण विषयक चित्रों में रूचि दर्शायी। उनके समय के चित्रित प्रमाण कपड़ भण्डार किशनगढ़ में विद्यमान है। उनके पश्चात राजसिंह के काल में भी चित्रकला एवं साहित्य का व्यापक प्रसार–प्रचार हुआ। उनके समय के चिह्नित 33 ग्रंथ उनके कला प्रेम को प्रमाणित करते हैं।

1718 ई. में सावंत सिंह के राज्यारोहण के साथ ही किशनगढ़ शैली ने करवट बदली। बचपन से ही वल्लभ सम्प्रदायी परम्परा से संस्कारित सावंत सिंह कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनके समय में राधा–कृष्ण सम्बन्धित लीला भावों के चित्र उनके कृष्ण अनुराग को परिलक्षित करते हैं। राज्य के वैभव के प्रति उदासीन होकर काव्य, संगीत एवं चित्रकला के द्वारा अपने को कृष्ण पर न्यौछावर कर दिया और वे नागरी दास के रूप में पहचाने जाने लगे। 18वीं सदी के मध्य तक बने चित्रों में राधा–कृष्ण के माधुर्य भाव को नवीन ढ़ंग से चित्रित किया

गया। उस नवीनता के आधार पर मूलतः कृष्ण भक्ति और दूसरी तरफ उनकी प्रेयसी 'बणी–ठणी' के प्रति आसक्ति भाव जो अपने अद्वितीय रूप सौन्दर्य के कारण तात्कालीन राधा के रूप में नारी चित्रों का मूलाधार बनी। नागरी दास और बणी–ठणी के प्रेम भाव को दरबारी चित्रकार निहालचन्द ने राधा–कृष्ण के रूप में चित्रित कर अमर कर दिया। चित्र सं. 4 किशनगढ़ शैली के इतिहास में सावंतसिंह एवं उनके दरबारी चित्रकार निहाल चंद का वही स्थान है जो कागड़ा शैली में राजा संसार चंद्र और उनके दरबारी चित्रकारों का था। कवि हृदय सावंत सिंह ''नागरी दास'' ने 1723–31 ई. के मध्य नागर सामुच्य, मनोरथ मंजरी, रसिक रत्नावली और बिहारी चंद्रिका नामक ग्रंथों की रचना कर कृष्ण काव्य के वैभव में विशेष योगदान दिया। उन्होंने ही 'बणी–ठणी' के रूप सौन्दर्य को राधा का प्रतीक मान कर काव्य और चित्रकला के माध्यम से अपने प्रेम व समर्पण को अभिव्यंजना प्रदान की। सावंत सिंह के समय के चित्रों में पुरूष एवं नारी आकृतियों का नयनाभिराम अंकन राजस्थानी शैली की अन्य शैलियों से सर्वथा भिन्न एवं मौलिक था। जो आगे चलकर पुरूष–नारी आकृति चित्रण का आदर्श बना। सावंतसिंह की बणी–ठणी के प्रति आसक्ति और कृष्ण प्रेम के चलते राज–काज में विरक्ति लेकर अपनी प्रेयसी के साथ 'राधा–माधव' लीला स्थली वृंदावन चले गये। जहाँ 1763 में बणी–ठणी और 1764 में नागरीदास देवलोक को गमन कर गये। आज भी दोनों की समाधियां एक दूसरी के समीप बनी हुई हैं।

किशनगढ़ शैली में सावंत सिंह के पश्चात हुये राजाओं में बहादुर सिंह, बिड़दसिंह, कल्याणसिंह आदि के शासन काल में कला का विकास अनवरत चलता रहा। इनके शासन काल के चित्रकारों में सीताराम, बदनसिंह, नानकराम, रामनाथ, सवाईराम और लाडलीदास प्रसिद्ध थे। 1820 ई. में लाडलीदास द्वारा चित्रित 'गीतगोविन्द' की प्रति उस समय के कला वैभव को रेखांकित करती है। क्योंकि इनके पश्चात किशनगढ़ शैली की अलौकिक छवि धीरे–धीरे विलीन होने लगी और 19वीं सदी के अंत तक पतनोन्मुख हो गयी।

विशेषताएँ :–

1. किशनगढ़ शैली धार्मिक जीवन की सात्विकता एवं भौतिक जीवन की चारूता के राग रंग का समायोजित भाव सौन्दर्य का पयार्य है, जो इस शैली की अपनी मौलिक विशेषता है। यह निजता इसे राजस्थानी कला की अन्य शैलियों से अलग वैशिष्ट्य प्रदान करती है। नर–नारी के अंग प्रत्यंगों का अलौकिक अंकन, प्रकृति का विराट रंगमंचीय प्रभाव, रंगों का मिश्रित प्रयोग और राधा–कृष्ण का भावमयी काव्यात्मक चित्रण इस शैली में विशेष महत्त्व रखता है।

2. शैली की पुरूषाकृति लम्बी छरहरी नीलवर्णी कायायुक्त, जटाजूट की भाँति ऊपर उठी मोतीयों से सुसज्जित श्वेत मूंगियां पगड़ी, समुन्नत ललाट, लम्बी नासिका, मधुर स्मित से युक्त हिगुली पतले अधर और खंजनाकृति कर्णवत खीचे अरूणाभ, नयन, नुकीली चिबुक, अजानु, भुजाएं, पतली सुकुमार अंगुलियों से युक्त मनोरम कृष्ण काया बदन पर झुलते मौहम्मदशाही पारदर्शी जामें में अति सुन्दर चित्रित की गई है।

3. नारी आकृति अंकन में नारी सुलभ लावण्य युक्त सौन्दर्य में गौरववर्ण, बांके काजल युक्त विशाल मोहक नयन, कपोलों तक आच्छादित पलकें, अर्द्धविकसित किंतु उन्नत खींचा हुआ वक्षस्थल, लहंगा, कंचुकी और पारदर्शी ओढ़नी में युक्त वस्त्राभूषणों युक्त कोमल काया का नयनाभिराम अंकन हुआ है। सुकुमार अंगुलियों में अर्द्ध विकसित कमल की कलियां लिए राधा के बहाने बणी ठणी के रूप यौवन को उजागर करती है। किशनगढ़ शैली में नारी का काव्य कल्पित रूप सौन्दर्य एवं माँसल यौवन के साथ रूपायित है।

4. पृष्ठभूमि में किशनगढ़ के प्राकृतिक परिवेश के अनुरूप झीलों, पहाड़ों, उपवनों एवं विभिन्न पशु–पक्षियों का अंकन है जिनमें मुख्यतः कमलपुष्पों से आच्छादित सरोवरों में जल क्रीड़ा करते जल मुर्गे, बतखें, सारस और तैरती नौकाओं में प्रेमालाप करते राधा–कृष्ण का अनोखा चित्रण है। वास्तु में उच्च अट्टालिकाएँ कुंजो से झांकती श्वेत मुंडेरें, फव्वारे, कदली वृक्ष और चांदनी रात में राधा–कृष्ण की क्रीड़ा, प्रातः कालीन एवं सांध्य कालीन बादलों का रंगीन चित्रण विशेषतः हुआ है।

5. विषयवस्तु के रूप में राधा–कृष्ण के लीलाभाव संबंधित विषयों एवं रीतिकालीन साहित्य में रसिकप्रिया, गीत गोविंद और भागवत पुराण नागर समुच्चय आदि का चित्रण अधिक हुआ। इनके अतिरिक्त वैभव–विलास और स्वच्छंद शृंगार के भाव चित्रों के मुख्य विषय रहे। अन्य शैलियों की भांति शिकार के दृश्य, उत्सव एवं दरबारी विषयों, शबीह चित्रों, अन्तःपुर के

चित्र एवं नायक–नायिका भेद के चित्रण अधिक बने हैं। किशनगढ शैली में उत्सव नौकाविहार और प्रकृति का विराट अंकन, शृंगारिक विषयों का चित्रण अधिकता से हुआ है। लेकिन रागमाला चित्रण इस शैली में नहीं मिलता।

6. किशनगढ़ शैली के प्रमुख चित्रकारों में सूर्यध्वज मूलराज, मौरध्वज निहालचंद, सीताराम, बदनसिंह, रामनाथ, नानक राम, सवाईराम, अमरू, लाडलीदास, सूरजमल आदि प्रमुख थे। जिन्होंने कालजयी किशनगढ़ शैली के चित्रों की रचना कर एक विलक्षण सौन्दर्य को व्यंजना प्रदान की।

बूंदी शैली :–

प्राकृतिक सौन्दर्य और सुषमा से आविष्टित हाड़ा राजपूतों के राज्य बूंदी में पोषित चित्र शैली बूंदी शैली के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ की सघन वन सम्पदा, प्राकृतिक वैभव पहाड़, सरोवर आदि सभी बूंदी के कलात्मक जीवन को प्रभावित करते आये हैं। 14वीं सदी के मध्य राव देवा द्वारा 1398 ई. में स्थापित बूंदी का कलात्मक इतिहास 16 वीं सदी में राव सुरजन से ही माना जाता है। राव सुरजन द्वारा मेवाड़ से सम्बन्ध विच्छेद करने एवं अकबर को रणथम्भौर का किला सौंपकर मुग़ल आधिपत्य की स्वीकारोक्ति बूंदी के इतिहास का महत्वपूर्ण घटनाक्रम रहा। इसके पश्चात मुग़लों के साथ बूंदी रियासत के सम्बन्ध आने वाले लम्बे समय तक मधुर एवं सुदृढ़ रहे।

बूंदी शैली के उद्भव के बारे में कोई निश्चित प्रमाण तो प्राप्त नहीं हुए किन्तु 18वीं सदी के मध्य में मेवाड़ से संबंध विच्छेद के उपरांत मुगलिया प्रभाव और वहाँ के क्षेत्रीय प्राकृतिक परिवेश से परिपूर्ण बूंदी शैली ने राज्याश्रय के द्वारा अपने वैभव को प्राप्त किया। बूंदी के राव रतनसिंह (1607–31 ई.) एवं उनके पुत्र राव छत्रशाल (1631–58 ई.) और पौत्र भावसिंह (1658–81 ई.) के द्वारा कलाकारों को राज्याश्रय के फलस्वरूप बूंदी शैली ने अपना एक निश्चित स्वरूप ग्रहण किया। राव रतन सिंह के समय के चित्रों में भारत कला भवन इलाहबाद में संग्रहित 'राग दीपक' का चित्र एवं नगर निगम संग्रहालय इलाहबाद में संग्रहित 'रागिनी भैरवी' का चित्र बूंदी शैली के प्रारम्भिक कला इतिहास के साक्ष्य हैं। इसके पश्चात राव भावसिंह के राज्याश्रय में मतिराम द्वारा 'ललिन ललाय' एवं 'रसराज' की रचना ने कला प्रेमियों को प्रभावित किया। कालान्तर में बूंदी शैली पर दक्खिन शैली के लक्षण दृष्टि गोचर होने लगे।

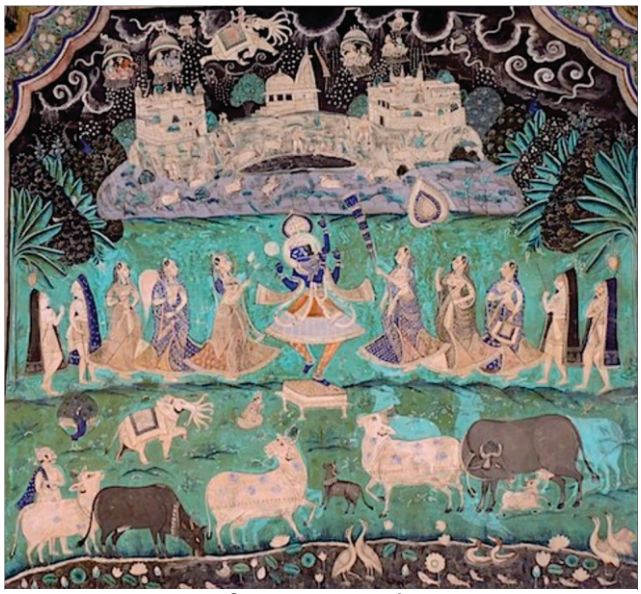

चित्र संख्या–5 रासलीला

18वीं सदी के पूर्वार्द्ध में बूंदी शैली का विकास अधिक हुआ। इससे पूर्व के चित्रों पर मेवाड़ शैली का प्रभाव झलकता है लेकिन उसके पश्चात मुग़ल प्रभाव और मध्यकालीन रीति काव्य से प्रभावित बूंदी शैली के चित्र तकनीक एवं विषय वैविध्य की दृष्टि से उत्कृष्ट बन पड़े हैं। रंगों की चटकता एवं बहुलता, आकृतियों का शारीरिक गठन और प्राकृतिक वैभव ने बूंदी को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाया। इस समय के चित्रों में रसराज पर आधारित नायक नायिक भेद, रागमाला बारहमासा, षड़ऋतु वर्णन और कृष्ण लीलाओं का चित्रण बूंदी में अत्यधिक हुआ। राव छत्रशाल द्वारा निर्मित रंग महल के भित्ति चित्रण बूंदी शैली के जीवंत साक्ष्य हैं जो इस समय की समृद्ध कला परम्परा को प्रस्तुत करते हैं। (चित्र सं. 5)

राव उम्मेद सिंह के समय बूंदी शैली के चित्रों की पृष्ठभूमि में भवनों का अंकन प्राकृतिक विविधता, पशु पक्षियों तथा सतरंगे बादलों, जलाशयों एवं सघन वन सम्पदा का चित्रण बाहुल्य है। उत्तरकालीन बूंदी शैली के चित्रों में रात्रिकालीन दृश्यों एवं हरे रंग की प्रधानता और नायक–नायिका भेद विषयक चित्रों में नारी सौन्दर्य की तीव्रता तूलिका संचालन की स्निग्धता को परिलक्षित करती है। बूंदी शैली मुगलिया प्रभाव के उपरान्त भी अपनी अलग पहचान बनाने में सफल रही। 19वीं सदी में अंग्रेजी शासन के दौरान कम्पनी शैली के प्रभाव का बूंदी शैली पर भी देखने को मिलता है।

विशेषताएँ :–

1. प्रारम्भिक बूंदी शैली में आकृति विन्यास मेवाड़ शैली के समरूप था लेकिन 17वीं सदी के उत्तरकाल के चित्रों में आकृतियां साधारणः लम्बी, इकहरी स्वतः स्फूर्त अंकित की गयी। स्त्री आकृतियों को अरूणाभ नेत्र, छोटी नासिका, गोल मुखाकृति छोटी, ग्रीवा, पीछे की ओर झुकी चिबुक और अलंकरणों से आच्छादित तंग कंचुली में आगे निकला वक्ष स्थल, क्षीणकटि एवं स्फूर्ति युक्त भाव–भंगिमाओं से युक्त चित्रित किया गया है।

2. झुकी पगड़ियां, लम्बे चाकदार जामें कमर पर पटका बांधे, चुस्त पाजामें में मेवाड़ी शैली के समकक्ष नीलवर्णी या गोरवर्णी पुरूष आकर्षक बन पड़े हैं।

3. सघन प्राकृतिक सुषमा के सुरमयी सतरंगी वैभव में समायोजित सफेद वास्तु यहाँ की मौलिकता है। गोल गुंबदाकार एवं घुमावदार राजस्थानी छतरियां एवं मुगलिया मेहराब आदि का मिश्रित रूप, भवनों के आन्तरिक भाग लाल–हरे रंग के रेशमी पर्दे, केले के कुंज, झरोखों से झाँकती नायिकाएँ, भवनों के खुले चौक आदि चित्रों की रूप–अंतराल व्यवस्था में विविधता और सम्पन्नता प्रस्तुत करती है। पशु–पक्षी चित्रण में शुक, मयूर, गिलहरी, बंदर, हाथी, शेर, घोड़े, सारस आदि का अंकन प्रचूरता से हुआ।

4. लाल–पीले, हरे एवं सफेद रंग की वर्ण संगति बूंदी शैली के चित्रकारों को अधिक प्रिय रही है। हरे रंग का बाहुल्य बूंदी में देखने को मिलता है।

5. रात्रिकालीन दृश्यों में नीले–काले आकाश में श्यामवर्णी बादलों के मध्य स्वर्ण व लाल रंग का स्पर्श चंचला की कौंध को प्रदर्शित करता है।

6. विषयवस्तु के रूप में बूंदी शैली में रागमाला एवं नायक नायिका भेद, बाहरमासा, षडऋतु वर्णन के रूप में श्रृंगार प्रधान विषयों का चित्रण राजस्थानी शैली की अन्य शैलियों की अपेक्षा अधिक हुआ है। रागमाला के चित्रों में छिन्न चित्र अधिक बने। इनके अतिरिक्त रात्रिकालीन शिकार दृश्य, उत्सव, शबीह चित्रण इस शैली के प्रमुख विषय रहे।

7. बूंदी शैली के प्रमुख चित्रकारों में सुरजन, किशन, साधुराम, रामलाल, अहमद अली का नाम विशेष रूप से आता है।

कोटा शैली :–

कोटा शैली 1952 ई. में प्रकाश में आयी। कर्नल टी. जी. गेयर एण्डर्सन द्वारा अपने निजी चित्र संग्रह को विक्टोरिया

चित्र संख्या–6 शिकार

एण्ड अलबर्ट म्युजियम लंदन को भेंट किया, तो उनमें से कुछ चित्र बूंदी शैली से भिन्न पाये गये। जिसके आधार पर बूंदी शैली की उपशाखा के रूप में कोटा शैली अस्तित्व में आयी। मुग़ल सम्राट शाहजहाँ द्वारा महाराजा माधोसिंह को भेंट स्वरूप हाड़ौती का एक हिस्सा जागीर के रूप में प्रदान किया, जो कालान्तर में कोटा के नाम से 1631 ई. में स्वतंत्र रियासत के रूप में स्थापित हुआ। कोटा चित्र शैली का इतिहास भी कोटा की स्थापना के साथ ही प्रारम्भ होता है। अर्थात 17वीं सदी के मध्य तक ही कोटा शैली अपनी शैलीगत मौलिकता ग्रहण कर पायी। कोटा के महाराजा रामसिंह 1669–1705 ई. और उनके पुत्र महाराव भीमसिंह 1705–20 ई. और उनके पश्चात महारावल उम्मेदसिंह के समय 1771–1820 ई. में कोटा शैली अपने चरमोत्कर्ष पर रही। इनके शासन काल में कृष्ण सम्बन्धी विषयों के अतिरिक्त शिकार के दृश्य अत्यधिक बने। (चित्र सं. 6)

बूंदी राज्य की भांति कोटा भी वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र रहा। इस समय राधा–कृष्ण की लीलाओं का अंकन ओर सचित्र ग्रन्थों के निर्माण के अलावा भित्ति चित्रण की समृद्ध परम्परा विकसित हुई। 19वीं सदी के प्रारम्भ में पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय से संबंधित सचित्र ग्रन्थों में ''वल्लभोचद्रिका'' 1861 ई. तथा 'गीता पंचमेल' का काव्यात्मक चित्रण कोटा शैली के कलात्मक साक्ष्य हैं। कोटा शैली के चित्रण की यह परम्परा रावल रामसिंह के समय तक अर्थात 1866 ई. तक अनवरत यूं ही चलती रही किन्तु 1857 के गदर उपरांत पाश्चात्य प्रभाव ने कोटा शैली को अपनी प्रभावशीलता में ले लिया। तदुपरान्त कोटा शैली में मौलिकता का ह्रास होने लगा।

विशेषताएँ–

1. कोटा शैली में बूंदी शैली की झलक होते हुए भी कुछ ऐसी विशेषताएँ है जो उसको मौलिकता प्रदान करती हैं जिसमें विशेषकर शिकार के दृश्य, सघन वन सम्पदा और पुरूषाकृतियों को बूंदी के विपरीत वल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव स्वरूप आकृतियों को अंग प्रत्यंग गोस्वामियों और पुजारियों की भांति पुष्ट एवं भारी–भरकम देहयष्टी, दीप्तिमान चेहरे, मोटे उभरे नेत्र उठा हुआ ललाट, कोटा शैली में विशेषतः मिलते हैं।

2. कोटा शैली में शिकार के दृश्यों की अधिकता दृष्टव्य है। पृष्ठभूमि में सघन वन में विचरण करते शेर–चीते हाथी, हिरण और सूअर का अंकन प्रमुखता से हुआ है। सघन वनों से झांकते शिकार के बुर्ज वास्तु अंकन के अल्पता की महत्ता को ओर बढ़ा देते हैं।

3. रंग संगति में कोटा शैली के चित्रों में हरा, लाल एवं सुनहरी रंगों का प्रयोग अधिक हुआ है। हरे रंग की पृष्ठभूमि में गुलाबी–भूरे रंग का समन्वय कोटा शैली की नितांत नवीन संविधा को अभिव्यक्त करती है।

4. कोटा शैली में सचित्र ग्रंथों के अतिरिक्त भित्ति चित्रण परम्परा भी उन्नत रही। जिसमें झाला की हवेली, देवताजी हवेली और कोटा के राज प्रसाद इत्यादि प्रमुख हैं।

ढूंढाड शैली : 'जयपुर शैली'

जयपुर देश–विदेश में अपने नगर विन्यास, वास्तु सौन्दर्य एवं चित्रकला के लिए विश्व प्रसिद्ध है। महाराजा सवाई जयसिंह (1699–1743 ई.) द्वारा स्थापित जयपुर राजस्थान के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कच्छावा वंश की रियासत आमेर उत्तरकाल में जयपुर स्थानान्तरित हुई। 16वीं सदी में मुग़लों की अधीनता स्वीकारने और अकबर के साथ वैवाहिक सम्बन्धों के फलस्वरूप जयपुर के साथ मुग़लों के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण बने रहे। महाराजा मानसिंह के मुग़ल साम्राज्य से अंतरंग सम्बन्धों के कारण जयपुर रियासत का कलात्मक विकास अधिकाधिक हुआ। 1600–1614 ई. तक आमेर के पास प्राप्त भित्ति चित्रण इस शैली के प्राचीनतम उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त बैराठ के बाग, मौजमाबाद की छतरियां, भारमल की छतरी, और अकबर कालीन रज्मनामा (1584–85 ई.) नामक सचित्र ग्रंथ जयपुर शैली की समृद्ध चित्रण परम्परा को रेखांकित करते हैं। (चित्र सं. 7)

जयपुर शैली के विकासक्रम का दूसरा चरण मिर्जा राजा जयसिंह (1625–67 ई.) से प्रारम्भ होता है। जिनके दरबार में बिहारी जैसे रीतिकालीन कवि राजा के दरबारी रत्न थे। 1787 ई. में राजा सवाई जयसिंह द्वारा जयपुर की स्थापना में कलाओं के उत्थान में भी विशेष योगदान दिया। इस समय की चित्रकला में लोक कला के स्थान पर मुगलिया प्रभाव युक्त कोमल एवं बारीक रेखांकन हल्की फीकी रंग संगति से युक्त संस्कृत एवं हिन्दी ग्रंथों का बाहुलता से चित्रण हुआ। सवाई जयसिंह के पश्चात महाराजा ईश्वरीसिंह के समय की चित्रकला के विकास में साहिबराम और लाल चितेरा नामक चित्रकारों का विशेष योगदान रहा। इनके समय में व्यक्ति चित्रण और पशुओं की लड़ाई के अनेक चित्र बने। उत्तरकाल के राजाओं में पृथ्वी सिंह, प्रतापसिंह और जगतसिंह के शासन काल अर्थात 1750–1820 ई. तक जयपुर कला धर्म और संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बना रहा। इस समय के चित्रों में रीतिकालीन साहित्य एवं धर्म प्रधान विशयों का आधिक्य रहा। उपलब्ध चित्र साक्ष्यों में राधाकृष्ण के लीला चित्र, भागवत पुराण, दुर्गा सप्तशती, रागमाला, बाहरमासा, ऋतुवर्णन, नायक–नायिका भेद एवं राजसी जीवन और विशेषकर शबीह चित्रण में आदम कद चित्र प्रमुखता से बने। शृंगारिक पदों का अलंकारिक चित्रण जयपुर शैली में विशेष रूप से दिखायी देता है।

महाराजा रामसिंह के समय बढ़ते अंग्रेजी प्रभाव और फोटोग्राफी के अविष्कार के फलस्वरूप जयपुर शैली की चमक फीकी पड़ने लगी और 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जयपुर शैली ने अपनी रसमयी मौलिकता से विमुख होकर कम्पनी शैली के यथार्थवादी अंकन का हाथ थाम लिया। जयुपर शैली के अन्य

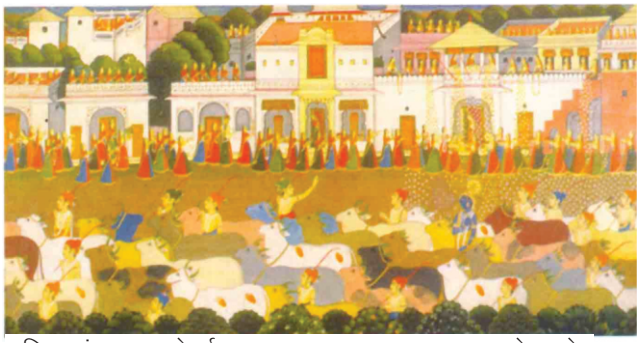

चित्र संख्या–7 गोवर्धन पूजा उपरान्त कृष्ण गाय चराने जाते हुए

कला केन्द्रों में उनियारा, टोंक, अलवर ओर शेखावाटी क्षेत्रों में भी कला का विशेष उन्नयन हुआ।

विशेषताएँ–

1. जयपुर शैली के चित्रों में पुरूषाकृतियाँ मध्यम कद–काठी, गोल चेहरा, उच्च ललाट, छोटी नासिका, मोटे अधर, मांसल चिबुक, मीनाकृत नयन, वस्त्राभूषणों में मुगलिया जामा, कमर पर पटका और पजामे से युक्त चित्रित की गयी हैं।

2. स्त्री आकृतियों को मीनाकृत नयन, लालिमायुक्त गोल चेहरे, उभरे हिंगुली अधर, कपोलों पर झूलती अलकें और मांसल यौवनी काया अलंकृत राजस्थानी मुग़ल मिश्रित वस्त्राभूषणों के साथ चित्रित किया गया है।

3. आकृति रचना में अंग–प्रत्यंग के उभार के लिए परदाज का काम जयपुर कलम की निजी विशेषता रही है। हाशियों में ईरानी प्रभाव लिए बेल–बूटे, फूल–पत्तियाँ और विभिन्न पशु–पक्षियों की आकृतियां सुसज्जित हैं।

4. रंग संगति में लाल, पीला और हरे रंग के अलावा हल्की रंग योजना में मुग़ल प्रभाव दृष्टिगत होता है। कालान्तर में स्वर्ण रंग की बहुलता के साथ–साथ माणक, पन्ना एवं मोती आदि रत्नों की चित्रों में आलंकारिक जड़ाई जयपुर शैली को निजत्व प्रदान करती है। हरे रंग का आधिक्य लिए चित्रों में चाँदी के रंग की पतली किनार से युक्त लाल–काले रंग के हाशिये प्रधानता से बने।

5. जयपुर शैली में अन्तराल व्यवस्था घटना के अनुरूप विकसित न होकर चित्र के ऊपर हिस्से को क्षितिज रेखा से विभाजित कर आकाश को नीले रंग में चित्रित कर घुमावदार बादलों के चित्रण का प्रचलन बढ़ा।

6. जयपुर शैली की विषयवस्तु में कृष्ण लीलाएँ, पौराणिक आख्यान, भागवत पुराण आदि पुराण, बिहारी सतसई, दुर्गा सप्तशती, बारहमासा, रागमाला दरबारी चित्रण, व्यक्ति चित्रण और पशु–पक्षियों की लड़ाई, स्त्री सौन्दर्य आदि का चित्रण प्रमुखता से हुआ।

7. जयपुर शैली के प्रमुख चित्रकारों में साहिबराम, लाल चितेरा, रामजीदास, घासीराम, रघुनाथ, गोविन्द, गोपाल, उदय, हीरानन्द, त्रिलोकचंद, सालिगराम, सेवकराम आदि ने जयपुर शैली की समृद्ध लघु चित्रण व भित्ति चित्रण परम्परा को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाया।

राजस्थानी शैली की सामान्य विशेषताएँ :

16वीं सदी से 19वीं सदी तक विभिन्न शैलियों, उपशैलियों के रूप में विकसित राजस्थानी चित्रकला निश्चित ही भारतीय चित्रकला के इतिहास में लघुचित्रण परम्परा में अपना अलग स्थान रखती है। लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि राजस्थानी शैली ही परिवर्तन की प्रथम संवाहक बनी जिसमें साहित्य, चित्र, संगीत की त्रिवेणी को एक रूप प्रदान कर जन–सामान्य की भागीदारी सुनिश्चित की। विषय वैविध्य और रंगों के मनोवैज्ञानिक प्रयोग से वैश्विक कला परिदृश्य में अपना वैशिष्टय रखने वाली राजस्थानी शैली अपनी समकक्ष शैलियों से प्रभावित होने के उपरांत भी अपने निजत्व को बनाये रखने में सफल रही। राजस्थानी शैली के विस्तृत अध्ययन से उसमें सामान्य विशेषताएँ उभरकर सामने आती हैं जो निम्न प्रकार हैं।

1. लोक जीवन का सानिध्य
2. भाव प्रधान
3. वर्ण वैविध्य
4. देशकला की अनुरूपता
5. प्राकृतिक परिवेश
6. विषय वैविध्य

1. लोक जीवन का सानिध्य : भित्तिचित्रण परम्परा और अपभ्रंश शैली से विकसित राजस्थानी चित्रकला का लोकजीवन से विशेष सानिध्य रहा है। प्रारम्भिक चित्रण में सादगी, सरलता और रंगों की अल्हड़ता एवं विषयवस्तु के चयन में लोक जीवन की भावनाओं का बाहुल्य उसके लौकिक प्रभाव को पुष्ट करती है। उत्तरोत्तर अवस्था में राज्याश्रय की प्रतिबद्धता और शास्त्रीय गुणों के विकास के उपरान्त भी राजस्थानी शैली से लोक कलागत तत्व अलग नहीं हो पाये। धार्मिक और सांस्कृतिक स्थलों में पोषित चित्रकला जन–जीवन की भावनाओं और सामाजिक विषयों से अधिक सबंद्ध रही।

2. भाव प्रधान : राजस्थानी चित्रकला रस प्रधान शैली है। भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण उसकी आत्मा है। राधा–कृष्ण की माधुर्य भावना के विस्तृत एवं गहनतम चित्रण के द्वारा चित्रकारों ने भौतिक जीवन की रागात्मक एवं आलौकिक जीवन की सात्विकता का सुन्दर समायोजन प्रस्तुत किया है अर्थात भक्ति और शृंगार का सजीव चित्रण राजस्थानी शैली की प्रधान विशेषता है।

3. वर्ण वैविध्य : राजस्थानी चित्रकला रंगों का काव्यात्मक स्पंदन है। इसमें रंगात्मक वैविध्य भावों की पुष्टी का आधार स्तम्भ है। चटकीला प्रभावोत्पादक रंग संयोजन इस शैली की पहचान है। जिसमें पीले, लाल, हरे, नीले, श्वेत, रंगों का आधिक्य क्षेत्रीय शैलीगत प्रभाव लिए प्रयुक्त हुआ है। उत्तरकाल में मुग़ल प्रभाव के परिणाम स्वरूप शैली में फीकी रंग संगति सुफियानापन लिए स्लेटी, गुलाबी, बादामी और फाख्तायी रंगों के रूप में अधिकता से दिखाई देती है।

4. देशकाल की अनुरूपता : राजपूती सभ्यता और संस्कृति के साथ तत्कालीन राजनैतिक–सामजिक परिस्थितियों के अनुरूप जीवंत चित्रण राजस्थानी चित्रकला की प्रधान विशेषता रही है। क्षेत्रीय विविधता एवं स्वतंत्र रियासतों में विकसित राजस्थानी शैली की विभिन्न चित्र शैलियां अपने आत्मगत स्वरूप में एक रूप जान पड़ती हैं। जहाँ सभी में विषयगत समानता चित्रण वैविध्य के साथ परिलक्षित होती है। दुर्ग, राजप्रसाद, मंदिर, हवेलियां आदि का राजस्थानी वैभव चित्रकला में बारीकी के साथ चित्रित हुआ वहीं मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन की आधार भूमि और रीतिकालीन काव्य का सजीव चित्रण राजस्थान कला का प्राण तत्व है।

5. प्राकृतिक परिवेश : चित्रकला के क्षेत्र में प्रकृति का जितना विराट और वैविध्य पूर्ण चित्रण राजस्थानी शैली में हुआ है उतना विश्व की अन्य कलाओं में नहीं। कमल पुष्पों से ढ़के सरोवर, मेघों से आच्छांदित व्योम में सर्पाकार कौंधती चंचला, सघन वन, उपवन में क्रीड़ा करते पशु–पक्षी। निकुंजों में प्रेमालाप करते राधा–कृष्ण प्रकृति के अंग प्रत्यंग जान पड़ते हैं। सरोवरों में तैरती नौकाएँ, जलक्रीड़ा करते जलमुर्गे, बतख, सारस, चहकते मयूर, कोयल, हाथी, शेर, ऊंट, घोड़ों आदि का चित्रण इस शैली का निजत्व है।

6. विषय वैविध्य : शायद उपरोक्त वर्णित विशेषताएँ विश्व की अन्य चित्र शैलियों में भी आंशिक रूप से दृष्टिगत हो सकती हैं लेकिन चित्रों के विषय चयन में विविधता राजस्थानी शैली को सभी कला शैलियों से अलग खड़ा करती है। विषयगत विस्तार की दृष्टि से राजस्थानी शैली में सामाजिक–सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजसी सभी संदर्भों को समान रूप से रेखांकित किया गया है।

धार्मिक चित्रों में रामानुजीय सम्प्रदाय एवं वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बंधित चित्रों में कृष्ण लीलाएं, महाभारत, भागवत पुराण, गीत गोविन्द, सूरसागर, आर्ष रामायण, शिवपुराण, दुर्गा सप्तशती, बालगोपाल स्तुति आदि ग्रन्थों पर आधारित चित्रण हुआ। वहीं सामाजिक संदर्भों के तहत सामाजिक उत्सवों, राजसी वैभव–विलास, व्यक्ति चित्रण, लोक कथाओं एवं प्रेम आख्यानों का चित्रण अधिक हुआ। लेकिन इन से बिल्कुल विपरित जिस विषय–वस्तु के कारण राजस्थानी चित्रों को ख्याति मिली वो हैं शृंगार प्रधान चित्र। अर्थात रीतिकालीन साहित्य आधारित विषयों के अन्तर्गत बारहमासा, षडऋतु वर्णन, नायक–नायिका भेद और संगीत आधारित रागमाला के चित्र।

राजस्थानी शैली में शृंगार विषयक चित्रों के माध्यम से मानव एवं प्रकृति के अंतःसंबंधों को उजागर करने वाले उन मनोवैज्ञानिक पहलुओं का चित्रण है, जो मानव की रागात्मक प्रवृत्ति के आदिम स्रोत है। इसके अतिरिक्त रागमाला चित्रों के माध्यम से संगीत जैसी अमूर्त विद्या को मूर्तरूप देने का श्रेय राजस्थानी शैली के चित्रकारों को जाता है। राग–रागिनी के संदर्भ में सर्वप्रथम व्यवस्थित अध्ययन हमें गुरू अर्जुनदेव रचित गुरूग्रंथ साहिब (1581–1605 ई.) में मिलता है। इसी को आधार बना कर रागमाला चित्रों की रचना प्रारम्भ हुई। रागशब्द की उत्पत्ति, एवं रागिनी का जन्म, और स्वरों या राग विशेष के लक्षणों अनुसार पशु–पक्षियों या किसी अन्य तरह के प्रतीकों के साथ उनका सामंजस्य बिठाना और उनके अनुरूप नायक–नायिका का राग–रागिनी से सम्बंध स्थापित कर उसके भाव रस एवं गायन समय आदि सब मिलाकर रागमाला के चित्रण करना प्रतीकों के निर्धारण के पश्चात ही संभव हो सका– जिसमें राजस्थानी शैली ने अपनी सिद्धहस्तता साबित की।

''रागमाला'' जैसे शब्द से ही स्पष्ट है 'स्वरों की शृंखला' जिसमें ताल की प्रवृत्ति का शक्तिशाली और कमजोर होना उसके लिंग का निर्धारण करता है अर्थात राग की आरोह अवस्था (उठाव–शक्तिभ) राग के पुरूष तथा अवरोह अवस्था (कोमल–निम्न) स्त्री राग अर्थात रागिनी का रूप धारण करती है। राजस्थानी चित्रकला में छः राग और छत्तीस रागिनियों का विवरण देखने को मिलता है जो इस प्रकार है –

1. भैरव राग 2. श्री राग 3. मालकोश

4. मेघमल्हार 5. राग दीपक 6. राग हिण्डौल।

उपरोक्त छः रागों में प्रत्येक राग की छः–छः स्त्री रागिनी रूप का विवरण दृष्टव्य है अर्थात रागमाला में लय को रंगों के माध्यम से गति चित्रों में समायोजित कर प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की गयी।

बारहमासा एवं षडऋतु वर्णन–भारतीय सौन्दर्य शास्त्रीय अवधारणा की पूर्ण सफलता हमें राजस्थानी शैली के रस चित्रों में देखने को मिलती है। रीतिकालीन साहित्य मे बिहारी सतसई, केशव की रसिक प्रिया, मतिराम का रसराज और भानुदत्त की रस मंजरी को आधार बनाकर श्रृंगार रस से परिपूर्ण चित्रों की रचना बारहमासा, नायक नायिका भेद और षडऋतु वर्णन में की गई।

बारहमासा चित्रों में प्रकृति के मौसम चक्र के अनुरूप बारह महिनों के बदलते प्राकृतिक स्वरूप और उनका मानव प्रवृत्ति पर पड़ने वाले प्रभावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण है जो षडऋतु वर्णन एवं नायक–नायिका भेद चित्रों में भी दृष्टिगोचर होता है अर्थात नायक–नायिका भेद, बारहमासा और षडऋतु वर्णन यह तीनों ही विषय मानव की भावभूमि से संबद्ध होने के कारण अर्न्तसम्बद्ध हैं। बारहमासा चित्रण में हिन्दू पचांग के बारह महिनों, जिसमें – चैत्र, बैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन है। बारहमासा चित्रों में श्रृंगार की वियोगावस्था का चित्रण है। वहीं षडऋतु वर्णन में संयोगावस्था का चित्रण है।

षडऋतु चित्रण में प्रमुखतः छः ऋतुएँ मानी हैं – बसंत (ऋतुराज), ग्रीष्म, हेमंत, वर्षा, शिशिर, शरद। उपरोक्त ऋतुओं में नायक–नायिका को चित्रित किया गया है।

राजस्थानी शैली के प्रमुख चित्र :–

बणी–ठणी :–भारत की मोनालिसा कहलाने वाला यह चित्र किशनगढ शैली की देन है। चित्रकार निहालचंद द्वारा अंकित यह चित्र राजस्थानी शैली का श्रेष्ठ चित्र है। बणी–ठणी का शाब्दिक अर्थ होता है सजी–धजी। यह चित्र वास्तव में अपने शीर्षक को साकार करता है । यह चित्र बणी–ठणी को भारत की मोनालिसा की संज्ञा एरिक डिक्सन ने दी। बणी–ठणी राजस्थाान के किशनगढ़ रियासत के तत्कालीन राजा सांवत सिंह की दासी व प्रेमिका थी। बणी–ठणी सौंदर्य की अदभुत मिसाल होने के साथ ही

चित्र संख्या–8 बणी–ठणी

उच्च कोटी की कवयित्री व गायिका थी। यह स्वयं रसिक बिहारी के नाम से कविता करती थी। । इस चित्र का चित्रण लगभग संवत 1755 से 1757 में हुआ, इस चित्र का आकार 48.8 गुणा 36.6 सेमी है। वर्तमान में बणी–ठणी का चित्र अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित है व इसकी एक प्रति अल्बर्ट हॉल पेरिस में सुरक्षित है। 5 मई 1973 को बणी–ठणी चित्र पर भारत सरकार के डाकविभाग द्वारा डाक टिकट भी जारी जारी किया गया। इस चित्र में अंकित नारी लज्जा युक्त, मधुर मुस्कान, तीखे नाक, कर्णांत कमल नयन व सुकुमार अंगुलियों के साथ सुन्दर वस्त्राभुषणों से सजी अत्यंत आकर्षक है।

ढोला–मारु (मारवाड) :– मारवाड की प्रसिद्ध प्रेम गाथा पर आधारित चित्र 'ढोला–मारु' जोधपुर शैली का प्रसिद्ध चित्र है। राजस्थान की लोक कथाओं में बहुत सी प्रेम कथाएँ प्रचलित है पर इन सबमे ढोला मारू प्रेम गाथा विशेष लोकप्रिय रही है इस गाथा की लोकप्रियता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आठवीं सदी की इस घटना का नायक ढोला राजस्थान में आज भी एक–प्रेमी नायक के रूप में स्मरण किया जाता है और प्रत्येक पति–पत्नी की सुन्दर जोड़ी को ढोला–मारू की उपमा दी जाती है। लोक आख्यानों में पूगल की राजकुमारी मारू या मरवण को अप्रितम सौंदर्य की धनी बताया जाता है–

नमणी, खमणी, बहुगुणी, सुकोमळी सुकच्छ।
गोरी गंगा नीर ज्यूँ , मन गरवी तन अच्छ।।

चित्र में ऊंट पर सवार ढोला–मारू को अंकित किया गया है। कथानक के अनुसार ढोला मरवण यानि मारु को पूगल से अपने राज्य नरवर लेकर जा रहा है। चित्र में ऊंट की गति व ढोला का पराक्रम व मरवण का सौंदर्य अद्भुत है। (चित्र सं. 9) सरल पृष्टभूमि धूसर रंगों से अंकित है वहीं ढोला–मारू का चित्रण उष्ण रंगों से हुआ है।'

चित्र संख्या–9 ढोला मारू (जोधपुर)

चित्र संख्या–10 गौधूलि

ढोला–मारु' का यही कथानक मेवाड शैली में चित्रकार साहबदीन द्वारा भी किया गया है जो की दो खण्डों में विभक्त है। उपरी भाग में एक तम्बू में लाल कालीन पर ढोला–मारू को आमने सामने बैठे बनाया गया है। ढोला को कलंगीदार पगडी व अस्त्र–शस्त्र धारण किए बनाया गया है तथा मारु को पीला लहंगा और बैंगनी चुनरी औढे दर्शाया गया है। नीचे के भाग में मारु एक ऊंट के पास कुछ कहने की मुद्रा में खडी है।

गौधूलि (मेवाड़) :– मेवाड़ शैली में चित्रकार चौखा द्वारा चित्रित यह दृश्य आकर्षक संयोजन व सौम्य रंगयोजना के लिए जाना जाता है । इस चित्र का निर्माण लगभग 1813 ई में हुआ महाराणा भीम सिंह के समय हुआ। चित्र में गौधूलि वेला (गायों के घर लौटने का समय) में बाल कृष्ण अपने सखाओं के साथ गायें लेकर वापिस नगर में प्रवेश करते अंकित हैं। अटारी से माताएं अपने बच्चों को देख प्रफुल्लित हो रही है। बालक भी अपनी माताओं को देखकर उनकी और इशारा कर हर्षित हो रहे हैं। एक साथ बड़ी संख्या में गायों के चलने से उठ रही धूल दर्शाने के लिए पूरा वातावरण मटमैला बनाया गया है। चित्र की पृष्ठ भूमि में प्रकृति का सुरम्य अंकन हुआ है ।

दीपक राग (बूंदी) :– राव रतन सिंह के समय चित्रित रागमाला चित्रावली बूंदी चित्रशैली के श्रेष्ठ उदाहरणों में से एक है। इस रागमाला चित्रावली को चित्रकार हुसैन, अली व हातिम द्वारा 1591 ईस्वी में तैयार किया गया माना जाता है। इस संग्रह में राग दीपक एक महत्वपूर्ण चित्र है। इसमें नायक–नायिका को महल में प्रेम मग्न बनाया गया है। चित्र में वास्तु व प्रकृति का बूंदी शैली के अनुरुप अंकन हुआ है। आसमान में रात्रि भाव के लिए गहरा रंग भरा गया है। तारों की टिमटिमाहट मोहक है। वस्त्राभूषण सुन्दर हैं। 26 गुणा 16 सेन्टीमीटर आकार का यह चित्र भारत कला भवन वाराणसी में संकलित है।

विष्णु–लक्ष्मी(बीकानेर) :–प्रसिद्ध चित्रकार हामिद रुकनुदीन द्वारा चित्रित विष्णु–लक्ष्मी बीकानेर शैली के महत्वपूर्ण चित्रों में से एक है। रुकनुदीन मुगल चित्रकार अली रजा का शिष्य था । इस चित्र में स्वर्ण आसन पर भगवान विष्णु व श्री लक्ष्मी को विराजमान बनाया गया है। उनके चारों ओर ग्यारह परिचारिकाएं अंकित हैं जिनके हाथों में विभिन्न वस्तुएं हैं। यह

चित्र संख्या–11 विष्णु– लक्ष्मी

चित्र बीकानेर शैली का परिष्कृत स्वरुप दर्शाता है । पार्श्व में अंकित आर्च, वस्त्रों की सिलवटें व सुनहरे रंग का अद्‌भुत प्रयोग आकर्षक है। पृष्ठभूमि में हल्का नीला रंग प्रयुक्त है। रेखांकन महीन व स्तरीय है। चित्र का सम्पूर्ण वातावरण मन मोहक है, हालांकि चित्र मुगल शैली से प्रभावित हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. राजस्थानी चित्रकला का उद्‌भव एवं विकास 16वीं सदी से 19वीं सदी के मध्य अपभ्रंश शैली के प्रभाव से मेवाड़ शैली के रूप में हुआ।

2. राजस्थानी शैली का उन्नयन राजस्थानी की विभिन्न रियासतों के अनुसार हुआ विभिन्न शैलियों का क्षेत्रीय विभाजन–

(1) मेवाड़ शैली (2) मारवाड़ शैली (3) हाड़ौती शैली (4) ढूँढार शैली

3. सभी शैलियां आकृति अंकन एवं प्राकृतिक अंकन में क्षेत्रीय भौगोलिक प्रभाव का वैविध्य लेकिन विषयागत समानता सभी की सामान्य विशेषता है।

4. राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख शैलियों का शैलीगत वर्गीकरण

(1) मेवाड़ शैली – उदयपुर, नाथद्वारा, प्रतापगढ़

(2) मारवाड़ शैली – जोधपुर, सिरोही, नागौर, घाणेराव (पाली)

(3) बीकानेर शैली

(4) किशनगढ़ शैली

(5) कोटा शैली

(6) बूंदी शैली

(7) जयपुर शैली – उनियारा, टोंक

(8) अलवर शैली

5. विषयवस्तु में कृष्ण लीला सम्बन्धी विषय, रागमाला, बारहमासा, नायक–नायिका भेद, ऋतुवर्णन, संस्कृत एवं रीतिकालीन साहित्य और राजसी दरबारी जीवन का चित्रण अधिकता से हुआ।

6. रंग संगति में लोक शैली के समान चटक रंगों का प्रयोग जिनमें लाल, नीले, हरे, पीले, श्वेत रंगों की प्रधानता किंतु उत्तरकाल में मुग़ल प्रभाव के कारण हल्की रंग संगति का समावेश।

7. अधिकतर चित्र कागज़, कपड़े और राजप्रासादों की भित्तियों पर बने हैं।

8. राजस्थानी शैली की सामान्य विशेषताएँ :–

(1) स्वतंत्र चित्रण

(2) भाव प्रवणता लिए शारीरिक सौन्दर्य का सृजन

(3) लयात्मक ओजपूर्ण रेखांकन

(4) चमकीली चटक रंग योजना

(5) घटना अनुरूप संयोजन (अन्तराल व्यवस्था चित्रतल के अनुरूप)

(6) क्षितिज रेखा सदैव चित्रतल में ऊपर की ओर

(7) प्रकृति सम्पुजन विराट एवं प्रतीकात्मक रूप में

(8) वास्तुचित्रण में राजस्थानी और मुगलिया मिश्रित शैली में

(9) विषयवस्तु में धार्मिक, सामाजिक, राजसी एवं रीतिकालीन संस्कृत एवं हिन्दी ग्रन्थों को सचित्र रचना।

(10) हाशिये सादगी पूर्ण उत्तरकाल में अलंकरण लिए हुए।

विशेष अध्ययन– कक्षा अध्यापक संदर्भ ग्रन्थ की सहायता से सभी राजस्थानी शैलियों के तीन प्रमुख चित्रों का विस्तृत कलात्मक विवेचना छात्रों को करावें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजस्थानी शैली का उद्भव और विकास किन शैलियों से माना जाता है?
2. राजस्थानी शैली की विभिन्न शैलियों के नाम लिखो?
3. मेवाड़ शैली के सचित्र ग्रन्थों में तीन के नाम लिखो?
4. मेवाड़ शैली के प्रमुख चित्रकार कौन–कौन से थे? नाम लिखो।
5. मारवाड़ शैली की प्रमुख उपशैलियाँ कौन–कौन सी है?
6. मारवाड़ शैली के प्रमुख चित्रकार कौन–कौन से थे?
7. राजस्थानी चित्रकला में कौनसी क्षेत्रीय शैली प्रांतीय मुग़ल शैली के नाम से जानी जाती है। उससे जुड़े चित्रकारों के नाम लिखो?
8. बूंदी शैली के प्रधान विशेषता क्या रही?
9. समृद्ध भित्ति चित्रण परम्परा और शिकार के दृश्यों का चित्रण किस शैली में अधिकता से हुआ।
10. राजस्थानी शैली की प्रधान विषय वस्तु क्या रही?
11. नागरीदास सावंतसिंह के द्वारा रचित प्रमुख ग्रंथों के नाम लिखो।
12. किशनगढ़ शैली के चित्रकारों के नाम लिखो?
13. जयपुर शैली में भित्ति चित्रण के उदाहरण कहाँ मिलते हैं।
14. रागमाला चित्र सर्वाधिक किस शैली में और किसके शासन काल में बने?
15. 'रसराज' और 'बिहारी सतसई' नामक ग्रंथों के लेखक कौन है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजस्थानी शैली के उद्भव एवं विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये।
2. मेवाड़ शैली की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालो।
3. मारवाड़ शैली में प्रयुक्त विषय वस्तु को संक्षेप में बताइए।
4. किशनगढ़ शैली के चित्र बणी–ठणी में प्रयुक्त नारी सौन्दर्य की कलात्मक व्याख्या कीजिये।
5. जयपुर शैली की भित्तिचित्रण परम्परा पर प्रकाश डालिये।
6. मेवाड़ शैली में रचित सचित्र ग्रन्थों के बारे में बताइये।
7. बीकानेर शैली पर मुग़ल प्रभाव को रेखांकित कीजिये।
8. बूंदी शैली के रागमाला चित्रों पर टिप्पणी कीजिये।
9. राजस्थानी शैली पर प्रधान विशेषताएं क्या हैं लिखिये।
10. राजस्थानी शैली की विषय वस्तु पर प्रकाश डालिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजस्थानी चित्रकला के शैलीगत विकास क्रम को विस्तार से समझाइये।
2. मेवाड़ शैली के उद्भव और विकास को रेखांकित करते हुए इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
3. किशनगढ़ शैली में प्रयुक्त कृष्ण विषयक चित्रों की व्याख्या करते हुये राजस्थानी शैली में इसके महत्व को समझाइये।
4. जयपुर शैली पर एक निबंध लिखिए।
5. राजस्थानी चित्रकला में प्रयुक्त विषय वस्तु में विशेषतः रागमाला, बारहमासा, षडऋतु चित्रण एवं नायक–नायिका भेद चित्रों की सप्रसंग व्याख्या कीजिये।

अध्याय–4

पहाड़ी चित्रकला

भारतीय चित्रकला परम्परा में पहाड़ी चित्रकला अपनी रसमय, सुरम्य, भावात्मक प्रस्तुति के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। इन कृतियो में आत्मिक सौन्दर्य दैवीय अनुराग के साथ चित्रित हुआ है। प्राकृतिक सौन्दर्य ने इस कला को श्रेष्ठतम स्तर पर स्थापित कर दिया है। इस कला शैली की आत्मिक अभिव्यक्ति एवं अलंकारिकता ने भारतीय कला जगत में वैचारिक व सौन्दर्य बोध को नवीन दिशा प्रदान की।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में हिमाचल एवं पंजाब क्षेत्र में एक उन्नत एवं परम्परागत चित्रण परम्परा विद्यमान थी। जिसके उदाहरण इन क्षेत्रों से प्राप्त हुए है। प्रसिद्ध कला समीक्षक डॉ. आनन्द कुमार स्वामी ने इस चित्र शैली का वर्गीकरण करते हुए जिनमें बसोहली, कुल्लू, गुलेर एवं नुरपूर से प्राप्त चित्रों को अंगीकृत किया गया तथा जिनको दक्षिणी चित्र माला कहा गया। श्री अजीत घोष ने बसोहली तथा नुरपूर के आरम्भिक चित्रों को सत्रहवी शताब्दी के माने है। श्री जे.सी. फ्रेन्च ने अपने अध्ययन में कहा है कि चम्बा, मण्डी, तथा सुकेत नामक स्थान से प्राप्त आरम्भिक चित्र बसोहली शैली के प्रभाव लिए है जो कांगड़ा शैली से अपना भिन्न स्वरूप रखते हैं। अतः यह कहा जा सकता है इस क्षेत्र में मुग़ल कला के प्रभाव आने से पूर्व स्थानीय प्रभाव लिए एक परम्परागत चित्र शैली से चित्रण कार्य होता रहा है। जबकि जम्मू में अठारहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में ही एक विकसित शैली का उद्‌भव हुआ है। जम्मू अपने राजनैतिक प्रभुता के कारण विशेष महत्व रखता था। जबकि दक्षिणी चित्रमाला के अन्य क्षेत्रों में चित्रण सत्रहवीं शताब्दी में भी प्रचलित था।

उत्तरी चित्रमाला के अंतर्गत कांगड़ा चित्रशैली विशेष प्रमुख है, कांगड़ा शैली के चित्रकार वस्तुतः गुलेर से ही कांगड़ा आये थे। पूर्व में ये चित्रकार गुलेर में ही चित्रण कार्य करते थे। गुलेर चूंकि मुग़ल शासकों के संपर्क में अधिक रहा अतः यहाँ अनेक वर्षों तक कला का केन्द्र रहा। राजा संसार चन्द के कांगड़ा के शासक बनने पर कांगड़ा में कृष्ण भक्ति एवं चित्रकला को श्रेष्ठ सम्मान् मिला जिससे आकृष्ट हो कर गुलेर के चित्रकार कांगड़ा की तरफ आये। चित्रकारों का कांगड़ा आने का कारण एक यह भी था कि गुलेर के राजा गोवर्धन सिंह की मृत्यु 1770 ई. में हो गई थी। राजा गोवर्धन सिंह ने कला को विशेष संरक्षण प्रदान किया। इनकी मृत्यु के पश्चात् गुलेर के कलाकार उचित परिवेश न मिलने तथा कांगड़ा की चित्र परम्परा से आकृष्ट होकर कांगड़ा आ गए। अट्‌ठारहवी शताब्दी के अंतिम चरण में कांगड़ा राज्य भारतीय चित्रकला का महान् केन्द्र बन गया था।

पहाड़ी चित्र शैली में बसोहली शैली, चम्बा शैली, गुलेर शैली, कांगड़ा शैली, कुल्लु शैली, मण्डीशैली, जम्मू शैली, पुंछ शैली, गढ़वाल शैली, कश्मीर शैली विशेष प्रतिनिधि उप शैलियां हैं जो अपनी विशिष्ट कला शिल्प व अभिव्यक्ति के स्तर पर पहाड़ी चित्रकला की प्रतिनिधि शैलियो के रूप में जानी जाती है।

बसोहली चित्र शैली–

बसोहली वर्तमान में जम्मू राज्य के कठुवा नामक जिले के अंतर्गत आता है। आज यह स्थान साधारण गाँव के रूप में उपस्थित है। लेकिन अपने समृद्धशाली परम्पराओं तथा जीवन शैली का परिचय वहाँ प्राप्त भग्नप्रायः खण्डहर सहज ही दे देते हैं। वैभवहीन राजप्रसाद तथा अट्‌टालिकाओं के अवशेष अपने आप में गौरवशाली इतिहास छुपाये हुए हैं।

प्राचीन काल में बसौली की राजधानी बालौर या बल्लपुर

थी। यह वर्तमान बसौहली से 18 किलोमीटर पश्चिम में है। आठवीं शती ई. से लेकर ग्यारहवीं शती ई. तक बल्लपुर स्वतंत्र रियासत थी। बसोहली राज्य का संस्थापक भोगपाल (735 ई.) था। ऐतिहासिक दृष्टि से सोलहवीं शताब्दी तक बसोहली राज्य का कोई प्रमुख घटनाक्रम नहीं रहा। 1590 ई. में बसोहली का राजा कृष्णपाल अकबर के संपर्क में आया। इसने अकबर के दरबार में उपस्थित होकर बहुमूल्य भेंट प्रदान की। कृष्णपाल के पश्चात् उसके पौत्र भूपतपाल (1598–1655 ई.) ने ही आधुनिक बसोहली की स्थापना की तथा मुग़ल शासक शाहजहाँ के दरबार में उपस्थित हुआ। भूपतपाल द्वारा शाहजहाँ का सम्मान करते हुए एक चित्र उपलब्ध है जो डोगरा आर्ट गैलरी जम्मू में सुरक्षित है। भूपतपाल के पश्चात् बसोहली शासकों में कला के प्रोत्साहन की दृष्टि से संग्राम पाल, मेदनीपाल तथा अमृतपाल के शासनकाल विशेष उल्लेखनीय है। अमृतपाल 1757 ई. में राजा बना। इस काल में बसोहली कला का प्रमुख केन्द्र बन गया था। बसोहली में चित्रण कार्य राजा कल्याणपाल तक अनवरत चलता रहा। कल्याण पाल 1845 ई. में बाल अवस्था में ही बसोहली का राजा बन गया था। 1857 ई. में कल्याणपाल मृत्यु को प्राप्त हो गया। कल्याणपाल के कोई सन्तान नहीं होने से बसोहली राजवंश समाप्त हो गया।

बसोहली में मेदनीपाल ने रंग महल एवं शीशमहल का निर्माण करवाया जिनकी भित्तियों पर नायिका भेद आदि विषयों पर आधारित चित्र बनवाये गये थे। बसोहली चित्र शैली के विकास में कांगड़ा एवं चम्बा शैली का भी योगदान रहा, परन्तु बसोहली शैली इन शैलियों से भिन्न अपनी पृथक पहचान रखती है। बसोहली शैली के विकास में कश्मीर शैली तथा स्थानीय शैलियों का भी योगदान रहा है। पंजाब में पहाड़ी कलम या कांगड़ा शैली के जो चित्र मिले हैं वस्तुतः बसोहली शैली के ही है। जम्मू की अपनी कोई शैली नहीं थी अतः आरम्भिक काल में यहाँ से मिले चित्र भी श्री अजित घोष तथा नानालाल चमनलाल मेहता ने बसोहली शैली के चित्र ही माने हैं। बसोहली शैली के चित्रों के सम्बन्ध में श्री मेहता ने कहा कि ''बुन्देलखण्ड के चित्रकारों की तरह बसोहली के चित्रकार को भी नीले, पीले, लाल और सादे रंगो से विशेष अनुराग था। इस शैली के चित्रों में कोमलता उतनी नहीं है, जितना कि तेज है। इन चित्रों में बाह्य आडम्बर तथा ऊपरी लावण्य के प्रति कम रूझान दिखाई देता है।''

बसोहली शैली चित्रों के विषय :–

धार्मिक चित्र – बसोहली में वैष्णव धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा थी अतः कृष्ण जीवन संबंधी चित्रों की बहुतायत है। सामान्य जन मानस में कृष्ण अनुराग चरम पर था। सूरदास, मीरा, केशवदास व बिहारी के भक्ति साहित्य के प्रचलन से सामान्य जन आत्म विभोर था। अतः बसौहली की कला भी साहित्य दर्शन एवं आध्यात्मक भाव को अपने भीतर समेटे हुए है। सामान्य जन विष्णु के विभिन्न रूपों में मुख्यतः राम एवं कृष्ण को अपना आराध्य मानता था। अतः चित्रों में धार्मिक विषय को विशेषता के साथ चित्रित किया गया।

काव्य आधारित चित्रण : बसोहली चित्र शैली में साहित्य आधारित चित्रों की लंबी श्रृंखला है। भानुदत्त कृत रस मंजरी, जयदेव कृत गीत गोविन्द काव्य पर अनेक चित्र बने। राजा कृपाल पाल को रस मंजरी अत्यन्त पसन्द थी। अतः इस प्रिय विषय पर अनेक चित्रों का निर्माण करवाया। इस ग्रंथ में नायक व नायिका भेद, विषय पर विभिन्न नायिकाओं का चित्रण रूचिकर ढंग से किया है। जिनमें उत्कण्ठिता तथा अभिसारिका नायिका विशेष दृष्टव्य है। परवर्ती चित्रकारों ने बारहमासा चित्र श्रृंखलाओं का चित्रण भी विशेष रूचि के साथ चित्रित किया है। इसी प्रकार इस शैली के चित्रकारों का एक और रूचिकर विषय रागमाला था। विभिन्न राग व रागिनियों का चित्रण इसके अंतर्गत किया गया। रागमाला एवं बारहमासा चित्रण में नायक के रूप में कृष्ण तथा नायिका के रूप में राधा को चित्रित किया गया है।

व्यक्ति चित्रण– बसोहली काल में चित्रकार एक दरबारी सदस्य के रूप में अपने चित्रों का निर्माण करता था। चित्रशालाओं पर राजकीय नियंत्रण था। अतः यहाँ के चित्रकार ने राजसी वैभव के चित्र तथा राजपरिवार से व्यक्ति चित्रण का कार्य भी बखूबी किया है। रनिवास से संबंधित चित्र भी बनाये गये।

बसोहली शैली के चित्रों की विशेषताएँ– बसोहली चित्र शैली अपनी सरलता, भावपूर्ण व्यंजना तथा मीनाकारी के समान चटक एवं ओज पूर्ण वर्णविन्यास के कारण विशेष महत्व रखती है। रेखाओं की सुकोमलता रूप निर्माण में लयात्मकता तथा

गठनशीलता कांगड़ा के समान परिमार्जित नहीं है किन्तु सरलता व भावपूर्ण अभिव्यक्ति कांगड़ा से अधिक प्रभावशाली ढंग से हुई है। बसोहली का आरम्भिक चित्रण स्थानीय कला तत्वों तथा लोक अभिव्यक्ति से प्रेरित होने के कारण इन चित्रकारों ने बाह्य स्वरूप को अत्यधिक महत्व न देकर विषयगत भाव रंजना को प्रथमतः रखा। यही कारण है कि बसोहली चित्र शैली भाव व्यंजना में कांगड़ा से अधिक श्रेष्ठ जान पड़ती है। अभिव्यक्ति में यह शैली स्पष्टता व भावों की मधुरता लिये है।

रूप निर्माण– बसोहली चित्रकार ने पुरूष व स्त्री की मुखाकृति निर्माण में अपनी विशेष पहचान बनाई है। चेहरे के चित्रण में ढालदार माथा तथा ऊंची नाक को एक ही अटूट रेखा द्वारा प्रवाह पूर्ण बनाया गया है। आंखो की बनावट में इस शैली के चित्रकारों ने कला का श्रेष्ठ परिचय दिया है। नेत्र या चक्षु चित्रण बहुत आकर्षक है। नयन पदमाकार, कर्ण स्पर्शी तथा रस भाव से ओत प्रोत हैं। नेत्रों की मादक प्रस्तुति बसोहली चित्रों की प्रमुख पहचान है। नेत्रों के सामन ही नायक व नायिकाओं की मुद्राओं का अंकन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। चित्रों में पात्रों की हस्त मुद्राओं का जितना रूचिकर एवं लयात्मक चित्रण बसोहली शैली में हुआ है वह अद्वितीय है। सम्भवतः अजन्ता के पश्चात् इतना आकर्षक मुद्रा चित्रण बसोहली मे ही उपलब्ध होता है।

बसोहली में न केवल मुख एवं मुद्रा का रूचिकर चित्रण हुआ है। बल्कि नाक, कान, मुंह, कपोल, ललाट एवं संपूर्ण शारीरिक गठन का कुशल अंकन किया गया है।

पात्रों के परिधान में अन्य पहाड़ी शैलियों की भांति पारदर्शी वस्त्रों के अन्दर से अंगो की कोमलता दिखाने की अभिवृत्ति यहाँ के चित्रकारों में भी रही है। निष्कर्षतः बसोहली के चित्रकार पात्रों का बड़े ही सौम्य व श्रृंगारिक स्वरूप का चित्रण कर सरसता का भाव चित्रण में लाने में सक्षम रहे हैं।

हाशिए– बसोहली चित्रों में चित्र को चारों तरफ पतला पट्टीनुमा हाशिए बनाने की प्रथा रही है। ये हाशिये सपाट रंग से बनाये जाते थे। इन हाशियों में गहरे लाल रंग का प्रयोग किया जाता था। कभी गहरे पीले रंग से भी बनाया गया है। लाल रंग के हाशियों में सफेद रंग से टाकरी लिपि में लेख भी लिखे गये है। इन हाशियों को मुग़ल चित्रकला से भिन्न माना जा सकता है। मुग़ल चित्रकला में हाशिये अपेक्षाकृत अधिक चौड़े तथा अलंकरण युक्त बनाये जाते थे।

वर्ण विन्यास– बसोहली चित्र शैली अपने चमकदार अमिश्रित रंगो के द्वारा पहचानी जाती है। रंगो में अद्भुत सौन्दर्यात्मक छटा व्याप्त है। रंगो का आकर्षण देखते ही बनता है। चमकदार रंगो के साथ विरोधी रंगतों को भी विशेष आकर्षण के साथ प्रयुक्त किया गया है। रंगो में लाल, पीला व नीला रंग विशेषता से प्रयुक्त किये गये। एम.एम. एस. रंधावा ने रंगों के बारे में लिखा है कि ''बसोहली शैली के चित्रों में पीले, लाल तथा नीले रंग का प्राथमिक व विरोधी प्रयोग आनन्ददायक और सुन्दर है। चित्रों में रंग इतनी कुशलता एवं सतर्कता से लगाये गये हैं कि वह मीने के समान चमकदार दिखाई पड़ते हैं।

प्रकृति एवं पशु चित्रण – बसोहली शैली में प्रकृति को बड़े मनोहारी रूप में चित्रित किया गया है। विभिन्न प्रकार के वृक्षों के पंक्ति रूप में गहरी पृष्ठ भूमि में हल्की रंगत द्वारा उभार कर अलंकारिक रूप में चित्रित किया गया है, जो अत्यन्त लुभावना लगता है। अधिकांश अखरोट, मोरपंखी, मंजनू तथा आम के वृक्ष बनाये गये हैं, जो चित्र भूमि पर काफी ऊपर तक आच्छादित दिखाये गये हैं। पशु चित्रण में बसोहली की अपनी एक अलग परिपाटी है। पशुओं को कमजोर व दुबला बनाया गया है। पेट चिपका हुआ, लम्बे कान तथा सींग मुड़े हुऐ बताये गये हैं। पशु जम्मू की स्थानीय प्रजाति के प्रतीत होते हैं। प्रायः कृष्ण के बाल रूप के चित्रों में गाय व बछड़ों को इस रूप में चित्रित किया गया है। रागमाला चित्रण में भी नायिका के साथ पशु को आवश्यक रूप में प्रसंगानुसार चित्रित किया गया है।

भवन चित्रण – बसोहली के चित्रण में भवन चित्रण परम्परा भी विशेष महत्व रखती है। भवनों को मुगलिया प्रभाव के साथ चित्रित किया गया है। भवन कक्षों की दीवारों में सुन्दर ताखों अथवा आलों का चित्रण किया गया है। इन ताखों में गुलाबपाश, इत्रदान, पुष्प–पात्र तथा फूलों से भरी तस्तरियां रखी है। भवन चित्रण में सुन्दर कपाटों को आकर्षक आलेखनों द्वारा सज्जित किया गया है। जालीदार खिड़कियाँ, नक्काशीदार स्तम्भ चित्र में आकर्षण का केन्द्र बनकर उभर आते हैं। अधिकांश भवन चित्रण के साथ पिंजड़े में बंद सारिका तथा अन्य पक्षियों को बनाने की अद्भुत परम्परा बसोहली शैली में देखी जाती है।

चित्र संख्या–1 साधु व कृष्ण

उपरोक्त संदर्भ में देखा जाये तो बसोहली शैली अपने युग की प्रभावशाली एवं अत्यन्त लोकप्रिय शैली रही है। समूचे पंजाब प्रदेश, गढ़वाल तथा तिब्बत व नेपाल तक इस कला का प्रचार रहा। इसकी सुलिपि, रंग विधान आदि सभी में अद्‌भुत आकर्षण है। न केवल बसौहली के लघु चित्रों में, अपितु इसके भित्ति चित्रों में भी भारतीय संस्कृति एवं धार्मिक मान्यताओं का बड़े मनोयोग से निर्वहन हुआ है।

बसोहली शैली के प्रमुख चित्र

साधु व कृष्ण –यह चित्र बसोहली शैली में निर्मित सोलहवीं शताब्दी के अन्त का अथवा सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ का है। चित्र में भगवान कृष्ण तथा एक साधु बनाया गया है। श्री कृष्ण को नीले रंग में बनाया गया है। नीला रंग भगवान विष्णु का माना जाता है। (चित्र संख्या 1) कृष्ण ने पीले रंग की धोती पहन रखी है तथा कंधे पर लम्बा गमछा डाले हैं। सिर के बाल, जूड़े के रूप में बन्धे हैं जो सिर के मध्य खड़ा बनाया गया है। कानों में बड़े कुण्डल मोतियों के साथ पहनाये गये हैं। गले में दो लड़ी हार तथा लम्बी मोतियों की माला है। विशेष रूचिकर बात यह है कि, यहाँ पर कृष्ण को पांव में सैण्डिल पहने दिखाया गया है। कृष्ण के सामने हाथ जोड़े एक साधक खड़ा है जो श्रद्धा भाव से कृष्ण को हाथ जोड़े हुए है। उसने भी कृष्ण के समान धोती पहनी है तथा गमछा एक कंधे पर डाले हुए है। धोती का रंग कृष्ण से भिन्न लाल रंग है। बालों पर जूड़ा कृष्ण के समान ही सिर के मध्य ऊर्ध्ववत बना है। इस साधू के कानों में कुण्डल तथा गले में मोतियों तथा तुलसी या रूद्राक्ष की माला धारण की हुई है। साधु अपने शरीर पर संभवतः भभूत लगाये हुए है, जिससे साधु के शरीर का रंग सफेद वर्ण में हल्का गुलाबी मिश्रित बनाया गया है। चित्र की अग्रभूमि में मध्य दो छोटे पेड़ बनाये गये हैं तथा साधु व कृष्ण के पार्श्व स्थान पर केले व अन्य वृक्ष बनाये हैं।

समुचे चित्र की पार्श्व भूमि हरे रंग में बनाई है, जो ओज पूर्ण है। बसोहली कला का आरम्भिक स्वरूप इस चित्र में अपनी विशेषता लिए है। पेड़ों को वृत्ताकार बंधन के साथ उकेरा गया है। जिसको हल्की, गहरी व मोटी रंगत के साथ दिखाया गया है। क्षितिज रेखा चित्र के बहुत ऊपर की तरफ है जो आरम्भिक शैली की पहचान है। ऊपर बादल लम्बी कतार में जल रंगीय प्रभाव जैसे बने हैं। आकृति चित्रण बसोहली शैली का प्रतिनिधित्व करता है। बड़ी–बड़ी आंखें, उभरा हुआ ललाट तथा उठा हुआ नाक एक ही रेखा द्वारा बनाया गया है। शरीर के गठन में स्थानीय प्रभाव है तथा मांसलता के साथ भारीपन है। आकृति की बाह्य रेखाएं भी कांगड़ा से भिन्न मोटापन लिए हैं जो बसोहली शैली की स्वयं की विशेषता रही है। चित्र का हाशिया थोड़ा मोटा है तथा लाल रंग से बनाया है जिस पर टाकरी लिपि से लेखांकन भी किया हुआ है। यह चित्र विक्टोरिया एवं अल्बर्ट म्यूजियम लन्दन में संग्रहित है।

नायक–नायिका :–यह चित्र बसोहली शैली में सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का है। चित्र में नायिका अपने नायक से मिलने घनी अंधेरी रात में आई है। चित्र के मध्य में नायक व नायिका को चित्रित किया गया है। नायिका के पार्श्व में हवेली का एक हिस्सा चित्रित किया गया है। (चित्र संख्या 2) नायक के पार्श्व में पेड़ों को बनाया गया है। नायक व नायिका को गहरी पृष्ठ भूमि में चटक रंगो से चित्रित किया गया है। नायक समय पर नहीं पहुंच पाने पर सफाई देता दिखाई दे रहा है, जो

चित्र संख्या–2 नायक नायिका

उसकी हस्त मुद्राओं से सहज ही प्रतीत हो रहा है। नायिका के मुख पर नाराजगी के भाव है जो अपने हाथ को झटक कर जाहिर कर रही है।

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक बसौहली शैली के अंकन तथा रूपाकारों के चित्रण में बहुत बारीकी आ गई थी। इस चित्र में चेहरों की बनावट पूर्व की भांति ही उभरे ललाट तथा ऊंची नाक के रूप में दिखती है। किन्तु शारीरिक गठन में अनुपात तथा शरीर की सुडौलता में छरहरापन बाद की शैली का प्रभाव है। इस चित्र में शारीरिक गठन कांगड़ा के समान श्रेष्ठ स्वरूप में हुआ है। आंखें पूर्व की भांति अभी भी बड़े रूप में चित्रित है, लेकिन हाथों की मुद्राएं तथा वस्त्रों की शंकुनुमा बनावट तथा व्यवस्थित फरहन का चित्रण बसौहली की विकसित शैली का परिणाम है। इस काल के चित्रण में रेखाओं में भी पूर्व की तरह मोटापन नहीं रहा, रेखाएं अत्यन्त महीन तथा लयबद्ध बनाई गई हैं। नायिका को कंचुकी तथा घेरदार घाघरा पहने बनाया है जो पारदर्शी है। सिर पर पतला दुपट्टा है जो हाथों में घेरे हुए है। नायिका की देह प्रतीक्षा में दीपक की तरह जलते हुए चटक रंग में अंकित है। पुरूष का पहनावा मुगलिया प्रभाव लिए है, लम्बा घेरदार जामा तथा पावों में तंग जामा पहने हैं। कमर पर कमरबंद बंधा है जो यह दर्शाता है कि कार्य की व्यस्तता के कारण नायक समय पर नहीं आ सका है। नायक के पीछे पेड़ हैं, जिन्हे फूलनुमा आधारों में चित्रित किया गया है। नायक नायिका के आभूषणों को अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ चटक व स्वर्ण रंगो से अंकित किया गया है। गहरी पृष्ठभूमि पर चटक रंगों के प्रयोग, छरहरा रूपगत सौंदर्य, वस्त्रों की पारदर्शी फरहान तथा अंलकरण चित्र को अद्वितीय सौंदर्य प्रदान करता है। शैली की दृष्टि से यह बसौली शैली के श्रेष्ठतम चित्रों में से एक है।

कांगड़ा शैली –

हिमालय के पश्चिमी भू–भाग में स्थित अनेक रियासतों में कांगड़ा का नाम विशेष महत्वपूर्ण है। कांगड़ा में कटोच राजवंश के शासन का नाम प्रमुख है, यद्यपि इस पर अन्य अनेक राजवंशो का शासन भी रहा है। कटोच राजवंश में अनेक यशस्वी राजा हुए। इनमें राजा संसारचन्द का नाम सर्वोपरि है। राजा संसारचन्द ने कांगड़ा तथा वहाँ की अन्य रियासतों पर लंबे समय तक शासन किया।

कांगड़ा शैली के उद्भव व विस्तार में कांगड़ा के शासक राजा घमण्डचन्द (1751 ई. से 1774 ई.) की मुख्य भूमिका रही। राजा घमण्डचन्द एक कलाप्रेमी तथा प्रतिभाओं को सम्मान प्रदान करने वाला शासक था। इन्होने अपने दरबार में आस–पास से आये अनेक चित्रकारों को संरक्षण प्रदान किया। इस काल में बाहर से आये चित्रकारो में बसोहली एवं गुलेर क्षेत्र से चित्रकार अधिक रहे। इन कलाकारों ने कांगड़ा शैली को श्रेष्ठतर गुणवत्ता युक्त शैली में परिवर्तित करने का कार्य किया जिसमें यहाँ की सुरम्य पहाड़ी प्रकृति ने कला को अधिक रूचिपूर्ण बना दिया। यहाँ की शैली में स्थानीय कला तत्वों को समाहित करने का कार्य बसोहली से आये चित्रकारों ने भली–भांति किया। कांगड़ा शैली के परवर्ती काल में मुग़ल चित्रकला का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई पड़ता है किन्तु यहाँ के आरम्भिक काल के चित्रों से सहज ही जान पड़ता है कि इन चित्रों की प्रेरणा व आधार यहाँ के भित्ति चित्र रहे हैं तथा यह शैली अपनी स्वयं की पहचान लिए हुए है। डॉ. वाचस्पति गैरोला के अनुसार – कांगड़ा शैली के चित्र भित्ति चित्रों के छोटे रूप है। इस शैली में नारी जीवन की अभिव्यक्ति, इसकी धार्मिक पृष्ठभूमि तथा उच्च आदर्शवादिता का समावेश राजपूत शैली के प्रभाव से ही हुआ था। बसोहली व गुलेर क्षेत्रों से आये चित्रकार पूर्व में भी चित्रों का निर्माण कर रहे थे तथा अपने चित्रों में स्थानीय कला तत्वों को ठेठ देसीपन प्रयोग में ला रहे थे। आगे चलकर यही स्थानीय कला तत्व मुगलिया प्रभाव के साथ परिष्कृत अवस्था में कांगड़ा शैली में प्रयुक्त हुए।

राजा संसारचन्द (1775–1823 ई.) को कलाओं से विशेष लगाव रहा जिसकी पुष्टि अंग्रेज यात्री मूर क्राफ्ट ने की है। इन्होनें अपने संस्मरण में लिखा – ''राजा संसारचन्द के दरबार में इस समय भी कई चित्रकार कार्य कर रहे थे। राजा को चित्रकला से बहुत प्रेम था। उसके पास चित्रों का एक विशाल संग्रह था।'' कांगड़ा शैली के चित्रकारों के प्रमुख केन्द्र गुलेर, नूरपूर, तीरा सुजानपुर तथा नादौन थे।

कांगडा शैली के चित्रकारों के नाम अभी तक बहुत कम प्राप्त हैं। प्राप्त नामों में फत्तू, परखू तथा कुशनलाल (खुशाला) प्रमुख हैं। कांगड़ा में नैनसुख तथा उसके परिवार के चित्रकारों का भी विशेष योगदान रहा है।

कांगड़ा के राजा संसारचन्द की मृत्यु के पश्चात् कांगड़ा

की चित्र शैली की अनुपम धारा मन्द पड़ गई। उसके बाद कांगड़ा का शासक राजा अनिरूद्ध चन्द गद्दी पर बैठा। किन्तु राजा अनिरूद्ध चन्द राजनैतिक उथल–पुथल से उद्वेलित रहा। पारिवारिक उठा–पटक में तथा अन्य रियासतों के दबाव में रहा, जिसमें कला व कलाकारों को उचित संरक्षण प्रदान न कर पाया। अंग्रेज यात्री विजने ने लिखा कि ''राजा अनिरूद्ध ने अपनी समस्त बहुमूल्य वस्तुएं सतलज की ओर भेज दी तथा अनेक चित्र अपने बहनोई को भेंट स्वरूप गढ़वाल भिजवा दिये गये।'' कांगड़ा रियासत अपने अंतिम काल में सिक्खों के अधीन रही। सिक्खों के पश्चात् ब्रिटिश सम्राज्य के अधीन हो गई। 1905 ई. में कांगड़ा में आये भूकम्प से कांगड़ा तहस–नहस हो गया। जीवन और कला की अद्वितीय क्षति हुई, कांगड़ा कला समाप्त प्रायः हो गई।

कांगड़ा शैली के विषय :– कांगड़ा शैली में धार्मिक चित्र बहुतायत से बने हैं। कांगड़ा के शासक वैष्णव धर्म के अनुयायी रहे हैं तथा सामान्य जन मानस भी वैष्णव धर्म के प्रति अगाध आस्था रखता था। इस कारण यहाँ के चित्रकार भक्ति काव्य तथा रीति काव्य से प्रभावित होकर कृष्ण व राधा को नायक व नायिका के रूप चित्रित करने लगे। कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं के चित्रण के अतिरिक्त अनेक पौराणिक व धार्मिक विषयों को भी चित्रित किया है, जिनमें रामायण, हमीरहठ, महाभारत, नल दमयन्ति, शिव व पार्वती विषयक चित्रण प्रमुख हैं। बिहारी तथा केशवदास की रचनाओं पर आधारित चित्रण भी कांगड़ा शैली में किया गया है। जिनमें भानुदत्त की रसिक प्रिया तथा बिहारी सतसई प्रमुख है।

नायिका भेद – मध्यकालीन साहित्य में श्रृंगारिक विषयक काव्य सर्जन लोक रंजना के साथ सृजित हुआ था जिसका प्रभाव कांगड़ा शैली पर भी हुआ। यहाँ के चित्रकारों ने श्रृंगारिक विषयों को लेकर अनेक चित्र बनाये जिनमें नायिका चित्रण अत्यन्त रूचिकर विषय रहा। कांगड़ा शैली के चित्रकारों ने नायिकाओं के तीनों रूप यथा स्वकीया, परकीया तथा सामान्य नायिका को अपने चित्रों में जगह दी है। साहित्य में नायिकाओं के विभिन्न प्रकार उल्लेखित है। जिनकी संख्या आठ है –

1. स्वाधीन पतिका 2. उत्का या उत्कंठिता 3. वासक सज्जा
4. अभिसन्धिता 5. खण्डिता 6. प्रोसित पतिका
7. विप्रलब्धा 8. अभिसारिका

चित्रकारो ने प्रायः सभी प्रकार की नायिकाओं का चित्रण अपने चित्रों में किया, जिनमें स्वाधीन पतिका, वासक सज्जा तथा अभिसारिक नायिकाओं को विशेष रूचि से चित्रित किया गया है।

बारहमासा – कांगड़ा शैली के चित्रों में बारह मासा चित्रण भी विशेष स्थान रखता है। इस प्रकार के चित्रों में वर्ष के विभिन्न महिनों का चित्रण है। जिनका चित्रण माह सम्बन्धि ऋतु वर्णन के साथ प्रस्तुत किया है। अतः षडऋतु चित्रण भी कहा जाता है। ऋतुओं में छः ऋतुओं यथा ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शीत, हेमन्त तथा शिशिर को प्राकृतिक स्वरूप में चित्रित किया गया है। समूचे चित्र में ऋतु के अनुसार आकाशीय रंग, वनस्पति, पुष्प, पक्षी आदि को चित्रित कर ऋतु का वास्तविक दृश्य संजोया गया है। जिनमें कृष्ण को पुरूष व राधा को आत्मा रूप मानकर चित्रित किया गया है।

राग–रागिनी चित्रण– कांगड़ा शैली में विभिन्न राग व रागिनियों को भी चित्रित किया है। विभिन्न राग व रागिनी को स्वभावगत स्वरूप प्रदान किया गया है जो उसकी राग द्वारा उद्भासित होता है। वस्तुतः रागिनी चित्रण विभिन्न राग व रागिनियो का उनके मूलभाव के साथ रूपाकार है जो क्रमशः पुरूष व स्त्री रूप में है। जैसे राग बसन्त उसका एक पुरूष रूपाकार है तथा स्त्री रूपाकार में रागिनी तोड़ी, रागिनी आसावरी इत्यादि है।

दरबारी तथा व्यक्ति चित्र– कांगड़ा चित्रकार राजकीय संरक्षण में चित्र निर्माण किया करता था अतः दरबार संबंधी तथा राजकीय उत्सवों के चित्रण भी विशेष आग्रह के साथ चित्रित हुए है। राजाओं की विभिन्न सवारी के साथ चित्रित किया गया है। तो कहीं उत्सव में भाग लेते चित्रित किया है। राजशाही परिवार के सदस्यों का व्यक्ति चित्रण भी कांगड़ा शैली में हुआ। सामाजिक विषय संबंधी चित्रों में होली, गोवर्धन पूजा संबंधी चित्रण भी इस शैली में हुआ है। यहाँ के शासकों की रानियों के रनवास से संबंधित चित्र भी कांगड़ा शैली में बनाये गये हैं।

कांगड़ा शैली के चित्रों की विशेषताएं – पात्र चित्रण कांगड़ा शैली में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उसका नायक व नायिका की आकृति रचना है, विशेषकर नायिका चित्रण में यह गुण श्रेष्ठ है। नायिका अथवा स्त्री स्वरूप को बहुत ही सुन्दरता

के साथ लयात्मक घुमाव तथा सुडौल बनाया गया है। स्त्रियां अधिक भारी या थुथली न होकर कृषकाय व छरहरी बनाई गई है। इनकी आंखें धनुषाकार है, मुद्राओं तथा अंगुलियो में लय तथा कमनीयता है। रेखाएं अत्यन्त लयात्मक एवं सूक्ष्म विवरण के साथ अंकित की गई है। स्वरूप निर्धारण आदर्श एवं मर्यादित रूप में किया गया है। जिस प्रकार का पात्र चित्रण कांगड़ा शैली की लघु चित्रण परम्परा में है वैसा अन्य कहीं नहीं मिलता।

कांगड़ा शैली के चित्रों में रंग अत्यन्त मधुरता के साथ अपनी विशुद्धता लिए हुए हैं। मीनाकारी के समान चमकदार रंग आरम्भिक चित्रों में प्रयुक्त हुऐ हैं। बाद के चित्रों में किंचित सुफियानापन मुग़ल प्रभाव के कारण पाया जाता है।

वस्त्रों की सिलवटों तथा चेहरे के गले की गोलाई तथा आंखो के पास हल्की गहरी रंगत के साथ चित्रण किया गया है किन्तु सुकुमार कोमल अंकन से कहीं भी यथार्थ परक कठोरता का प्रदर्शन नहीं होता।

चित्रों में चारों तरफ हाशिये बनाये गये हैं जो पतले तथा पट्टीनुमा हैं। जिनमें प्रायः लाल अथवा पीला रंग सपाट रूप से भरा गया है। हाशियों में टाकरी लिपि के आलेखन भी प्राप्त होते हैं।

आत्मिक भाव – धार्मिक, पौराणिक, साहित्यिक सभी प्रकार के चित्रों में मानवीय अनुभूतियों की गहराई तथा आत्मीयता का भाव परिलक्षित होता है। इन चित्रों में सहजता व सरलता प्रमुख गुण है। धार्मिक व पौराणिक चित्रगत विषयों में भी सहजता व सरलता के साथ लोक जीवन सम्मिलित किया गया है जो तत्कालीन समाज की मर्यादित, आदर्शपूर्ण तथा आत्मिक जीवन शैली का प्रमाण है।

प्रसिद्ध कला समीक्षक श्री जे.सी.फ्रैंक ने लिखा है कि ''कांगड़ा के चित्रों की कृतियों में उषा और इन्द्र धनुषी रंगों का सुन्दर प्रदर्शन हुआ है। उनके द्वारा अंकित पुरूषों की मुखाकृतियों से वीरता और स्त्रियों की मुखाकृतियों से अद्वितीय सौन्दर्य, शालीनता और संयम टपकता है। इन्हें देखकर लगता है किसी जादू के संसार में जा पहुंचे हैं।''

परिधान – पहाड़ी शैली में स्त्रियों को लहंगा, कंचुकी व पारदर्शी दुपट्टा पहने हुए दिखाया गया है तथा विभिन्न अंगो को आभूषणों द्वारा सज्जित किया गया है। पुरूष के पहनावे में सर पर कलंगी पगड़ी, शरीर पर जामा तथा नीचे चुस्त पाजामा पहना है। पुरूषों के कंधो पर लटकता पटका तथा कमर पर पेंची बनाई गई है। कृष्ण को पीली धोती तथा सर पर मयूर पंख युक्त सोने के मुकुट के साथ चित्रित किया गया है।

अन्य विविध विषय – प्रायः सभी विषय के चित्रों यथा धार्मिक, पैराणिक, साहित्यिक, श्रृंगारिक व बारह मासा आदि चित्रों में श्री कृष्ण को नायक तथा राधा को नायिका के रूप में चित्रित किया गया है। प्राकृतिक सुरम्य वातावरण के साथ सघन वृक्ष, पुष्प, पशु व पक्षियों का चित्रण भी मनोहारी रूप में हुआ है। चित्रों में प्रसंगानुसार वाद्ययंत्रो का चित्रण भी बड़ा रूचिकर है। भवन निर्माण में प्रायः सफेद रंग प्रयोग लिया गया है। भवनो में आळे, झरोखे इत्यादि सुन्दर अभिप्रायों व अलंकरण के साथ बनाये गये हैं। भवन निर्माण में परिप्रेक्ष्य का प्रयोग वैज्ञानिक विधि अथवा एक कोणीय न होकर नन्दतिक प्रयोग कर बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

प्रमुख चित्र –

खण्डिता नायिका – कांगड़ा शैली – यह चित्र अठारहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में बना है जो कांगड़ा शैली का है। यह चित्र नायिका भेद चित्र श्रृंखला का है। (चित्र सं. 3)प्रस्तुत

चित्र संख्या–3 खण्डिता नायिका

चित्र नायिका भेद में खण्डिता नायिका पर बनाया है। यह कांगड़ा शैली में चित्रित सभी कलात्मक विशेषताओं को धारण किये है। खण्डिता नायिका वह नायिका होती है जो रातभर अपने प्रियतम अथवा नायक का इंतजार करती है तथा उसका प्रियतम सारी रात बीत जाने पर भी नहीं आता। नायिका इन्तजार करते–करते व्यथित हो जाती है। उसका मन दुखी हो उठता है तथा सभी इच्छाएं खण्डित हो जाती है। उसका प्रियतम रात बीत जाने के बाद, भोर होने से पूर्व उसके पास आता है। यह चित्र उस स्थिति को दर्शाता है। नायक के आने पर नायिका के मुख पर उलहाने का भाव होता है। वह नायक से रात भर नहीं आने का कारण पूछती है तथा नायक के आंखो की लालिमा देखकर जान जाती है कि वह किसी और संगिनी के साथ था और इस बात पर नाराजगी जताती है।

यह चित्र इसी विषय को व्यक्त कर रहा है, नायिका की हस्त मुद्रा से स्पष्ट हो रहा है कि वह उससे पूछ रही है तथा उसके मुख से व्यथा एवं नाराजगी झलक रही है। नायक अपनी गर्दन झुकाए तथा मौन खड़ा है। उसके मुख पर शर्मिन्दगी का भाव है। आकाश का उजला नीला रंग रात के बीत जाने का समय इंगित कर रहा है तथा पहाड़ी के ऊपर सूर्य अपनी पहली किरण निकाल रहा है। नायक व नायिका कक्ष के बाहर आहते में खड़े हैं तथा पार्श्व भाग में शयन कक्ष की खिड़की खुली है जिसमें से पलंग दिखाया गया है जहाँ नायिका ने पूरी रात नायक का इन्तजार किया है।

चित्र संख्या–4 राधा–कृष्ण

चित्र में नायिका व नायक के चित्रण में बहुत सुन्दरता के साथ लयात्मक, रेखीय अंकन किया है। मुख मुद्रा तथा हाथ की मुद्राओं का महीन रेखाओं तथा सूक्ष्म बारीकि के साथ बनाया है। पहाड़ी शैली की सभी विशेषताओं को यह चित्र अपने में समेटे है।

राधा कृष्ण – यह राधा एवं कृष्ण का चित्र कांगड़ा शैली में बना है जो अठारहवीं शताब्दी उतरार्द्ध का है। यह चित्र गढ़वाल से प्राप्त हुआ है। यह श्रृंगारिक विषयक चित्र है।

(चित्र सं. 4) राधा व कृष्ण आहते में चौकी पर बैठे है तथा आईने में निहार रहे हैं। आईना राधा ने अपने हाथ में रखा है जिसे एक हाथ से कृष्ण भी थामे हुए हैं। चित्र के अग्रभाग में फव्वारा है जिसके दोनो और साधिकाएं बैठी हैं तथा हाथ में माला लिए हैं जो आपस में पीठ किए बैठी है। आहते के पीछे भू दृश्य बनाया गया है जिसमें पहाड़, तालाब तथा टीले बने हैं। नीले आसमान में घुमड़ते बादल गहरे व श्वेत हल्के रंग में बने हैं। तालाब कमल के फूलों से भरा हुआ है। पीछे झाड़ियां व विभिन्न तरह के पेड़ बने हैं जो फूलों से सुशोभित हैं। पेड़ों पर पक्षी बैठे हैं।

यह चित्र आध्यात्मिक भाव को लिये है। कृष्ण को यहाँ पुरूष के रूप में तथा राधा को आत्मा अथवा प्रकृति रूप में बनाया है। आत्मा पुरूष के संपर्क में आने से माया रूपी संसार की सृष्टि होती है। कृष्ण एवं राधा का शीशे में जो प्रतिबिम्ब उभर रहा है वह माया रूपी संसार है। मानव मन इस माया रूपी संसार से आकृष्ट होकर संसार की मोह पाश में जकड़ जाता है। इस भाव को प्रकट करने के लिए एक साधिका को मुंह घुमा कर कृष्ण राधा को देखते हुए चित्रित किया गया है।

संयोजन एवं कला सौन्दर्य की दृष्टि से यह चित्र उच्च कोटि का है। सादृश्य संयोजन के सिद्धान्त पर इसकी विभक्ति की गई है। चित्र के केन्द्र में कृष्ण व राधा को बनाया गया है जो इनके अविभाजित पूर्ण स्वरूप को प्रकट करता है।

कृष्ण के सिर पर मुकुट अत्यन्त सुन्दरता व बारीकी के साथ चित्रित किया गया है। कृष्ण को अपेक्षाकृत किंचित बड़ा व राधा को छोटा बनाया गया है। कृष्ण को श्याम तथा राधा को

गौर वर्ण में बनाया गया है। साधिका जो माला को लिए मुँह घुमाए बैठी है उसके मुख पर भक्ति भाव दर्शाया गया है तथा जो महिला मुड़कर कृष्ण व राधा की तरफ देख रही है उसके मुख पर चंचलता का भाव दर्शाया गया है।

पहाड़ी शैली के सामान्य विषय एवं विशेषताएँ:–

विषय :– उत्तरी भारत में सोलहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक वैष्णव धर्म का प्रभाव जन मानस पर होने लगा न केवल जनमानस अपितु कला व साहित्य के क्षेत्र में भी यह लोकप्रिय हो गया था। कृष्ण भक्ति तत्कालीन कवियों का रूचिकर विषय बन गया तो चित्रकला भी इससे अछूती न रही। कृष्ण का जीवन लोक जीवन के बहुत करीब था, उनकी बाल–लीलाएँ, गोपाल कृष्ण, आध्यात्मिक लोक रूचि में कृष्ण पुरूष के रूप में तथा राधा प्रकृति के रूप में चित्रों में आने लगे। श्रृंगारिक काव्य में कृष्ण नायक व राधा नायिका रूप में स्वीकार कर भक्ति काव्य रचा जाने लगा, उसी क्रम में चित्रों में भी राधा कृष्ण नायक नायिका स्वरूप में भी चित्रित होने लगे। अतः पहाड़ी चित्र शैली में धार्मिक चित्र विशेष आग्रह के साथ चित्रित किये गये।

नायक–नायिका भेद– काव्य आधारित चित्र भी पहाड़ी शैली में बहुतायत से किये गये। भानुदत्त द्वारा रचित रसमंजरी बसोहली के राजा कृपाल पाल का प्रिय काव्य ग्रन्थ था। इस ग्रन्थ में वर्णित नायक नायिका भेद, आदि विषयों पर चित्रण किया जाने लगा। रसमंजरी के अन्य श्रृंगारिक प्रसंगो के चित्रण में कृष्ण को नायक रूप में आदर्श प्रेमी का स्वरूप प्रदान किया गया है।

बारहमासा व रागमाला– इसी प्रकार बारहमासा चित्र श्रृंखलाओं का चित्रण भी पहाड़ी शैली की प्रमुख विशेषता रही है। इसमें वर्ष के विभिन्न ऋतुओं के आधार पर श्रृंगारिक विषयों का चित्रण किया गया है। बारहमासा के समान ही रागमाला पर आधारित चित्रण भी बहुतायत से किया गया है। इस रागमाला चित्रण तथा बारहमासा चित्रण में भी कृष्ण व राधा को नायक व नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

धार्मिक – कृष्ण भक्ति चित्रण के अतिरिक्त भागवत पुराण, रामायण, दुर्गासप्तशती तथा रूकमणी मंगल आदि विषयों पर भी धार्मिक चित्रण किया गया है।

दरबारी – पहाड़ी चित्रों में विषय के रूप में धार्मिक चित्रों व श्रृंगारिक काव्य आधारित चित्रों के अलावा दरबार संबन्धी चित्रण, जिनमें शिकार चित्र, दरबार उत्सव चित्र, राजशाही व्यक्ति चित्रण तथा रानियो के अन्तःपुर के चित्र भी विशेष रूचि के साथ चित्रित किये गये।

पशु पक्षी– पहाड़ी चित्रों में पशु पक्षियों का चित्रण भी बड़ा मनोहारी हुआ है। सभी प्रकार के विषय चित्रण में प्रायः पशु व पक्षी नायक व नायिका के साथ सहचर रूप में विद्यमान रहे है। इनका चित्रण भी मन भावना के अनुकूल तथा जीवंत किया गया। इनकी आंगिक गति व शारीरिक रचना का तथा पैरो आदि के अंकन को सूक्ष्मता एवं सजीवता के साथ अंकित किया गया है।

पहाड़ी चित्र शैली की सामान्य विशेषताएं–

पहाड़ी चित्र शैली के चित्रों का संयोजन, भावात्मकता, सुन्दरता, कोमलता, सरसता, मन्त्रमुग्ध कर देते हैं। काव्यात्मक लय व रूपगत सौन्दर्य चित्रों में अनुपम प्रभाव भर देते हैं। चित्रों को बहुत सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है। चमकदार रंग, आकृतियों की लावण्यबद्ध गोलाई और शारीरिक गठन शीलता पहाड़ी चित्र शैली को उत्कृष्ट स्तर तक ले जाती है। यद्यपि बसहोली शैली में कांगड़ा के समान रेखांकन उपलब्ध नहीं है तथापि बसौली शैली भी श्रेष्ठ शैली कहलाने का अधिकार रखती है क्योंकि इस शैली में भी रंग योजना व भावाभिव्यक्ति सर्वोत्कृष्ट रूप में पाई जाती है।

हाशिए – चित्रों के चारों तरफ लाल अथवा पीले रंग के हाशिये चित्रित किये गये हैं। हाशियों में किसी–किसी चित्र में आलेखन भी किया गया है। सीधे व स्पष्ट हाशिए मुगल कालीन हाशियों से भिन्न है। लाल रंग के हाशियों पर कहीं–कहीं टाकरी लिपि में लेख भी लिखे है। रसमंजरी तथा गीत गोविन्द पर आधारित चित्रों की पृष्ठिका पर संस्कृत में छन्द भी अंकित किये गये हैं।

रंग योजना – पहाड़ी चित्रों में रंगो का प्रयोग बड़ी रोचकता के साथ किया गया हैं रंग योजना चित्रों में अद्भुत सौन्दर्य को प्रस्तुत करती है। कांगड़ा शैली में जहाँ सौन्दर्य चित्र की गतिज योजना तथा सूक्ष्म गोलाई लिये पात्र चित्रण से प्रकट होता है वहीं बसोहली के चित्रों में रंग अद्भुत आकर्षण लिए हुए है। चटक रंग तथा विरोधी रंग विन्यास विशेष आग्रह के साथ प्रयोग में लाये गये हैं। वर्ण विशुद्धता दर्शक का मन मोह लेती

है। रंगो को प्रतीक रूप में प्रयोग कर चित्रों को रहस्यमय आध्यात्मिकता से युक्त कर दिया गया है। पीला रंग जहाँ पवित्रता, लाल रंग प्रेम, नीला रंग कृष्ण व बादलों की अनन्त व असीम भावना के साथ किया है।

पहाड़ी चित्रकला में चटक व विशुद्ध रंग योजना के साथ स्वर्ण व रजत रंग का प्रयोग भी अलंकरण चित्रण में किया गया है वस्त्र, आभूषण, वास्तु, झरोखों व खिड़कियों में इन रंगो का प्रयोग किया गया है। आभूषणों को चित्रित करते समय गहरे व गाढ़े रंग के उभार के साथ प्रयोग किया गया है, जिनसे मोतियों की गोलाई स्वभाविक रूप में दृष्टिगोचर होती है।

प्रकृति चित्रण – पहाड़ी चित्रों में प्राकृतिक वातावरण को सौन्दर्यात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। वृक्षों की अनेकों प्रजातियों को अलग–अलग अलंकारिक योजना से एक क्रमबद्व तरीके से गहरी पृष्ठभूमि में हल्के रंगो की बारीक रेखाओं द्वारा अलंकारिकता के साथ चित्रित किया है। क्षितिज रेखा को चित्र में थोड़ा अधिक ऊपर की तरफ रखा गया है जिससे समूचा चित्र वृक्ष व लताओं से आच्छादित लगता है। वृक्षों की पत्तियां बनाने में गहरी रेखा का प्रयोग किया गया है। बारहमासा चित्रण में ऋतु अनुसार प्रासंगिक वनस्पति व वृक्ष अंकित हैं। चित्रण के समूचे आभा मण्डल में ऋतु अनुसार वातावरण प्रस्तुत किया गया है।

भवन चित्रण– पहाड़ी चित्रों की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है भवन चित्रण। भवनों का अंकन बहुत भव्य व कलापूर्ण है। भवन प्रायः सफेद रंग में बनाये गये है। स्तम्भों को अलंकरण युक्त बनाया गया है। मीनारों पर प्रायः गुम्बद तथा छज्जों में जालियां चित्रित की गई है। भवन चित्रण में दृष्टिगत परिप्रेक्ष्य का प्रयोग न करके विषय की प्रस्तुति अनुसार परिप्रेक्ष्य का नन्दतिक प्रयोग किया गया है। भवनों के सफेद रंग में अधिकांश अबरकी सफेद रंग का प्रयोग हुआ है।

पात्र चित्रण– पहाड़ी चित्र शैली में आकृतियों के चित्रण में सुनियोजित गोलाई व सुडौलता है। स्त्रियों के मुख्य चित्रण, अंग भंगिमा तथा हस्त मुद्राओं में कलाकार ने अद्वितीय कला का परिचय दिया है। मानवाकृतियों में नेत्रों को कमलाकार बनाया गया है। गोल चिबुक, पतले गुलाबी होंठ व नासिका सीधी व लम्बी बनाई गई है। चेहरे में गोलाई लाने के लिए गर्दन के पास व आंखो के पास कोमल छाया का प्रयोग लिया गया है। नेत्र भावपूर्ण व चचंल बनाये गये हैं। अधिकांश चेहरे एक चश्म बनाये गये हैं। कहीं–कहीं डेढ़ चश्म चेहरों को भी बनाया गया है। बसोहली के चित्रों में मानवाकृतियों का ललाट ढालदार व नाक ऊँची बनाई है। इन्हें एक ही प्रवाह में अटूट रेखा द्वारा बनाया गया है। बसोहली चित्रकारों को बादामी वर्ण से नायिका चित्रण में विशेष रूचि रही है। स्त्रियों के केश कन्धों पर लहराते तथा पारदर्शी दुपट्टे में चमकते दिखाये गये हैं।

परिधान – पुरूष को मुगलिया प्रभाव वाला घेरदार जामा तथा पीछे झुकी पगड़ी पहने चित्रित किया गया है। स्त्रियों के परिधान में सूथन, चोली तथा पारदर्शी दुपट्टा ओढ़े दिखा गया है। कभी कभार स्त्रियां छींटदार घाघरा, चोली तथा पारदर्शी दुपट्टा ओढ़े चित्रित की गयी हैं। कृष्ण को पीताम्बर तथा पीली धोती पहने हुए बनाया गया है तथा मुकुट पर मोरपंख बनाया गया है। राधा के रूप में स्त्री सुकोमल, सुन्दर तथा लावण्य पूर्ण अंग भंगिमाओं से युक्त चित्रित की गई है। कृष्ण के गले में मोतियों की मालाएं व भुजबन्ध चित्रित है। पहाड़ी शैली में कपड़ों को अत्यन्त सुकोमलता व यथार्थपरक फरहनों के साथ बताया गया है। कपड़ों के किनारों पर सुनहरी किनारी बनाई गई है।

वाद्ययन्त्र– पहाड़ी चित्रों में वाद्य यंत्रो का चित्रण भी बहुतायत से हुआ है। तम्बुरे, ढोलक, मृदंग, मंजीरा, वीणा तथा सितार आदि अनेक वाद्ययंत्र बनाये गये हैं। पहाड़ी चित्र कलाकार की उत्कृष्ट कला प्रतिभा के परिचायक है। कलाकार ने रेखाओं की सुकोमलता, लयात्मक सुडौल आकृति चित्रण, मीनाकारी के समान चमकते रंग, प्राकृतिक सुरम्य वातावरण, चित्रण की सूक्ष्मता तथा अलौकिक प्रेम की भावाभिव्यक्ति ने इस शैली को पवित्रता के साथ कलात्मक श्रेष्ठता प्रदान की है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. मुगलकला के पतन के उपरान्त पहाड़ी शैली का विकास हुआ।
2. कांगड़ा, बसोहली, नूरपुर, गुलेल, चम्बा, कुल्लू आदि प्रमुख केन्द्र थे।
3. बसोहली शैली का विकास संग्रामपाल, मेदनीपाल व अमृतपाल के समय हुआ।
4. राजा संसारचंद ने कांगड़ा शैली का सर्वाधिक विकास

किया।

5. पहाड़ी शैली में कृष्ण और राधा की लीलाओं पर आधारित सर्वाधिक चित्र बने।
6. पहाड़ी चित्रों में मानवाकृतियां उष्ण रंगों में व प्रकृति शान्त रंगों में अंकित हुई है।
7. फत्तु, परखु, खुशाला, नयनसुख आदि प्रमुख कलाकार थे।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अजीत घोष के अनुसार नूरपुर व बसोहली के आरम्भिक काल के चित्र किस शताब्दी के हैं ?
2. यह किसका कथन है कि, कांगड़ा शैली के चित्र भित्ति चित्रों के छोटे रूप हैं।
3. कांगड़ा के प्रमुख चित्रकार कौन कौन हैं ?
4. रावी नदी के तट पर किस शैली का विकास हुआ ?
5. बसोहली चित्रों के हाशिये किन रंगो से बने है ?
6. पहाड़ी चित्रों में क्षितिज रेखा का अंकन कहां किया गया है ?
7. पहाड़ी चित्रों में भवन चित्रण में कौनसे रंग का प्रयोग हुआ है ?
8. बसोहली राज्य का संस्थापक कौन था ?
9. कांगड़ा शैली के चित्रों के हाशिए पर आलेखन किस लिपि में लिखा गया है ?
10. अंग्रेज यात्री मूर क्राफ्ट ने किस राजा के बारे में लिखा कि वह चित्रों से बहुत प्रेम करता था ?
11. बसोहली के कौनसे राजा ने अकबर के दरबार में उपस्थित होकर उसे भेंट दी ?
12. मेदनी पाल ने बसोहली में किसका निर्माण करावाया था ?
13. डॉ. आनन्द कुमार स्वामी ने पहाड़ी चित्रकला को किन दो चित्रमाला वर्गो में विभक्त किया ?
14. कांगड़ा शैली पर किस चित्रकला शैली का प्रभाव सर्वाधिक पड़ा था ?
15. पहाड़ी चित्रों में कृष्ण व राधा का चित्रण किस पंथ के अंतर्गत हुआ था ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. आनन्द कुमार स्वामी ने दक्षिणी चित्र माला में कौनसे स्थान के चित्रों को सम्मिलित किया है ?
2. पहाड़ी शैली के अंतर्गत कौन सी उपशैलियाँ आती है ?
3. रागमाला चित्रण में किस विषय पर चित्रण कार्य हुआ है ?
4. नायिकाएं कितने प्रकार की मानी गई है, उनके नाम बताएँ ?
5. कृष्ण व राधा को पहाड़ी चित्रों में किसके प्रतीक रूप में चित्रित किया गया है ?
6. बसोहली के चित्रों के बारे में नानालाल चमनलाल मेहता ने क्या कहा है ?
7. कवि जयदेव ने किस काव्य ग्रंथ की रचना की थी जिस पर पहाड़ी शैली में चित्रण किया गया है ?
8. बारह मासा के अंतर्गत किस प्रकार के चित्र बनाये जाते थे ?
9. पहाड़ी चित्रों के हाशिए मुग़ल हाशियों से किस प्रकार भिन्न थे ?
10. वासक सज्जा नायिका किसे कहा जाता है ?

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. कांगड़ा शैली की अंकन पद्धति तथा वर्ण विन्यास को समझाते हुए प्रमुख विषयों के बारे में बताइए।
2. बसोहली शैली को रंग योजना व पात्र चित्रण कांगड़ा शैली से किस प्रकार भिन्न थे, विस्तृत विवेचना कीजिए।
3. नायिका भेद क्या है, पहाड़ी चित्रों में प्रयुक्त प्रमुख नायिका का उदाहरण सहित व्याख्या करिये।
4. कांगड़ा शैली का परिचय देते हुए इसके उद्भव व विकास के बारे में सविस्तार बताईए।
5. बसोहली शैली के विषयों को समझाते हुए इसकी चित्रगत विशेषताएं बताइए।

आधुनिक भारतीय चित्रकला

अध्याय–5
कम्पनी शैली एवं राजा रवि वर्मा

कम्पनी शैली का उद्‌भव एवं विकास :–

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मूलतः व्यापार के उद्‌देश्य से भारत में प्रवेश किया था, किन्तु धीरे–धीरे सत्ता में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर पूरे देश पर शासन स्थापित कर लिया, इसके पास अपने प्रशासनिक अधिकारी, चित्रकार, सैनिक और नौकर आदि सभी थे, ये सभी कम्पनी के कर्मचारी कहे जाते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को लागू किया, लार्ड मैकाले ने 1834 में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति लागू की, इस समय चित्रकला के क्षेत्र में भी काफी कार्य हुआ, शिक्षा संस्थाओं में यूरोपीय कला पद्धति में शिक्षा दी जाने लगी, साथ ही फोटोग्राफी की नयी तकनीक ने भी कला को प्रभावित किया, यूरोपीय शैली में मॉडल बैठाकर अभ्यास कराया जाने लगा। मद्रास (1850), कलकत्ता (1854), बम्बई (1857), लाहौर (1857) आदि स्थानों पर कला विद्यालय खोले गये।

यूरोपीय शैली में हजारों की संख्या में ड्राईंग, जल रंग, तैल चित्र और प्रिन्ट बनाये गये, उनके बनाने वालों में अंग्रेज, चित्रकार, डॉक्टर, सैनिक अधिकारी, सर्वेक्षण अधिकारी, पर्यटक तथा उनसे प्रभावित देशी चित्रकार थे, पटना, कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, अवध और मद्रास आदि स्थानों पर चित्रकर्म होता रहा, अन्य जगहों पर भी चित्र बनते रहे, आज ये चित्र कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल, आशुतोष कलेक्शन, नेशनल लाइब्रेरी, बिड़ला अकादमी ऑफ आर्ट, इण्डियन म्यूजियम, दिल्ली के नेशनल गैलरी ऑफ मार्डन आर्ट एवं नेशनल म्यूजियम, आदि में संग्रहीत हैं।

भारत के अतिरिक्त विदेशों में इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी एण्ड रिकॉर्डस, ब्रिटिश लाइब्रेरी लंदन, विक्टोरिया एण्ड अलबर्ट म्यूजियम लंदन, के संग्रहों में भी चित्र हजारों की संख्या में हैं। संग्राहलयों में प्रदर्शित चित्रों में तेल चित्र, लघुचित्र, जल रंग और प्रिन्ट चित्र (एचिंग और लिथोग्राफ) एवं अभ्रक पर बनाये गये चित्र (माईका पेंटिंग) भी हैं।

दृश्यचित्र :– कम्पनी शैली के चित्रकारों ने भारतीय जीवन के विभिन्न विषयों को चित्रित किया। उन्होंने बड़ी संख्या में दृश्यचित्र बनाये। देश के विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए पर्वत, नदी, जंगल तथा समुद्र आदि के दृश्यों का चित्रण किया। इस सन्दर्भ में प्रकृति के दृश्यों को ड्राइंग, जलरंग, एन्ग्रेविंग और लिथोग्राफ आदि विभिन्न माध्यमों से चित्रित करने वाले प्रमुख चित्रकारों में थामस डेनियल (1770–1840) विलियम डेनियल (1770–1837), विलियम होजेज और विलियम सिमसम आदि थे। डेनियल ने गंगा नदी से अपनी यात्रा करते हुए बिहार और उत्तर प्रदेश का दौरा किया और इसी बीच गया, मुंगेर, हजारी बाग, जौनपुर और गाजीपुर आदि स्थानों के दृश्यचित्र बनाये। विलियम डेनियल ने 1785 से 1794 के बीच भारत की यात्राएँ कीं। वे स्टील एन्ग्रेविंग में पारंगत थे। उन्होंने 144 चित्रों की एक सीरीज भी बनायी थी। इंग्लैण्ड लौटने पर उन्होंने अपने इन चित्रों की शृंखला को पुस्तक रूप में प्रकाशित किया।

विभिन्न प्रदेशों के लोक जीवन का चित्रण –

उस समय भारत आने वाले अंग्रेजों में यहाँ के रंगों से भरी जीवन शैली, पोशाक, आभूषण, उत्सव और त्यौहार आदि के प्रति जिज्ञासा के साथ ही विशेष आकर्षण था। भारत के विशाल भू–भाग के विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले लोगों की जिन्दगी की विविधता ने चित्रकारों को प्रभावित किया। इस विषय पर चित्र

चित्र संख्या–1 जुलूस

बनाने वाले महत्वपूर्ण चित्रकारों में एमिली ईडेन, बाल्थाजार सोलमिन्स (1960–1824) और चार्ल्स डी ओली (1781–1845) आदि प्रमुख हैं। स्थानीय चित्रकारों में मनुलाल, रामदास, सीताराम, भवानीदास और शेखजियाउद्दीन आदि प्रमुख थे। इन सभी ने विविध उत्सवों, जुलूस, शोभायात्राओं मेलों आदि के चित्रों की रचना की। अंग्रेज चित्रकारों तथा भारतीय चित्रकारों के चित्रों में अधिक अन्तर नहीं होता था। चित्र संख्या–1 (जुलूस का चित्र)

पुरातात्विक महत्व के स्थलों का चित्रण – बहुत से अंग्रेज चित्रकारों ने भारत के पुरातात्विक स्थलों का भ्रमण किया और ऐतिहासिक महत्व के चित्र बनायें, उनमें अजन्ता, ऐलोरा, एलिफेन्टा, कन्हेरी की गुफाएँ, ताजमहल, लाल किला फतेहपुर सीकरी और कुतुबमीनार आदि प्रमुख पुरातात्विक स्थलों के चित्र महत्वपूर्ण है। उन चित्रकारों में जेम्स फरग्यूसन, रार्बट मेलविले, कर्नल रॉबर्ट स्मिथ (भरतपुर जिले के जुलूस का दृश्य) थॉमस डेनियल और विलियम डेनियल आदि प्रमुख थे। इन का माध्यम ड्रॉइंग, जलरंग, तैल रंग, एनग्रेविंग तथा लिथोग्राफ आदि था। पुरातात्विक स्थलों के ये चित्र काफी महत्वपूर्ण हैं।

वेशभूषा एवं आभूषण– भारत के विविध प्रान्तों के निवासियों की विविधता से भरी जीवन शैली और भिन्न–भिन्न रंगों की पोशाकों व आभूषणों से सुसज्जित स्त्री–पुरूषों, बच्चों और बूढ़ों आदि को यूरोपियन चित्रकारों ने अपने चित्रों में प्रस्तुत किया था। छोटे आकार के ये चित्र ड्रॉइंग, जल रंग, एन्ग्रेविंग तथा

चित्र संख्या–2 सपेरा–सपेरन

लिथोग्राफ जैसे माध्यम में हैं। इन विषयों पर चित्र बनाने वाले चित्रकारों में बाल्थाजार सोलमिन्स, मादाम बेलनोस, चार्ल्स डी ओली ऐमिली ईडेन और विलियम सिमसिम आदि प्रमुख थे। उनसे प्रभावित स्थानीय चित्रकारों में फकीर चन्द, शिवलाल और राजाराम आदि थे।

विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित चित्र –

कम्पनी के समय के चित्रकारों ने किसान, लौहार, बुनकर, सुनार, नौकर, दरबान, रसोइया, मिठाईवाला, फेरीवाला और मदारी आदि विभिन्न व्यवसायों से जुड़े हुए लोगों का चित्रांकन किया। इन चित्रों को बनाने वाले प्रमुख चित्रकारों में बाल्थाजार सोलाभिन्स, एमिली ईडेन, मादाम बेलनोस और चार्ल्स डी ओली आदि प्रमुख थे। स्थानीय चित्रकारों ने भी इस तरह के चित्र बनाये। ड्राईंग, जलरंग, एन्ग्रेविंग और लिथोग्राफ के रूप में इन्हें बनाया गया। चित्र संख्या–2 (सपेरा–सपेरन)

आवक्ष चित्र एवं व्यक्ति चित्र :– कम्पनी शैली में बहुत अधिक संख्या में राजा, नवाब, कम्पनी के शासक, अधिकारी तथा अन्य महत्वपूर्ण लोगों के आवक्षचित्र एवं व्यक्तिचित्र भी बनाये गये। उन चित्रों में इन लोगों को भव्य पोशाक पहने हुए विशेष मुद्रा में दिखाया गया है। इसका माध्यम जलरंग, तैल रंग तथा ग्वॉश था। चित्रकार जान जोफानी, जेम्स हन्टर तथा

टिल्ली केटल आदि ने अंग्रेज शासक, अधिकारी तथा राजाओं और नवाबों आदि के व्यक्ति चित्र बनाए।

वनस्पति का चित्रण – कम्पनी शैली में काफी संख्या में वनस्पतियों का चित्रण भी हुआ। हजारों की संख्या में पेड़–पौधे, लता और फूल–फल आदि का चित्रांकन हुआ। जल रंग, एन्गेविंग तथा लिथोग्राफ विधाओं में इन चित्रों को बनाया गया। छोटे आकार के इन चित्रों को विभिन्न शोध–पत्रिकाओं तथा वनस्पति सर्वेक्षण–संग्रहों के लिए बनाया जाता था। वनस्पतियों के चित्र बनाने वाले चित्रकारों में वाल्टर हुड फिच, जोसेफ डाल्टन हुकर, जॉन फरग्यूसन, लेडी कैनिंग, डब्लू. जे. हुकर और एमिली इडेन आदि के नाम प्रमुख है। स्थानीय चित्रकारों में गोराचंद, गोविन्द, विष्णुप्रसाद, भवानीदास तथा रामदास आदि थे।

पशु, पक्षी तथा कीट–पतंगों के चित्र – भारत के रंगीन पक्षी कीट–पतंग तथा विचित्र जानवरों ने भी उस समय के चित्रकारों को आकर्षित किया था। बड़ी संख्या में चित्रकारों ने इनके चित्र जलरंग, एन्ग्रेविंग और लिथोग्राफ माध्यम में बनाये चित्र आकार में छोटे होते थे। इन चित्रों का निर्माण भी विभिन्न शोध पत्रिकाओं तथा प्राणी सर्वेक्षणों के लिए हुआ था। जेम्स फोरबस, रार्बट होम, फ्रान्सिस बुकानन, जॉन गोल्ड, एलिजाबेथ आदि प्रमुख चित्रकारों ने पशु–पक्षियों, कीट–पतंगों तथा जल में रहने वाले जीवों के चित्र बनाये। इनसे प्रभावित भारतीय चित्रकारों ने भी काफी काम किया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में विभिन्न विषयों पर चित्र बनाये गये। भारत के चित्रकला के इतिहास में उपर्युक्त 150 वर्षों का समय बहुत ही महत्वपूर्ण है। चित्रकला के विभिन्न माध्यमों जलरंग, तेलरंग, माइका पेन्टिंग (अभ्रक पर बनाया चित्र) एन्ग्रेविंग और लिथोग्राफ आदि का विकास एक साथ हुआ। दृश्यचित्रण में स्थल अंकन, मानवाकृति, व्यक्तिचित्रण व अनुकृति बनाना इस समय की चित्र कला की प्रमुख विशेषता रही। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत के प्राकृतिक, पुरातात्विक दृश्य, लोगों की जीवन शैली, पोशाक, पेशा, उत्सव, त्यौहार, पशु–पक्षी और वनस्पती के चित्र पोट्रेट तथा पोट्रेचर अंग्रेज चित्रकारों के द्वारा उनकी अपनी शैली में बनाये गये। उनके द्वारा बनाये गये चित्र इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि आज इन प्राकृतिक पुरातात्विक महत्व के स्थानों का दृश्य पहले जैसे नहीं रहा। लोगों की पोशाक और जीवन शैली में भी पर्याप्त परिवर्तन हो गया है।

राजा रवि वर्मा

राजा रवि वर्मा का जन्म 1848 ई. में केरल के एक गाँव किलिमन्नूर में हुआ। रवि वर्मा को बाल्यकाल से ही कला में विशेष रूचि थी। इसकी प्रेरणा उन्हें अपने चाचा से प्राप्त हुई। इन्होंने थियोडोर जेनसन व अन्य यूरोपीय कलाकारो से जो दक्षिण भारत घूमने आते थे, कला दीक्षा ली। उन्होंने अपने समसामयिक कलाकार अलेग्री नायडू से भी चित्रकला की शिक्षा ली। उस समय तैल चित्रण में नायडू का नाम बहुत प्रसिद्ध था। उन्हें उस समय यूरोपियन पद्धति का भारत में सर्वश्रेष्ठ चित्रकार माना जाता था। रवि वर्मा ने यूरोपियन स्टूडियोज की शैली को अपनाते हुए भारतीय विषयों, भारतीय चित्रकला के आदर्शों, विशेषताओं व अभिव्यक्ति की कल्पनात्मक प्रणालियों का आधार लिया।

राजा रवि वर्मा को त्रावनकोर के महाराजा, बड़ौदा के गायकवाड़ व अन्य धनी व्यक्तियों का संरक्षण प्राप्त था। रवि

चित्र संख्या–3 राजा रवि वर्मा का एक चित्र

चित्र संख्या–4 रावण और जटायु

वर्मा ने भारतीय गाथाओं की अभिव्यक्ति पश्चातय शैली में की। उन्होंने अनेक विषयों के चित्र बनाए, उनके विषयों में राजा महाराजाओं के पोट्रेट चित्रों की भी अधिकता रही, चित्रों के विषय भारतीय व शैली पाश्चात्य होने से उनमें नाटकीयता का भी भाव मिलता है। उनके चित्रों का तत्कालीन रंगमंच एवं नाटकों से बहुत सम्बन्ध था। राजा रवि वर्मा ने प्राचीन पौराणिक विषयों के लिए वेशभूषाओं एवं आभूषणों की खोज की व इस के लिए उत्तर भारत के राम कृष्ण से सम्बन्धित तीर्थ स्थानों पर भी गये किन्तु अधिक सफलता न मिलने पर उन्होंने तत्कालीन लोक जीवन एवं उस समय की नाटक मंडलियों से प्रेरणा ग्रहण की उसी आधार पर देवी देवताओं के पौराणिक स्वरूप को चित्रों में अंकित किया।

राजा रवि वर्मा ने अपने चित्रों के प्रकाशन के लिए बम्बई में लीथोग्राफ प्रेस खोली व उसी के द्वारा राजा रवि वर्मा के चित्र प्रकाशित हुए थे व प्रचलित हुए। उनके चित्रों को भारत में विशेष ख्याति मिली व विदेशों में भी इनकी सराहना हुई। भारतीय धार्मिक विषयों पर आधारित और मुद्रित होने के कारण जनसामान्य में इनके चित्र बहुत लोकप्रिय हुए। रवि वर्मा अपने समय के अत्यंत सफल कलाकारों में से थे। छोटी उम्र में ही उन्हें प्रसिद्धि मिल गई थी। हिन्दू महाकाव्यों तथा आख्यानों के चित्र रवि वर्मा की खास पहचान थे। स्त्रियों के अनगिनत रूप भी रवि वर्मा की कला में मिलते हैं। रवि वर्मा के प्रसिद्ध चित्र रावण और जटायु, भीष्म प्रतिज्ञा, समुद्र का गर्व मर्दन, द्रौपदी, शकुन्तला, राजा हरीशचन्द्र, यशोदा एवं कृष्ण आदि हैं।

रावण और जटायु : रवि वर्मा ने रामायण एवं महाभारत के अनेक प्रसंगों को चित्रित किया है। (चित्र संख्या–4) रावण और जटायु चित्र रवि वर्मा का एक प्रसिद्ध चित्र है। चित्र में सीता का अपहरण कर जाते हुए रावण पर जटायु के आक्रमण पर रावण द्वारा जटायु के पंख को काटने की घटना का अंकन हुआ है। रावण को क्रोधयुक्त मुद्रा, सीता की असहाय अवस्था नाटकीय प्रभाव युक्त है। छाया प्रकाश वस्त्र आभूषण एवं आकृति अंकन में यूरोपीय प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

देवकी एवं वासुदेव की कारागार से मुक्ति– यह चित्र महाभारत की घटना पर आधारित है। चित्र आकृति निरूपण, छाया प्रकाश, परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से पाश्चात्य प्रभाव युक्त है एवं इसमें रंगमंच की नाटकीयता भी स्पष्ट दिखाई देती है। चित्र की रंग योजना अत्यन्त आकर्षक है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संरक्षण में विकसित शैली कम्पनी शैली कहलाती है।
2. इसमें यूरोपीय शैली में तैल चित्र, जलरंग चित्र एवं प्रिन्ट चित्र बनाए गये।
3. कम्पनी शैली में भारतीय चित्रकारों के साथ यूरोपीय चित्रकारों ने भी कार्य किया।
4. इस शैली के प्रमुख चित्रकारों में थामस डेनियल, विलियम डेनियल, विलियम होजेज, एमिली इडेन, चार्ल्स डी. ओली, फकीरचन्द, शिवलाल, राजाराम, गोविन्द, विष्णुप्रसाद, भवानीदास आदि प्रमुख थे।
5. पटना, कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, अवध, मद्रास, आदि कम्पनी शैली के प्रमुख केन्द्र रहे।
6. कम्पनी शैली में विभिन्न प्रदेशों के लोक जीवन, वेशभूषा व पुरातात्विक स्थानों के साथ वनस्पति और कीटपतंगों आदि के चित्र बने।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक

1. कम्पनी शैली किसके संरक्षण में विकसित हुई?
2. कम्पनी शैली का विकास देश के किन भागों में अधिक हुआ?
3. राजा रवि वर्मा किन रंगों का प्रयोग करते थे?
4. रवि वर्मा के दो प्रसिद्ध चित्रों के नाम लिखिए।

लघूत्तरात्मक

1. कम्पनी शैली के प्रमुख विषय क्या रहे?
2. कम्पनी शैली के प्रमुख कलाकारों के बारे में लिखिये?
3. राजा रवि वर्मा के चित्र के प्रमुख विषयों के बारे में लिखिये।
4. राजा रवि वर्मा के कुछ प्रमुख चित्रों का वर्णन करिये।

निबन्धात्मक

1. कम्पनी शैली के उद्‌भव व विकास पर निबन्ध लिखिये।
2. राजा रवि वर्मा का भारतीय कला में क्या योगदान रहा। स्पष्ट कीजिये।

अध्याय–6

भारतीय पुनरूत्थान कालीन कला

बंगाल शैली का उद्‌भव विकास :–

सन् 1884 ई. में ई. बी. हैवेल मद्रास कला विद्यालय के प्रधानाचार्य बने। भारत में कांग्रेस की स्थापना होने से जागृति की कुछ लहर आयी। हैवेल ने भी इसमें योगदान दिया उन्होंने समस्त संसार का ध्यान भारत की प्राचीन कला की ओर आकर्षित करते हुए कहा कि – ''यूरोपीय कलाएँ तो केवल सांसारिक वस्तुओं का ज्ञान कराती है परन्तु भारतीय कला सर्वव्यापी अमर तथा अपार है।'' कुछ समय के पश्चात वे कलकत्ता स्कूल ऑफ आर्ट के प्रिंसिपल बने। यहाँ उनके सम्पर्क में अवनीन्द्रनाथ आए जिन्होंने आगे चलकर बंगाल शैली अथवा ठाकुर शैली का सूत्रपात किया। अवनीन्द्र बाबू की कला पर पश्चिमी, ईरानी, चीनी, जापानी, मुग़ल तथा अजन्ता का प्रभाव था। इन सब शैलियों के समन्वय से इन्होने एक नवीन शैली का सूत्रपात किया गया जिसे बंगाल शैली कहा गया। अवनीन्द्र बाबू ने अनेक शिष्य तैयार किए जिन्होंने देश के विभिन्न भागों में कार्य करते हुए इस शैली व कला का प्रचार किया। इनमें नन्दलाल बसु, असित कुमार हलदर, सुरेन्द्र नाथ गुप्त, देवी प्रसाद राय चौधरी, उकील बन्धु आदि प्रमुख थे। व्यक्तिगत विशेषताएँ होते हुए भी सब पर अवनी बाबू का प्रभाव था।

इस शैली के प्रेरणा के प्रधान स्रोत अजन्ता, मुग़ल तथा राजस्थानी चित्र थे। जापान, चीन तथा ईरान की कला का भी इस पर प्रभाव पड़ा। इस शैली में सरलता, स्पष्टता व स्वाभाविकता है। नियमों की जकड़ न होने से इस शैली का प्रत्येक चित्रकार अपनी पृथक–पृथक विशेषताओं का विकास कर सका। कोमल तथा गतिपूर्ण रेखांकन में इस शैली के चित्रकारों ने भारत की प्राचीन चित्रकला तक पहुँचने का प्रयत्न किया। शरीर रचना के यूरोपीय नियमों के साथ–साथ प्राचीन सामान्य पात्र विधान का पालन किया गया। रंग–योजना कोमल और सामंजस्य पूर्ण रही। रंगों में जलरंगों का अधिक प्रयोग हुआ, जिन्हें कुछ चित्रकारों ने वॉश पद्धति के माध्यम से भरा है, कुछ लोगों ने टेम्परा रंगों का भी प्रयोग किया है। प्राचीन ऐतिहासिक पौराणिक एवं साहित्यिक विषयों के साथ–साथ भारतीय घरेलू जीवन के भी कुछ चित्र बने परन्तु तत्कालीन वातावरण का प्रभाव इस पर कहीं भी दिखायी नहीं देता।

इस शैली का आरम्भ एक आन्दोलन के रूप में हुआ। प्रारम्भ में इसका सर्वत्र विरोध ही हुआ किन्तु आन्दोलन में भाग लेने वाले कलाकार तथा कला आलोचक दृढ़ता से अपने मार्ग पर बढ़ते रहे और अन्त में देश भर में अपना प्रभाव फैलाने में सफल रहे। भारत के बाहर भी इनके चित्रों की प्रर्दशनियाँ आयोजित की गयी। पुनरूत्थान काल के इस आन्दोलन के वास्तविक महत्व व स्वरूप को जनता को समझाने में श्री हैवेल, डॉ. आनन्द कुमार स्वामी, श्री असित कुमार हलदर तथा श्री गांगुली आदि के प्रयत्न सराहनीय थे। इस आन्दोलन से भारतीयों में राष्ट्रीय शैली का प्रचार बढ़ा यद्यपि आगे चलकर इस शैली का पतन हो गया और कलाकारों ने अपने–अपने व्यक्तिगत मार्गों पर बढ़ना आरम्भ कर दिया परन्तु कला की दृष्टि से भारतीय कला के क्षेत्र में बंगाल स्कूल का महत्व है।

बंगाल शैली की विशेषताएँ –

1. यह शैली सरल व स्पष्ट है।
2. रेखांकन के महत्व को पुनः प्रतिष्ठित किया गया।

3. रंगों में भड़कीला छाया–प्रकाश का प्रयोग न होकर शान्त रंग योजना का सहारा लिया गया है। रहस्यात्मक वातावरण 'वॉश' तकनीक के आधार पर बनाने की विशेष चित्रण–परम्परा का प्रयोग हुआ।
4. छाया–प्रकाश का नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने का नन्दतिक प्रयास किया गया है, लेकिन फोटोनुमा स्वाभाविकता का जोर समाप्त हो गया था।
5. इस शैली के चित्रों में वास्तु व प्रकृति के प्रखर आलंकारिक रूप का अभाव रहा है।
6. आलेखन स्थान के रूप व अन्तराल के सम्बन्ध में अकबरी या मेवाड़ी परम्परा भी समाप्त हो गई। प्रायः चित्र में एक निश्चित दृश्य को सरल तल–व्यवस्था के आधार पर दर्शाने का ही अधिक प्रयत्न हुआ।
7. बंगाल शैली में विदेशी कागज़ व जल रंगों का प्रयोग हुआ।
8. विषय वस्तु में भी इस शैली में पौराणिक कथाओं, सामाजिक जन–जीवन व ऐतिहासिक प्रेम गाथायें आदि विषय अधिक चित्रित हुये।

इस प्रकार आन्दोलन के फलस्वरूप चित्रकला का उभरा स्वरूप पुनर्जागरण चित्रकला, ठाकुर शैली, बंगाल–शैली जैसे प्रचलित शीर्षकों से कला इतिहास में प्रसिद्ध है।

बंगाल शैली के प्रतिनिधि चित्रकार व उनके चित्र–

नन्दलाल बसु –

आचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय चित्रकला के जिस आन्दोलन को आरम्भ किया, उनके बाद उसका सफल नेतृत्व किया उनके शिष्य नन्दलाल बसु ने। नन्दलाल का जन्म 3 सितम्बर 1883 में बिहार के मुंगेर जिले में हुआ। कला में रूचि के कारण कॉलेज की शिक्षा का त्याग कर कलकत्ता के स्कूल ऑफ आर्ट में अवनीन्द्रनाथ से कला की शिक्षा प्राप्त की।

नन्दबाबू ने अजन्ता, बाघ गुफाओं के भित्ति–चित्रों की प्रतिलिपियाँ बनाई एवं अपने चित्रों में भी उनसे प्रेरणा ग्रहण की। रेखा, भाव, आकार आदि में उनकी शैली अजन्ता से निकट सम्बन्ध रखती है।

इनके चित्रों के विषय हिन्दू पौराणिक व धार्मिक कथाएं, बुद्ध के जीवन की घटनाएं आदि रहीं। उनके प्रमुख

चित्र संख्या–1 शिव का विषपान

चित्रों में सती, शिव का विषपान, बुद्ध व मेष, दुर्गा, पार्थ सारथी, अर्जुन, संथाल–संथालिन, यक्ष व मेघ, गांधी जी की डांडी यात्रा आदि हैं। नन्दलाल बोस शान्ति निकेतन में कला विभाग के अध्यक्ष भी रहे। वे रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ चीन भी गये और स्याही में प्रयोग किये। कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन के लिये उन्होंने एक विशेष पोस्टर शृंखला बनाई जिसमें नवीन शैली का प्रयोग किया। शांति निकेतन में वे मास्टर मौसाय के नाम से प्रख्यात थे ।

नन्दलाल बसु को भारत सरकार ने पद्मविभूषण से सम्मानित किया। वे ललित कला अकादमी के रत्न सदस्य भी रहे। नन्दलाल बोस ने शिल्पकथा एवं रूपावली नामक पुस्तकें भी लिखी जिनमें अपने कला सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये।

शिव का विषपान नामक चित्र बंगाल शैली का एक प्रतिनिधि चित्र कहा जा सकता है। चित्र हल्की कोमल लयात्मक रेखाओं में अंकित हुआ है। रेखाएँ, आकृति, मुद्रा एवं आँख, कान, नाक आदि पूर्णतया अजन्ता के प्रभाव को प्रस्तुत करते हैं। वॉश पद्धति द्वारा एक वर्णीय रंग योजना का प्रयोग हुआ है। (चित्र संख्या–1)

नन्द बाबू ने बाद में लोक शैली का आधार लेते हुए स्वतन्त्र, सहज व सशक्त आकारों में कांग्रेस के हरिपुरा

अधिवेशन के लिए एक चित्र शृंखला तैयार की थी जिसमें भारतीय लोकजीवन की झाँकियाँ तेज, तीखे आकर्षक रंगों एवं सशक्त रेखाओं में प्रदर्शित की। ढाकी (ढोल बजाने वाला) एवं देवी चित्र इस शैली के श्रेष्ठ उदाहरण है।

असित कुमार हाल्दार :–

असित कुमार हाल्दार का नाम बंगाल स्कूल के यशस्वी कलाकारों में शामिल है जिन्होंने कई वर्षों तक लगातार भारतीय कला की सेवा की।

अवनीन्द्र बाबू से कला शिक्षा प्राप्त करने के बाद पहले वे शान्ति निकेतन के कला विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए बाद में उन्होंने जयपुर स्कूल ऑफ आर्ट एवं लखनऊ स्कूल ऑफ आर्ट के प्रधानाचार्य पद पर कार्य किया। हाल्दार के आरम्भिक चित्रों में सरस्वती एवं महाकाली प्रमुख है। हाल्दार ने अजन्ता, बाघ व जोगीमारा गुफाओं के भित्तिचित्रों की प्रतिकृतियाँ भी बनाई। इनके चित्रों के विषय प्रायः पौराणिक रहे। मेघदूत, ऋतुसंहार व महाभारत पर चित्र बनाने के साथ–साथ इन्होंने उमरखय्याम की रचनाओं पर भी चित्र बनाए। उनके चित्रों में रेखा, रंग विधान, मुद्रा अंकन, संयोजन आदि सभी में लयात्मकता एवं मधुरता है। प्रकाश और लय, कुणाल, अकबर, वेद का अध्ययन आदि इनके उल्लेखनीय चित्र है।

चित्र संख्या–2 मां और शिशु

असित कुमार हाल्दार ने दो पुस्तकें ''आर्ट एण्ड ट्रैडिशन'' और ''आवर हैरिटेज इन आर्ट'' लिखी हैं, जो चित्रकला के विद्यार्थियों के लिए बड़ी लाभदायक साबित हुई हैं। उन्होंने लिखा है कि – ''भारतीय चित्रकला में प्राचीन परम्परा की सांस्कृतिक, पैतृक सम्पति विद्यमान है, जो राष्ट्रीय सांस्कृतिक निधि की ठोस बुनियाद है। परम्परा ही हमारी कला की आधार शिला है जिस पर वर्तमान और भविष्य की कला का मंदिर निर्मित हो रहा है।''

असित कुमार हाल्दार ने चित्राकंन में लोक कला को परम्परागत चित्रकला में उच्च स्थान दिया। उनका मत है कि जन साधारण की कला की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। उसमें मनुष्य के आदिम कला प्रेम की भावना निहित है और उसमें मनुष्य जाति से सम्बन्ध रखने वाले विषयों का प्रतिबिम्ब है।

असित कुमार हाल्दार का चित्र माँ एवं शिशु अवनीन्द्र बाबू की शैली में बना सुन्दर चित्र है। (चित्र संख्या–2) यह चित्र भी हल्की, कोमल रंग योजना एवं कोमल, लयात्मक रेखाओं का आकर्षक उदाहरण है। वॉश पद्धति के कारण पीला व लाल रंग भी धूसर रूप में दिखाई देते हैं। चित्र की योजना भी सरल है। अग्रभूमि एवं पृष्ठभूमि को सरल रखा गया है।

मोहम्मद अब्दुल रहमान चुगताई :–

मोहम्मद अब्दुल रहमान चुगताई का जन्म 21 सितम्बर, सन् 1897 ई में मुग़ल कलाकार परिवार में हुआ था। उनके पूर्वज ''अहमद'' (नामक) मुग़ल शासक जहाँगीर के प्रधान वास्तु–शिल्पकार थे। चुगताई ख्याति प्राप्त प्रतिभा सम्पन्न पुनर्जागरण काल के कलाकारों में से एक विशिष्ट चित्रकार रहे। भावनात्मक एवं सौन्दर्य दृष्टि से उनके चित्रों का विशेष महत्व है। पशु अंकन, मुद्राओं, प्राकृतिक पृष्ठभूमियों की चित्रांकन शैलियों को देखते हुये कुछ विद्वान उनकी कलम को पर्सियन–मुग़ल कहते हैं और कुछ विद्वान ईरानी मुग़ल कला के नाम से सम्बोधित करते हैं। चुगताई ने हिन्दु धार्मिक, पौराणिक, आख्यानों के अनेक चित्र बनाये।

उनकी चित्र शैली की विशेषताओं में मुख्यतः प्राकृतिक सौन्दर्य, चित्र का आकर्षक संयोजन, सजीव

आकृतियाँ, गतिपूर्ण व महीन बाह्य रेखांकन छाया प्रकाश दर्शाने का प्रयास, आकर्षक मुख मुद्रा, कोमल एवं लयात्मक हस्त मुद्रायें, सुन्दर आभूषण अंकन इत्यादि उल्लेखनीय हैं। उनके कुछ चित्रों में आकृतियों के अंकन पर विदेशी प्रभाव भी देखा जा सकता है। उनका चित्र विश्वामित्र इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। इसमें अंकित राम और लक्ष्मण के मुख और केश सज्जा पर जापानी प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। यद्यपि चित्र की पृष्ठ भूमि में अंकित वृक्ष इत्यादि पर मुग़ल कला का प्रभाव अधिक है। उनके कुछ चित्रों पर अजन्ता कला की छाप दिखाई देती है। चित्रों में आकृतियों के पैरों की लम्बाई अधिक है।

इस प्रकार की आकृतियों में ऊषा, बंशी युक्त कृष्ण, अर्जुन को निर्देश देते कृष्ण, द्रोपदी एवं पांडव, चैतन्य की पत्नी इत्यादि हैं। चुगताई के चित्रों में रंग योजना अत्यन्त सुन्दर आकर्षक एवं लुभावनी है।

उनके चित्र रंग संयोजन के सुन्दर प्रमाण हैं। चुगताई के चित्रों का अध्ययन करते समय आभास होता है कि उन्हें पद्म पुष्पों से अत्यधिक लगाव रहा होगा क्योंकि अनेकों चित्रों में गुलाबी पद्म का अकंन प्रचुरता से किया गया है। कलात्मक

चित्र संख्या–3 राधिका

गुणों, सौन्दर्य, रंग–संयोजन की दृष्टि से होली स्नान के पश्चात् देवदासी, चित्रलेखा चित्र विशेष उल्लेखनीय है। चुगताई के उत्तरार्द्ध कालीन चित्रों में रंग संयोजन पर कांगड़ा कला शैली के रंगों का स्पष्ट प्रभाव झलकता है।

अनेक कला समीक्षकों ने इन्हें विश्वस्तर का कलाकार माना उनके चित्रों की प्रर्दशनियाँ भारत के साथ –साथ विदेशों में भी आयोजित हुई उनके चित्र इग्लैण्ड, जर्मनी फ्रांस, रूस अमेरिका व अनेक देशों में संग्रहीत हैं।

राधिका नामक चित्र चुगताई के अपूर्व कला कौशल को प्रस्तुत करने वाला प्रतिनिधि चित्र है। (चित्र संख्या–3) रंगों की मधुरता, रेखाओं की गत्यात्मकता एवं लयात्मकता अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। राधिका की भाव–भंगिमा एवं मुद्रा भी प्रभावशाली है। चित्र बंगाल शैली का एक उत्कृष्ट चित्र माना जा सकता है।

आनन्द कुमार स्वामी :– आनन्द कुमार स्वामी का जन्म 1877 में कोलम्बो, श्रीलंका में हुआ। उनके पिता तमिल थे जो श्रीलंका में जाकर बस गये थे। वे एक बैरिस्टर थे। उन्होंने एक अंग्रेज महिला से विवाह किया था। आनन्द कुमार स्वामी के जन्म के कुछ ही समय बाद उनके पिता की मृत्यु हो गई। उनकी माँ उन्हें लेकर इंग्लैण्ड चली गई जहाँ आनन्द कुमार स्वामी की शिक्षा दीक्षा हुई। शिक्षा समाप्त कर आनन्द कुमार स्वामी श्रीलंका के एक अधिकारी के रूप में कोलम्बो में नियुक्त हुए जहाँ उन्हें भारतीय कला व दर्शन के प्रति रूचि उत्पन्न हुई। भारतीय कला, दर्शन व संस्कृति का अनुराग उन्हें भारत के निकट सम्पर्क में खींच लाया और उन्होंने भारतीय संस्कृति, कला और दर्शन के विषय में अनेक ग्रन्थ लिखे एवं धीरे–धीरे वह भारतीय कला के उत्कृष्टतम विवेचक के रूप में संसार भर में विख्यात हो गये।

आनन्द कुमार स्वामी ने 1908 से 1913 तक भारत की अनेक यात्राएँ की एवं कलात्मक महत्व के स्थानों का भ्रमण कर विभिन्न जानकारियाँ एकत्र की। राजपूत एवं पहाड़ी शैलियों का निरीक्षण किया व चित्रों का संग्रह किया और 1916 में ऑक्सफोर्ड प्रेस द्वारा राजपूत कला पर दो सचित्र खण्ड प्रकाशित कर भारतीय लघुचित्रण परम्परा को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया। उनके भारतीय कला सम्बन्धी लेख उस समय की प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए।

आनन्द कुमार स्वामी ने लगभग 20 पुस्तकें लिखी जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

1. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट
2. इन्ट्रोडक्शन ऑफ इण्डियन आर्ट
3. राजपूत पेन्टिंग
4. डांस ऑफ शिवा

अपनी पुस्तकों एवं लेखों से आनन्दकुमार स्वामी ने भारतीय कला, धर्म व संस्कृति को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत कर भारत का गौरव बढ़ाया। भारतीय कला के इतिहास में उनका योगदान अविस्मरणीय है।

ई. बी. हैवेल :– आधुनिक भारतीय कला के इतिहास में श्री ई.बी. हैवल का अपना एक विशिष्ट स्थान है इन्होंने भारतीय कला के सैद्धान्तिक पक्ष को सरल, स्पष्ट व तथ्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया। हैवेल ने भारतीय स्थापत्यकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला के तकनीकी पक्षों, प्रतीकों, निर्माण प्रक्रिया एवं रचना पद्धति पर विस्तार से अपने विचार प्रस्तुत किये। पुस्तक में मुग़ल शैली के संदर्भ में आबीना से जरब तक की प्रक्रिया (लघुचित्र बनाने की विधि) एवं उपयोग मे लिये गये कागज़ों (वसली) आदि की विस्तृत व्याख्या की गई है जो वर्तमान में भी कला शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं विद्धानों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हैवेल ने भारतीय कला के अनेक पक्षों को अपनी पुस्तकों एवं लेखों के माध्यम से विश्व के समक्ष प्रस्तुत कर भारतीय कला के गौरव को बढ़ाया। सन् 1896 ई. में हैवेल मद्रास कला विद्यालय से कलकत्ता कला विद्यालय के आचार्य के रूप में नियुक्त हुये। उन्होंने अनुभव किया कि भारतीय कलाकार एवं छात्र यूरोपीय कला शिक्षण प्रणाली एवम् प्रभाव के कारण भारतीय कला को विस्मृत कर पाश्चात्य कला का अनुसरण कर रहे हैं। उस समय के आलोचकों, समालोचकों एवं विदेशियों के मध्य ई.वी. हैवेल ने एक सच्चे कला मर्मज्ञ की भाँति भारतीय कला के लिए सराहनीय शब्दों का प्रयोग किया। उन्होंने यह विचारधारा भी प्रदर्शित की कि पाश्चात्य कला की अपेक्षा भारतीय कलाकारों को अजन्ता, राजपूत, मुग़ल शैली को आधार मानकर कलाभिव्यक्ति करनी चाहिए। हैवेल ने स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार किया कि भारतीय कला आत्मा के अधिक निकट है और इसमें स्थूल जगत की अपेक्षा शाश्वत सत्यता का प्रदर्शन है जबकि पाश्चात्य कला इसके विपरीत भौतिकता के निकट है और इसमें स्थूल एवं मांसल सौन्दर्य है, पर आध्यात्मिकता की कमी है।

ई.बी. हैवेल ने भारतीय कला के पक्ष में इण्डियन स्कल्पचर एंण्ड पेटिंग, इण्डियन आर्किटेक्चर, और आईडिअल्स ऑफ इण्डियन आर्ट नामक पुस्तकों की रचना की। हैवेल ने अपने ग्रन्थों के माध्यम से भारतीय पारम्परिक कला के प्रति विश्व का ध्यान आकृष्ट कर भारतीय कला के कलात्मक गुणों को प्रस्तुत किया। भारतीय कला के क्षेत्र में श्री हैवेल का योगदान अमूल्य है।

रवींद्रनाथ ठाकुर :– आधुनिक भारतीय चित्रकला के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम महत्वपूर्ण है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक अच्छे लेखक, कवि, संगीतज्ञ, दार्शनिक होने के साथ–साथ एक अच्छे कलाकार भी थे। इन्होंने अपनी वृद्धावस्था की ओर बढ़ते हुए लगभग 67 वर्ष की आयु में चित्र बनाने की शुरूआत की। उनके चित्रण का आरम्भ उनके लेखन से ही हुआ। अपने लेखों एवं कविताओं में अनावश्यक शब्दों की काट–छांट करते समय उन्होंने उन्हें आकार देते हुए काल्पनिक रूपों में परिवर्तित कर दिया और आकार सृजन में आनन्द आने पर चित्र बनाने आरम्भ कर दिये और कुछ ही वर्षों में लगभग तीन हजार चित्र बना दिये। रवीन्द्रनाथ ने कभी कला की पारम्परिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। अतः उनकी कला सहज एवं नियमों से परे है। उन्होंने भारतीय कलाकारों को स्वतन्त्र व स्वच्छंद शैली में चित्रण करना सिखाया। रवीन्द्रनाथ के माध्यमों में भी स्वच्छन्दता है। उन्होंने, रंगीन स्याही, पैन, जल रंग आदि में चित्र बनाए। रंगों को कभी तूलिका तो कभी हाथ से, कपड़े से ही लगा दिया। कभी–कभी फूल–पत्तियों को रगड़कर ही रंगीन प्रभाव प्रस्तुत कर दिये इन सब कारणों से उनकी कला में बाल सुलभ शैली का दर्शन होता है।

रवीन्द्र बाबू के चित्रों में अनगढ़ आकृतियाँ, चेहरे, पेड़–पौधे आदि बहुतायत से बने हैं। रवीन्द्रनाथ के चित्रों की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रदर्शनियाँ हुई। जिन्होंने इन्हें विश्व विख्यात बना दिया। रवीन्द्रनाथ के चित्रों में स्वप्निल आकार रहस्यात्मक रूप में बने दिखाई देते हैं। उनके चित्रों में गहरे रंगों की अधिकता रही। कभी–कभी अपने दृश्य चित्रों में गहरे रंगों के साथ चमकीले रंगों का प्रयोग भी उन्होंने किया। रवि बाबू एक प्रयोगवादी कलाकार थे जिन्होंने कला को पारम्परिक

चित्र संख्या–4 मां और शिशु(रवीन्द्रनाथ टैगोर)

नियमों व आदर्शों से मुक्त करते हुए आत्माभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया इसीलिये उन्हें आधुनिक भारतीय कला के प्रणेताओं में से एक माना जाता है।

रवीन्द्रनाथ के चित्र प्रायः शीर्षकहीन हैं। उन्होंने अपने चित्रों को शीर्षक नहीं दिये। लेकिन माँ और शिशु चित्र स्वतः अपने शीर्षक को चरितार्थ करता है। (चित्र संख्या–4) उनके इस चित्र में सरल रेखीय शैली में एक स्त्री व बच्चे के आकार दिखाई देते हैं। स्त्री का चेहरा बच्चे पर झुका हुआ है। हल्की रेखाओं से स्त्री का चेहरा बनाया गया है। इनके चित्र ''स्त्री'' में एक स्त्री का झुका हुआ, चेहरा बना है। स्त्री का केवल मुख एवं एक हाथ दिखाई दे रहा है। शेष शरीर वस्त्र से ढका है। चित्र में पीले व भूरे रंग का प्रयोग हुआ है।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर :– 1817 को जन्माष्टमी के दिन बंगाल में जोरासांकु के प्रसिद्ध ठाकुर परिवार में एक नवीन देदीप्यमान नक्षत्र का उदय हुआ। जिसे अवनीन्द्र नाम दिया गया। आरम्भिक शिक्षा विद्यालय में ग्रहण करने के बाद घर पर ही उन्होंने संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया एंव संगीत की शिक्षा भी ग्रहण की। अपने पिता श्री गुणेन्द्रनाथ दादा गिरीन्द्रनाथ व चाचाओं ज्योतिरीन्द्र व रवीन्द्रनाथ आदि सभी से साहित्य संगीत व कला को सहज रूपों में ग्रहण किया। पिता व दादा अच्छे कलाकार थे अतः उनके निर्देशन में चित्र बनाने आरम्भ किए। जिस समय अवनीन्द्रनाथ ने चित्रकला के क्षेत्र में प्रवेश किया उन दिनों अधिकांशतः भारतीय चित्रकार यूरोपीय शैली में कार्य कर रहे थे, अतः अवनीन्द्र बाबू ने भी इटालियन कलाकार श्री गिलहार्डी एवं ब्रिटिश कलाकार श्री पामर से कला की विधिवत् शिक्षा ग्रहण की एवं यूरोपीय शैली में चित्र बनाए। उनके आरम्भिक चित्र पैन व स्याही से बने रेखाचित्र, व्यक्तिचित्र एवं दृश्यचित्र हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की पुस्तक चित्रांगदा पर आधारित चित्र इनके आरम्भिक चित्र हैं।

अवनीन्द्रनाथ बाबू ने लगभग 1895 तक इसी शैली में कार्य किया, किन्तु बाद में पैतृक संग्रह में मुग़ल शैली के लघु चित्रों को अपनी प्रेरणा का आधार बनाया। जिसका प्रभाव 1895 ये 1900 के बीच बने उनके चित्रों पर स्पष्ट दिखाई देता है। जैसा कि इस समय में बने ''राधाकृष्ण'' श्रृंखला के चित्र यूरोपीय एवं भारतीय शैलियों के समन्वय को प्रस्तुत करते हैं। इसी समय उन्होंने रवि बाबू के कहने पर चण्डीदास एवं विद्यापति की वैष्णव पदावली का अध्ययन किया व उन पर आधारित चित्र बनाए। इस समय तक वे यूरोपीय शैली से भारतीय शैली की ओर अग्रसर हो चुके थे, जिसका प्रतिनिधित्व उनका ''शुक्लाभिसार'' नामक चित्र करता है जो पूर्णतः भारतीय शैली में बना उनका प्रथम चित्र माना जाता है। संयोग से अवनीन्द्रनाथ का परिचय कलकत्ता स्कूल ऑफ आर्ट के प्रधनाचार्य श्री ई.बी. हैवल से हुआ, जिनकी प्रेरणा से अवनीन्द्र बाबू ने महान भारतीय शैलियों एवं चित्रों को अपनी प्रेरणा का आधार बनाया। उन्होंने अजन्ता, राजस्थानी, मुग़ल व पहाड़ी चित्रों का अध्ययन किया एवं बुद्ध चरित्र व कृष्ण चरित्र आदि पर श्रृंखला चित्र बनाए। उन्होंने भारतीय पौराणिक व संस्कृत साहित्य को भी अपने चित्रों का विषय बनाया तथा ऋतु संहार, रामायण, महाभारत आदि की घटनाओं को चित्रित किया। ''अभिसारिका'', ''श्रीराम व मायामृग'', ''बुद्ध व सुजाता'' आदि भारतीय प्रभाव युक्त उल्लेखनीय चित्र हैं।

1901–02 के लगभग अवनीन्द्र बाबू ने जापानी कलाकारों ''ताइकान'' व ''हिंसिदा'' के जो कि ठाकुर परिवार के अतिथि के रूप में कलकत्ता आए थे, उनके कार्य व शैली का

परिचय पाया एवं जापानी प्रक्षालन (वॉश) पद्धति को सीखा एवं स्वयं भी इस शैली में अनेकों प्रयोग किये। ''उमरखय्याम'', ''विरही यक्ष'' व ''गणेश जननी'' इसी प्रक्षालन पद्धति में बने महत्वपूर्ण चित्र है।

नये प्रयोगों के साथ–साथ वे परम्परागत भारतीय शैली में भी कार्य करते रहे। उन्होंने अन्य भारतीय कलाकारों के साथ अजन्ता, ऐलोरा, बाघ आदि गुफाओं की यात्रा की एवं अजन्ता के अनेक उत्कृष्ट चित्रों की अनुकृतियाँ भी बनाई। 1901 से 1905 के बीच बने चित्रों में ''बिल्डिग आफ ताज'', ''शाहजहाँ के अन्तिम दिन'' आदि चित्र मुग़ल संयोजन, रंगों व अलंकरण को प्रस्तुत करते हैं। 1905 में इन्होंने बंगाल विभाजन के विरूद्ध आरम्भ हुए आन्दोलन से प्रेरित होकर ''भारत माता'' शीर्षक चित्र बनाया जो एक अद्‌भुत चित्र है।

1907 ई. में अवनीन्द्रनाथ ने अपने बड़े भाई श्री गगनेन्द्रनाथ के साथ ''इन्डियन सोसायटी ऑफ ओरिएन्टल आर्ट'' की स्थापना की जिसके द्वारा पूर्वी कला मूल्यों एवं आधुनिक भारतीय कला में नई चेतना जागृत हुई। इसके कार्यक्रमों में तत्कालीन भारतीय कलाकारों के चित्रों के साथ–साथ पाश्चात्य जापानी कलाकारों की कृतियों की भी प्रदर्शनियाँ हुई। अवनीन्द्र बाबू अपनी कला के माध्यम से जीवन व समाज के सभी पक्षों से जुड़े रहे। पौराणिक, धार्मिक व साहित्यिक विषयों के साथ–साथ इन्होंने दृश्यचित्र, पशु पक्षियों के चित्र, व्यक्ति चित्र व दैनिक जीवन से सम्बन्धित चित्र भी बनाए जिनमें ''देवदासी'', ''कजरी'', ''सूर्यपूजा'' व बंगाली रंगमंच के अभिनेता व अभिनेत्रियों के चित्र महत्वपूर्ण हैं।

1920–1926 के वर्षों में इन्होंने पेस्टल रंगों का भी सशक्त प्रयोग किया, पेस्टल रंगो में बने गांधी, टैगोर, सी. एफ. एन्ड्रयूज के व्यक्ति चित्र अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। ''आलमगीर'', ''नूरजहाँ'', औरंगजेब'' आदि इस युग के महत्वपूर्ण चित्र हैं। बाद के वर्षों में उनके चित्रों में ''लैला–मजनू'' श्रृंखला चित्र ''कवि कनकन चण्डी'' व ''कृष्ण मंगल'' श्रृंखला के चित्र भी विशेष उल्लेखनीय है। 1941 में अपने चाचा ''विश्वकवि रवीन्द्रनाथ का महाप्रयाण'' चित्रण करने के बाद अपनी तुलिका को लगभग त्याग दिया।

अवनीन्द्रनाथ एक अच्छे कलाकार होने के साथ–साथ एक आदर्श शिक्षक, कला समालोचक, साहित्यकार, रंगमंच

चित्र संख्या–5 भारत माता

अभिनेता, संगीतकार, शिल्पी आदि विविध प्रतिभाओं के धनी भी थे। भारतीय चित्रकला के पुनः उत्थान में उनका योगदान अविस्मरणीय है।

भारत माता चित्र अवनीन्द्र बाबू ने 1905 ई. में बनाया। यह इनका नई बंगाल शैली का प्रथम प्रतिनिधि चित्र है। (चित्र संख्या–5) यह चित्र बंगाल विभाजन के विरूद्ध हुए आन्दोलनों से प्रेरित था। वॉश पद्धति में बने चित्र में कोमल रंगों एवं रेखाओं का प्रयोग हुआ है। भारतमाता को चतुर्भुजी रूप में प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। सपाट धरातल में बने चित्र के चारों ओर मुग़ल हाशिये का अंकन हुआ है।

ताज को देखते हुए शाहजहाँ का चित्र मुग़ल शैली के प्रभाव को प्रस्तुत करता है। विशेष रूप से स्थापत्य एवं उसके आलेखन में मुग़ल लघुचित्रण शैली का प्रभाव है। मानवाकृतियों

को सरल शैली में अंकित किया गया है। रंगों का सीमित प्रयोग बंगाल शैली की विशेषता है।

यामिनी राय :– यामिनी राय का जन्म बाँकुरा (पश्चिम बंगाल) में 1887 ई. में हुआ उन्होंने कलकत्ता के गर्वमेन्ट स्कूल ऑफ आर्ट में कला दीक्षा ली। आरम्भ में उन्होंने पाश्चात्य शैली पर आधारित चित्र बनाए, बाद में बंगाल स्कूल से प्रभावित हुए परंतु उससे भी संतुष्ट न होने पर बंगाल की लोक कला व बिहार के पट चित्रण से प्रभावित हुए। इन्होंने ग्रामीण लोक कलाओं से प्रेरणा ग्रहण की। कुम्हारों, बुनकरों, गुड़िया व खिलौने बनाने वालों से प्रेरित हो अपना कला कार्य करते रहे। इस प्रकार यामिनी राय एक प्रयोगकर्ता के रूप में हमारे सम्मुख प्रकट होते हैं। उन्होंने पुस्तक चित्रण, भित्ति चित्रण व पट चित्रण आदि सभी प्रकार की संरचनाएँ की। उनके चित्रों में आकृतियाँ अलंकारिक हैं, आंखें बड़ी नुकीली कानों तक लम्बी बनी है। सरल व प्रभावपूर्ण रंगयोजना स्पष्ट रूप रेखा व संयोजन की सरलता इनके चित्रों की प्रमुख विशेषताएं हैं।

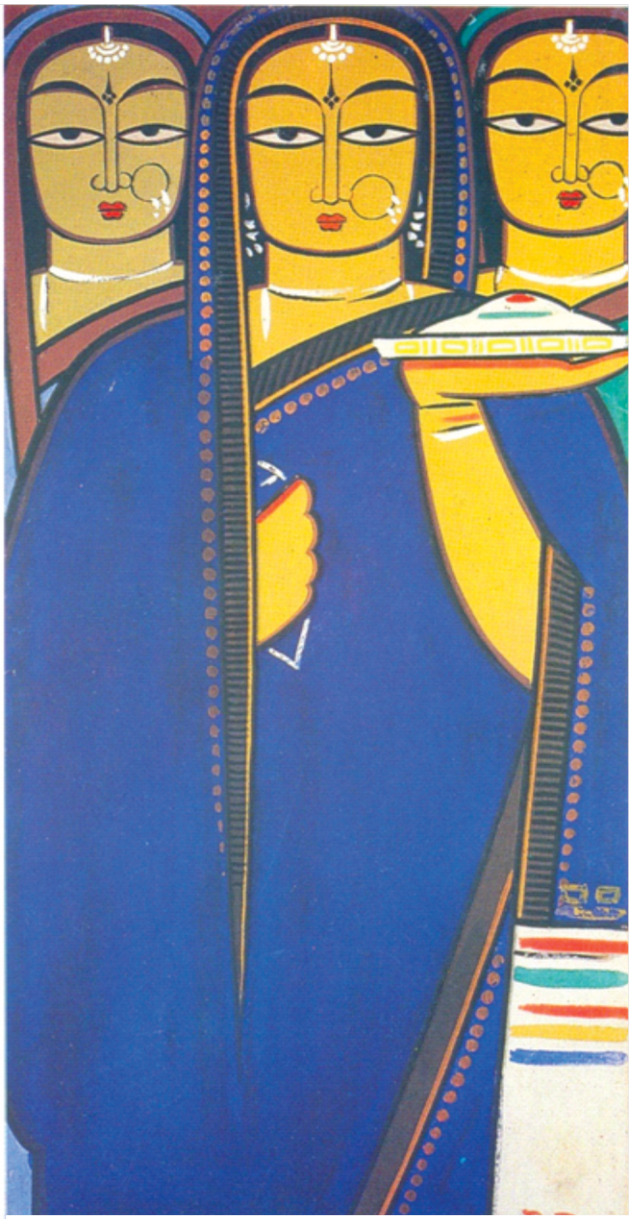

चित्र संख्या–6 तीन पुजारिनें

यामिनी राय ने लोक कला के प्रतीकों को ग्रहण कर उन्हें नवीन योजना में अलंकृत किया। उनके ग्राम्य जीवन संबंधी चित्र उनकी कला के उत्कृष्ट नमूने कहे जा सकते हैं। उन्होंने लोक कला के विषयों के अतिरिक्त पौराणिक व धार्मिक विषयों पर आधारित चित्र भी बनाए। उन्होंने टैम्परा रंगों द्वारा कपड़े, कागज़, पट्टे व चटाई आदि पर नवीन प्रयोग किये। उनकी दृष्टि हमेशा अनुसंधानात्मक रही, उन्होंने चमकदार रंगों, सरल आकारों का प्रयोग किया। अधिकांश चित्रों की रेखाएं मोटी एवं गतिमय है। बाद में इन्होंने लकड़ी की मूर्तियां भी बनाई, उनके चित्रों में ईसा मसीह व शृंगार आदि उत्तम है।

यामिनी राय की धार्मिक भावना, सरल प्रवृत्ति, लोकदृष्टि व रंगों के शुद्ध दृष्टिकोण ने बाद के कलाकारों को बहुत प्रभावित किया, 1969 में इनकी मृत्यु हुई। यामिनीराय के प्रमुख चित्र तीन पुजारिनें, सांथाल नृत्य, अन्तिम भोज, बिल्ली व केकड़ा, बिल्ली व मछली आदि हैं।

तीन पुजारिनें यामिनी राय का सर्वाधिक प्रशंसित एवं उल्लेखनीय चित्र है। सरल, सीधी, सशक्त मोटी रेखाएँ व सरल आकार चित्र की विशेषता है। नीले व पीले चमकदार रंग चित्र को आकर्षक बनाते है। कम रेखाओं में आकृतियों का अंकन नाक से कान तक जाती आँखें सीधी, नाक व छोटे होंठ सौम्यता का दर्शन कराते हैं। (चित्र संख्या–6)

कृष्ण एवं बलराम चित्र भी लोक कला के सरल आकारों, रेखाओं एवं आलेखनों को प्रस्तुत करता आकर्षक चित्र है। द्विआयामी सपाट पृष्ठभूमि में लयात्मक गतिपूर्ण आकृतियाँ भी हैं। चित्र के रंग भी सुन्दर है।

अमृता शेरगिल :– अमृता शेरगिल का जन्म 1913

ई. में हंगरी की राजधानी बूडापेस्ट में हुआ था। उनके पिता भारतीय व माता हंगेरियन थी। उन्हें बाल्यकाल से ही चित्रकला में रूचि थी। 11 वर्ष की आयु में उन्होंने इटली में फ्लोरेंस की एक चित्रशाला में कला की शिक्षा ली। इसके बाद उन्होंने पेरिस की चित्रशालाओं में भी कला का ज्ञान प्राप्त किया। पेरिस में उन्होंने फ्रेंच इम्प्रेशनिस्ट कलाकारों की कृतियों को देखा व उनका अध्ययन किया। 1931 में उनके चित्रों की प्रदर्शनी पेरिस में हुई, जिसने इन्हें विश्व विख्यात बना दिया। 1934 ई. में ये भारत लौट आई और 'भारतीय लड़कियाँ' नामक चित्र पर ऑल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट सोसायटी की प्रदर्शनी में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। 1934 से 1937 तक उन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया व अजन्ता के भव्य चित्रों को देखकर भारतीय कला व जीवन से बहुत प्रभावित हुई। उन्होंने अजन्ता व पहाड़ी चित्रों की सरलता व रंगों की सपाट कोमलता व प्रतीकात्मकता को समझा। अमृता की कृतियों पर पॉल गोगाँ का भी बहुत प्रभाव देखने को मिलता है। गोगाँ की कृतियों में तहिती द्वीप सम्बन्धी चित्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। उसने वहाँ के हरे–भरे प्रदेश व स्त्री सौन्दर्य आदि को अंकित किया, उसी शैली को अपनाते हुए अमृता शेरगिल ने भारतीय विषयों के चित्र बनाए।

यद्यपि अमृता की समस्त शिक्षा विदेशी ढ़ंग से हुई थी लेकिन फिर भी वे भारतीय संस्कृति के बहुत निकट रही। उनके चित्रों में भारतीय कला की विशिष्ट तकनीक, रेखा की लय, छन्द व रंगों की चमक है। इनके चित्रों में लाल व पीले रंगों का सशक्त व आत्म अभिव्यंजक प्रयोग हुआ है।

अमृता के प्रमुख चित्रों में दक्षिण भारतीय ग्रामीण, पहाड़ी स्त्रियाँ, वधू का श्रृंगार, ब्रह्मचारी, तीन बहिनें, केले बेचने वाली, हल्दी पीसने वाली, कथा वाचक व लाल मिट्टी का हाथी आदि विशिष्ट हैं। तीन बहिनें नामक चित्र अमृता का एक प्रमुख चित्र है। आकृतियों, रंगों आदि में पॉल गोग्व का प्रभाव दिखाई देता है। पंजाब की वेशभूषा व संस्कृति को अमृता ने अत्यन्त सजीव रूप में प्रस्तुत किया है। वधू का श्रृंगार' चित्र अमृता की एक अन्य उल्लेखनीय कृति है। चित्र में सरल आकृतियों व धूमिल रंग योजना का प्रयोग है। भारत की लोक संस्कृति को भी चित्र में देखा जा सकता है।(चित्र संख्या 7)

महत्पपूर्ण बिन्दु

1. यह शैली अवनीन्द्र नाथ ठाकुर एवं ई.बी. हैवेल द्वारा विकसित की गई।

चित्र संख्या–7 वधु का श्रृंगार

2. शैली के प्रेरणा स्रोत अजन्ता, मुगल तथा राजस्थानी चित्र शैलियां थी।
3. शैली सरल, स्पष्ट एवं स्वाभाविकता पूर्ण है।
4. रेखाओं को महत्व मिला है।
5. हल्के कोमल रंगों का प्रयोग हुआ।
6. शैली के प्रमुख विषय भारतीय पौराणिक कथाएं, ऐतिहासिक गाथाएं, एवं सामाजिक जन जीवन सम्बन्धी रहे।
7. अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के प्रमुख शिष्य नन्दलाल बोस, असित कुमार हल्दार, के. वैंकटप्पा, शैलेन्द्र नाथ डे, शारदाचरण उकील आदि थे।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक

1. बंगाल शैली के प्रणेता का नाम बताइये।
2. बंगाल शैली के 3 प्रतिनिधि कलाकारों के नाम लिखिये।
3. भारत माता का चित्र किसके द्वारा बनाया गया?
4. बंगाल शैली के कलाकारों ने किस माध्यम में कार्य किया?

लघूत्तरात्मक

1. आनन्द कुमार स्वामी के बारे में बताइये।
2. रवीन्द्रनाथ ठाकुर की चित्रकला के बारे में संक्षेप में लिखिये।
3. यामिनी राय ने किस शैली को अपना आधार बनाया?
4. अमृता शेरगिल की आरम्भिक शिक्षा कहाँ हुई?

निबन्धात्मक

1. बंगाल शैली की कलागत विशेषताओं के बारे में लिखिए।
2. अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का भारतीय कला में क्या योगदान रहा? स्पष्ट कीजिये।

अध्याय–7

आधुनिक कला व कलाकार

1940 के दशक में भारतीय कला जगत में बंगाल शैली की पारम्परिक रूढ़िवादिता के विरोध में अनेक कलाकारों ने पाश्चात्य नव विचारों से प्रभावित होकर अपने को स्वतन्त्र रूप से नये माध्यमों एवं नई शैलियों में अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से नये कला संगठनों का गठन किया। जिनमें कलकत्ता कला समूह, बम्बई पैग समूह, शिल्पी चक्र आदि महत्वूपर्ण रहे।

कलकत्ता कला समूह–

कलकत्ता कला समूह की स्थापना सन 1943 में प्रदोष दास गुप्ता एवं निरोद मजूमदार द्वारा की गई। प्रदोष दास गुप्ता ने ब्रिटेन में मूर्तिकला का अध्ययन किया था वहां 'लन्दन ग्रुप' नामक सक्रिय संगठन से प्रभावित हुए एवं भारत आकर कलकत्ता कला समूह की स्थापना की। इस समूह में निरोद मजूमदार, परितोष सेन, गोपाल घोष, हेमन्त मिश्रा, प्राणकृष्ण पाल, सुनील माधव सेन की सहभागिता हुई समूह द्वारा पुराने विश्वासों, धारणाओं, अभिव्यक्ति के माध्यमों को जड़ से उखाड़ने की कोशिश की गई और नये रूपाकारों में नई कला की भाषा को आरम्भ किया गया। इस नई दृश्यात्मक भाषा में नये बौद्धिक परिवेश की भी झलक दिखाई देती है।

कलकत्ता कला समूह के सदस्यों की शैलियों पर आरम्भ में पिकासो, ब्राक, मातिस, हेनरी मूर आदि पाश्चात्य कलाकारों का प्रभाव अधिक रहा। बाद में इन कलाकारों ने निजी शैलियां विकसित की। समूह को वामपंथी लेखकों व कवियों का भी समर्थन प्राप्त हुआ। समूह की प्रमुख प्रर्दशनियां 1943, 1944, 1945, 1947 एवं 1953 में आयोजित हुई जिन्हें बहुत प्रशंसा प्राप्त हुई और इन प्रदर्शनियों ने उस समय के कला समीक्षकों एवं अन्य कलाकारों को भी प्रभावित किया जिससे और नये कला संगठन उदित हुए। यह समूह लगभग एक दशक 1943 से 1953 तक अखिल भारतीय स्तर पर आंदोलन चलाने में सक्रिय रहा किन्तु 1953 के बाद इसकी सक्रियता कम हो गई एवं कलाकारों ने अपने निजी स्तर पर कार्य करने आरम्भ कर दिये। भारत में नये अन्तर्राष्ट्रीय कला विचारों को विकसित करने में इस समूह का विशेष योगदान रहा।

प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप–

1940 का दशक भारतीय कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। इस समय एक ओर बंगाल शैली के कलाकार कार्य कर रहे थे। साथ ही अनेक कलाकार पाश्चात्य प्रभाव में कार्य कर रहे थे। इसी दशक में मुम्बई के कला जगत में भी नवीन प्रयोग आरम्भ हुए एवं 1947 में सूजा, रजा एवं आरा नामक कलाकारों ने एक ग्रुप बनाने की योजना बनाई जो प्राचीन परम्पराओं नियमों व बंधनों से मुक्त हो, इसके लिए उन्होंने प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप (पैग) के नाम से एक संगठन बनाया इस समूह में 6 कलाकार थे, आरा, सूजा, रजा, बाकरे, गाड़े एवं हुसैन। इस समूह के कलाकारों ने अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए पत्र–पत्रिकाओं में लेख भी छपवाए। 1949 में इस समूह की प्रथम प्रदर्शनी हुई जिसने कलाकारों, समीक्षकों एवं सामान्य लोगों का भी ध्यान आकर्षित किया। हार्टवेल, रूडीलीडेन, हरमन ग्वेत्स आदि कला समीक्षकों एवं अनेक अन्य पश्चात्य संग्राहकों ने इनकी कृतियाँ खरीदी जिससे इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त हुई। इस समूह के सदस्यों ने निरन्तर विदेश यात्राएँ भी की जिससे वे अन्तर्राष्ट्रीय कला आन्दोलनों से परिचित एवं प्रभावित हुए। इन

कलाकारों ने ज्यामितीय आकारों व तेज रंगों में विविध सामाजिक विषयों एवं घटनाओं को चित्रित किया। प्रत्येक कलाकार की अपनी एक निजी शैली रही।

1949 के बाद इस समूह में कुछ नये सदस्य जोड़े गये जो वी. एस. गायतोंडे, कृष्ण, खन्ना, अकबर पदमसी, तैयब मेहता एवं राम कुमार थे। प्रायः इन कलाकारों पर पिकासो, मातिस व अन्य पाश्चात्य कलाकारों का प्रभाव था। इस समूह के कलाकारों ने भारतीय कला की प्रगतिशील धारा का प्रतिनिधित्व किया। प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप ने कला बाजार में कलाकारों को स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया। आज भी इस समूह के कलाकारों के चित्र बहुत ऊँचे दामों पर बिकते हैं। 1953 के बाद इस समूह की सामूहिक गतिविधियाँ कम हो गई एवं कलाकारों ने व्यक्तिगत स्तर पर कार्य करने आरम्भ कर दिये।

शिल्पी चक्र –

''कला जीवन को प्रदीप्त करती है'' के आदर्श वाक्य के साथ 25 मार्च 1949 को 'दिल्ली शिल्पी चक्र' की शुरूआत की गई। बी.सी. सान्याल और धनराज भगत ने 'दिल्ली शिल्पी चक्र' की स्थापना की। अन्य कलाकार जो बाद में शिल्पी चक्र के सदस्य बने उनमें थे : हरकृष्ण लाल, के. सी. आर्यन, दयमंती चावला, दिनकर कौशिक, जया अप्पास्वामी, श्रीनिवास पंडित और ब्रज मोहन भानोत। चक्र ने अपने घोषणा–पत्र में घोषित किया : ''समूह समझता है कि कला को एक गतिविधि के रूप में जीवन से अलग नहीं किया जाना चाहिए। एक राष्ट्र की कला का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो राष्ट्र के लोगों की आत्मा की अभिव्यक्ति हो एवं उसकी उन्नति की प्रक्रिया में योगदान करे।'' समूह ने घोषित किया कि कला के प्रचार–प्रसार के लिए सभी कलाकारों को साथ मिलकर कार्य करना पड़ेगा ताकि देश की राष्ट्रीय संस्कृति और विरासत को संरक्षण और प्रगति मिल सके। दिल्ली शिल्पी चक्र के सदस्य केवल कार्यरत कलाकार ही थे परन्तु वे सभी लेखक, कवि, नाटककार, कला–आलोचक, संगीतकार भी थे जिनके विचार 'चक्र' से मिलते–जुलते थे, उनका भी संस्था की गतिविधियों से जुडने पर स्वागत किया गया।

समकालीन कला के विकास के लिए, दिल्ली शिल्पी चक्र के सदस्यों ने 1949 के आस–पास चाँदनी चौक, करोल बाग, विश्वविद्यालय परिसर सरीखे स्थानों पर अपने कार्यों की प्रदर्शनी आयोजित की। चक्र द्वारा आयोजित संगोष्ठियों, प्रदर्शनियों को अच्छी प्रतिक्रिया मिली। व्यंग्य चित्रकार 'शंकर पिल्लै' ने मैसोनिक हॉल में कार्टून, ड्रॉईंग पर सत्र आयोजित किया। धीरे–धीरे 'चक्र' का विस्तार हुआ। कई छात्रों, कलाकारों ने इसकी सदस्यता ली। इनमें कुछ प्रमुख नाम हैं : देवयानी कृष्ण, सतीश गुजराल, रामकुमार, जे. स्वामीनाथन, रामेश्वर बरूटा, राजेश मेहरा, विशम्भर कुमार, जगमोहन चोपड़ा, अनुपम सूद, परमजीत सिंह और अर्पिता सिंह।

'चक्र' ने एक ऐसी एजेंसी के निर्माण का प्रयास किया जिसके माध्यम से इसके सदस्यों द्वारा कलाकृतियों की बिक्री का आयोजन व्यावसायिक आधार पर किया जा सके। अतः मैसर्स धूमीमल धरमदास के श्री रामबाबू की सहायता से 7 अक्टूबर 1949 को भारत में अपनी ही तरह की पहली दीर्घा का उद्घाटन कनॉट प्लेस में इसके अहाते में किया गया। कला के प्रचार–प्रसार और कलाकारों के हितों की ओर शिल्पी चक्र का यह महत्वपूर्ण प्रयास था।

दिल्ली शिल्पी चक्र का मुख्य उद्देश्य था : प्रभावी गतिविधियों और कार्यक्रमों द्वारा कार्यरत कला संस्थाओं की कार्यप्रणाली की जाँच करना। कार्य की गुणवत्ता को बढ़ाने के प्रयास किये गए थे। कला कृतियों को कलाकारों के सामने इस उद्देश्य से प्रदर्शित किया गया ताकि उन पर खुलकर चर्चा हो सके। चक्र ने सदैव अपने उस घोषित विश्वास के साथ कार्य किया कि कला और संस्कृति का संबंध सभी लोगों से है तथा यह भी कि सृजनात्मक कला का संदेश लोगों तक पहुँचाने में एक कलाकार की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। लोगों में बढ़ती जागरूकता से कलाकार का हित ही होता है।

चक्र के कलाकारों ने नए उत्साह के साथ और अभिव्यक्ति की नई शैलियों के साथ युवा कलाकारों को आकर्षित किया। परन्तु चक्र के बहुत से कलाकार अपनी कला को पारम्परिक भारतीय कला से जोड़ना चाहते थे। उन्होंने अपने कार्यों में सामाजिक यथार्थों को उजागर किया। अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्ति में सामाजिक महत्त्व प्रतिपादित करते हुए दिल्ली शिल्पी चक्र के कलाकारों का योगदान भारतीय समकालीन कला के विकास में बहुत ही सार्थक रहा है।

प्रमुख आधुनिक कलाकार :–

भावेश चंद्र सान्याल – (1904–2003) भावेश चंद्र सान्याल का जन्म डिब्रूगढ़ (असम) में 1904 में हुआ था। सान्याल परिवार मूल रूप से श्रीरामपुर (पश्चिम बंगाल) का रहने वाला था। श्रीरामपुर कॉलेज में पढ़ाई के बाद सान्याल महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन से भी जुड़े। 1923 ई. में चित्रकार बनने की इच्छा उन्हें कोलकाता के गवर्नमेंट स्कूल ऑफ आर्ट में ले गई। 1929 में सान्याल लाहौर चले आए और वहाँ 18 साल तक रहे। वहाँ मेयो स्कूल में पढ़ाया और फिर अपना स्टूडियो लाहौर ललित कला विद्यालय स्थापित किया। जो कला संस्कृति की गतिविधियों का केन्द्र बन गया एवं इसमें अनेक प्रदर्शनियों आदि का आयोजन भी किया गया।

1947 ई. में भारत विभाजन के बाद ये दिल्ली आ गये और स्वतन्त्र रूप से कुछ कलाकारों को लेकर 'दिल्ली शिल्पी चक्र' नामक संस्था बनाई। सान्याल ने 'दिल्ली पॉलिटेक्निक' में ललित कला संकाय में प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया। सान्याल ने अमेरिका, कनाड़ा, यूरोप, जापान आदि देशों की यात्राएँ की एवं राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में भाग लिया।

सान्याल के चित्रों में परम्परा एवं आधुनिकता के बीच आकर्षक सम्बन्ध दिखाई देता है।सान्याल ने चित्र एवं मूर्ति दोनों विधाओं में अनेक माध्यमों में कार्य किया। इनके प्रमुख चित्रों में गोल मार्केट के भिखारी, शिव मुखाकृति, राजस्थानी महिला, आत्म चित्र, कांगड़ा की स्त्री एवं अनेक दृश्य चित्र है।

कांगड़ा की स्त्री – यह चित्र सरलीकृत आकारों में चमकीले रंगों में बना है। स्त्री को प्राथमिक रंगों लाल पीले व नीले रंग में बनाया है। चित्र में प्रयुक्त, अन्य रंग नारंगी व हरा आदि भी ताजगीपूर्ण प्रभाव को उत्पन्न करते हैं। (चित्र संख्या–1)

नारायण श्रीधर बेन्द्रे (1910–1992 ई.) :– नारायण श्रीधर बेन्द्रे का जन्म 21 अगस्त 1910 में मध्यप्रदेश के इन्दौर में हुआ। उन्होंने 1933 ई. में आगरा यूनिवर्सिटी से स्नातक शिक्षा ग्रहण की उन्होंने कला की शिक्षा प्रसिद्ध गुरू श्री डी. डी. देवलालकर से प्राप्त की। 1934 ई. में उन्होंने बम्बई में चित्रकला में डिप्लोमा ग्रहण किया।

1936 से 1939 ई. तक उन्होंने कश्मीर में विजिटर्स ब्यूरो में कार्य किया एवं कश्मीर घाटी के अनेक चित्र व रेखाचित्र बनाये। उसके बाद उन्होंने बम्बई में एक स्वतन्त्र कलाकार के रूप में कार्य आरम्भ किया व अनेक व्यक्ति चित्र, भित्ति चित्र व कथाओं पर दृष्टान्त चित्र बनाए। इसी समय उन्होंने अनेक शिष्यों को कला शिक्षा भी दी। मद्रास में उन्होंने एक फिल्म में कला निर्देशन का कार्य भी किया। बेन्द्रे ने 1941 ई. में बम्बई आर्ट सोसायटी का स्वर्ण पदक प्राप्त किया। 1946 ई. में आर्ट सोसायटी ऑफ इण्डिया की पटेल ट्रॉफी प्राप्त की। बाद में वे इस सोसायटी के अध्यक्ष भी चुने गये।

1943 ई. में उन्होंने मुम्बई में अपनी पहली एकल प्रदर्शनी की। 1947–48 ई. में उन्होंने अमेरिका फ्रान्स, हॉलैण्ड, बैल्जियम आदि की यात्रा की व पाश्चात्य कला के नये पुराने सभी महान कलाकारों के चित्रों का अध्ययन किया। न्यूयार्क में उन्होंने छापाकला (ग्राफिक) में भी कार्य किया।

बाद में बम्बई लौटने पर उन्होंने 1950 ई. में पुनः एक प्रदर्शनी की। इसके बाद शीघ्र ही वे बड़ौदा आ गये व एम. एस. विश्वविद्यालय में अध्यापन कराने लगे। बाद में विभाग के अध्यक्ष रहे। बेन्द्रे के चित्रों में जल रंग में दृश्य चित्र विशेष आकर्षक रहे। जिनमें तूलिका का भी सशक्त प्रयोग है। यद्यपि

चित्र संख्या–1 कांगड़ा की स्त्री

चित्र संख्या–2 फूल बेचने वाली

उन्होंने अनेक आकारों में चित्र बनाए किन्तु रंगों का सभी चित्रों में विशेष महत्व रहा। बेन्द्रे के प्रमुख चित्र शृंगार, सूर्यमुखी, फूल बेचने वाली आदि हैं। फूल बेचने वाली स्त्रियाँ चित्र में बेन्द्रे ने अत्यन्त आकर्षक एवं चमकदार रंगों में स्त्रियों का अंकन किया है जिनके सामने कमल के फूलों की टोकरियाँ पड़ी है। स्त्रियों की मुद्राएँ एवं भंगिमाएँ अत्यन्त सहज है। वे आपस में बातचीत करती मालूम होती हैं। (चित्र संख्या–2)

के. के. हैब्बर (1912–1996 ई.) –कांटिगेरी कृष्ण हैब्बर का जन्म 1912 ई. में दक्षिण में कांटिगरी नामक गाँव में हुआ। गांव के सुन्दर वातावरण दृश्यों उत्सवों, नृत्यों व गानों तथा खेल व खिलौनों के रूप व रंग आदि ने उन्हें बाल्यकाल से ही बहुत प्रभावित किया जिसका इनकी कला पर बहुत प्रभाव पड़ा। बचपन में ही उन्होंने आकर्षक रंगों में गांव के उत्सवों को चित्रित किया।

बाद में उन्होंने सर जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट मुम्बई में कला की शिक्षा ली एवं पश्चिमी शैली के परिचय में आए। उससे सन्तुष्ट न होने पर भारतीय राजपूत मुग़ल, अजन्ता व बाघ के चित्रों का अध्ययन किया व उनसे प्रभावित हुए। उन्होंने गांव के जीवन से सम्बन्धित दृश्यों को अपनी सशक्त रेखाओं द्वारा अंकित किया। मुम्बई में रहते हुए भी उन्होंने मजदूर, मछुआरों, फल बेचने वालों आदि के चित्र बनाए।

हैब्बर ने यूरोप की यात्रा भी की एवं पाश्चात्य आधुनिक कला का अध्ययन किया। इसके प्रभाव से उन्होंने भारतीयता को पाश्चात्य शैली में अंकित किया एवं मुर्गों की लड़ाई, पनघट, साधु एवं हाट बाजार आदि चित्र इसके उदाहरण है। अत्यन्त लयात्मक व गत्यात्मक रेखाएं विविध नृत्य मुद्राओं में आकृतियों का अंकन हैब्बर के चित्रों की विशेषताएं हैं। हैब्बर ने 1956 ई. से 1958 ई. तक लगातार तीन वर्ष तक ललित कला अकादमी का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किया। 1976 ई. में वे अकादमी के रत्न सदस्य बने एवं 1989 ई. में भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया।

चित्र संख्या–3 मुर्गों की लडाई

प्रमुख चित्र :–

मुर्गों की लड़ाई– मुर्गों की लड़ाई हैब्बर की नवीन प्रयोगवादी शैली को प्रस्तुत करता है। चित्र में एक मुर्गे ने दूसरे मुर्गे को घायल कर दिया है। घायल मुर्गे के शरीर से रक्त बह रहा है एवं उसके कुछ पंख टूट गये हैं। हल्के रंगों से बने मुर्गों के पीछे कलाकार ने लड़ाई को देखते हुए मनुष्यों के समूह को गहरे रंगों एवं रेखाओं में अंकित किया है। चित्र मानव समाज की स्थिति को व्यंग्य रूप में भी प्रस्तुत करता है। (चित्र संख्या–3)

के. जी. सुब्रमण्यन् (1924–2016 ई.) – के. जी. सुब्रमण्यन् का 5 फरवरी, 1924 ई. को केरल में जन्म हुआ। उनकी आरम्भिक शिक्षा–दीक्षा प्रेसीडेंसी कॉलेज, चेन्नई में हुई। कला में रूचि. होने के कारण 1944 ई. में कला भवन, शांति निकेतन में प्रवेश लिया। शांति निकेतन में वह विनोद बिहारी मुखर्जी के प्रिय छात्र रहे। चालीस के दशक में स्वतंत्रता आंदोलन में उन्होंने सक्रिय हिस्सेदारी की। उनका गांधीवादी आदर्शों में विश्वास था। उन्होंने देश–विदेश में अनेक एकल व समूह प्रदर्शनियों में भाग लिया। 1951 ई. से के. जी. ने बड़ौदा में अध्यायपन का कार्य भी किया एवं लम्बे समय तक एम. एस. विश्वविद्यालय बडौदा के कला विभाग में अध्यापन के बाद शांति निकेतन से भी संबद्ध रहे। उन्होंने कला सम्बन्धी लेखन भी किया। 1978 ई. में उनके कला संबंधी लेखों का संग्रह 'मूविंग फोकस' ललित कला अकादमी द्वारा प्रकाशित किया गया। उनकी एक अन्य चर्चित पुस्तक : 'द लिविंग ट्रैडीशन' रही जिसमें उनके कला सम्बन्धी विचार प्राप्त होते हैं। के. जी. ने पेंटिंग के अलावा काष्ठ, फाइबर, सीमेंट, टेराकोटा में भी काम किया। उन्होंने म्यूरल बनाए –खिलौने भी बनाए। उनकी हस्तशिल्प के विकास में भी गहरी दिलचस्पी रही। उन्हें मध्यप्रदेश का प्रतिष्ठित पुरस्कार 'कालिदास सम्मान' – 1982 ई. में प्राप्त हुआ। विनोद कुमार के अनुसार, ''सुब्रमण्यन् हर चीज में सामंजस्य पैदा करते हैं– चाहे कोई रेखांकन हो, चाहे कैनवास का इस्तेमाल हो, चाहे भित्तिचित्र हो, चाहे पुस्तक की

चित्र संख्या–4 युवतियां

चित्र सज्जा हो या खिलौने हों।'' 2003 में राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय ने पुनरावलोकन प्रदर्शनी आयोजित की। के. जी. ने अपने रचनात्मक जीवन में अमूर्त शैली में भी अनेक प्रयोग किये। उनके टेराकोटा रिलीफ पेंटिंग, ग्लास पेंटिंग एवं एक्रिलिक शीट पर बने कार्य भी महत्वपूर्ण है।

प्रमुख चित्र :–

युवतियाँ – के. जी. ने प्रायः अमूर्त ज्यामितीय शैली का प्रयोग करते हुए आकृतियों को संयोजित किया है। एक ही रंग की अनेक तानों का प्रयोग उनके अनेक चित्रों में दिखाई देता है। इनके युवतियाँ चित्र में भी एक रंगीय तानों का एवं ज्यामितीय सरल आकारों का प्रयोग हुआ है। (चित्र संख्या–4)

जगदीश स्वामीनाथन (1928–1994) – जे. स्वामीनाथन का जन्म 21 जून, 1928 को शिमला मे हुआ था। वे पचास के दशक के मध्य तक साम्यवादी दल से जुड़े रहे। उन्होंने पत्रकार और कला आलोचक के रूप भी में बरसों काम किया। दिल्ली और वारसा (पोलैंड) में कला की पढ़ाई की। 1963 में स्वामीनाथन ने 'ग्रुप 1890' की स्थापना की जिसने भारतीय कला जगत में काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। पंडित नेहरू ने इस ग्रुप की प्रदर्शनी का उद्घाटन किया था एवं मेक्सिको के प्रख्यात कवि और राजनयिक आक्टेवियो पाज ने प्रदर्शनी का कैटलॉग लिखा था। स्वामीनाथन ने 'कांट्रा' नामक पत्रिका का सम्पादन किया जो ऐतिहासिक महत्व की कला पत्रिका रही। भारत में आयोजित पहली त्रैवार्षिकी प्रदर्शनी (1968) में स्वामीनाथन के काम को बहुत पसन्द किया गया। 1968 में ही उन्हें नेहरू फैलोशिप मिली। स्वामीनाथन कला के संगठन पक्ष में भी काफी सक्रिय रहे। 1969 में साओ पाओलो द्वैवार्षिक की जूरी के सदस्य भी रहे। 1982 में भोपाल में 'रूपंकर' (भारत भवन) की स्थापना की जिसकी खास बात यह है कि आधुनिक कला और आदिवासी कला को वहाँ एक साथ देखा जा सकता है। स्वामीनाथन दिल्ली और भोपाल में रहकर काम करते रहे। अपनी कला अभिव्यक्ति के बारे में 1978 में खुद स्वामीनाथन ने अच्छी टिप्पणी की थी : '' इस अभिव्यक्ति के पीछे शायद बचपन में पहाड़ों के बीच पलने और बड़े होने की अनुभूति है। तकनीक के लिहाज से पेंटिंग –स्पेस में मैं क्लासिकी ज्यामिति का प्रयोग नहीं करता, बल्कि वक्रदेश की धारणा का प्रयोग करता हूँ जिसमें वृक्ष, पर्वत, पक्षी की परछाईं –सब अपना–अपना देश–काल निर्धारित करते हैं। फिर भी वे दो आयामी कैनवास की पूर्णता को भंग नहीं करते। यह धारणा दार्शनिक रूप से मेरी आध्यात्मिक प्रवृत्ति के भी निकट लगती है और मुझे अपने सांस्कृतिक अतीत से जोड़ देती है।'' स्वामीनाथन के चित्रों की रंग योजना बहुत आकर्षक रही एवं रेखाएँ कोमल हैं। जैसा कि उनके चित्र संयोजन में पीले व नारंगी तानों का मधुर प्रयोग हुआ है। ज्यामितीय रूप से बने पर्वतनुमा आकारों में स्वामीनाथन ने प्रायः छोटे से पक्षी का अंकन किया हैं। (चित्र संख्या–5)

ए. रामचन्द्रन (1935) – समकालीन भारतीय कला के एक सम्मानित कलाकार रामचन्द्रन का जन्म 1935 में केरल में हुआ। केरल विश्वविद्यालय से मलयालम साहित्य में एम.ए.

चित्र संख्या–5 'संयोजन'

करने के बाद चित्रकला में रूचि होने के कारण शन्ति निकेतन में प्रवेश लेकर कला में डिप्लोमा प्राप्त किया। वहाँ नन्दलाल बोस, विनोद बिहारी मुखर्जी व रामकिकंर बैज आदि के सानिध्य में प्रशिक्षण प्राप्त किया। अध्ययन के बाद दिल्ली आकर जामिया मिलिया में अध्यापन कार्य किया। रामचन्द्रन ने चित्रकला, म्यूरल, मूर्तिशिल्प, रेखांकन, प्रिंट मेकिंग, जलरंग आदि सभी माध्यमों में कार्य किया। इन्होंने बच्चों के लिए पुस्तकें लिखीं एवं चित्रित की। अनेक राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय

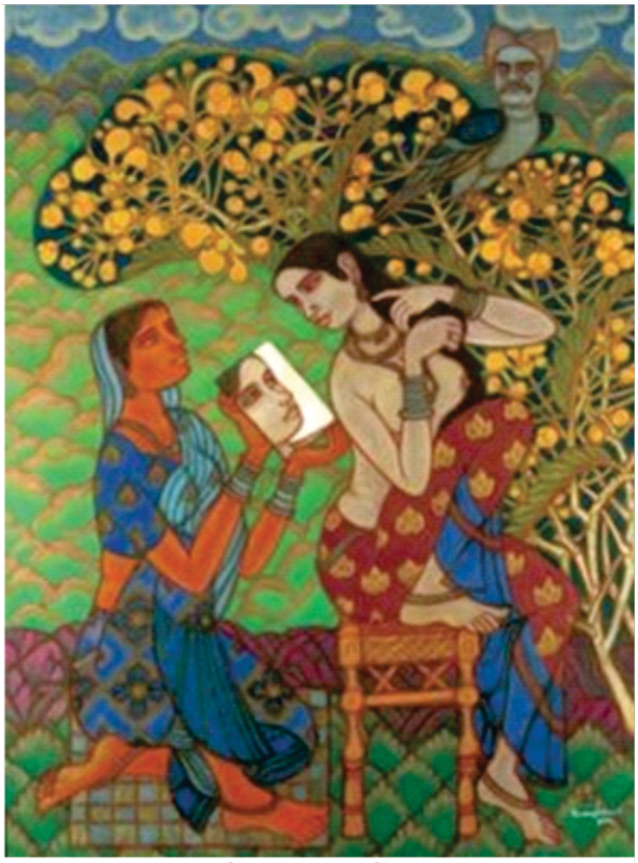

चित्र संख्या–6 नायिका

प्रदर्शनियों में रामचन्द्रन के चित्र प्रदर्शित हुए एवं उन्हें अनेक पुरस्कार मिले। उन्हें ललित कला अकादमी का रत्न सदस्य भी बनाया गया। रामचन्द्रन ने भारतीय पौराणिक कथाओं पर अनेक चित्र बनाये। इनके अतिरिक्त सामान्य जन जीवन के अनेक पक्षों को भी सहजता से अंकित किया। काली पूजा, ययाति, यादवों का अन्त, उर्वशी आदि इनके प्रसिद्ध चित्र हैं।

कमल सरोवर – रामचन्द्रन का एक आकर्षक चित्र है। चित्र में नीले, हल्के पीले व सफेद रंगों का प्रयोग हुआ। कमल के फूलों व पत्तों को कोमल रेखाओं से उभारा गया है। फूलों व पत्तों के बीच तितली, झीगुंर व अन्य अनेक छोटे जीव–जन्तुओं का अंकन चित्र को आलंकारिक बनाता है। रामचन्द्रन ने मानवाकृतियों को सजीव व आकर्षक, आलंकारिक रूपों में बनाया है। नायिका चित्र में श्रृंगार करती नायिका व सखी को सुन्दर रूप में बनाया है। अग्रभूमि व पृष्ठभूमि को आलेखनात्मक रूप में हरे रंगों की तानों में बनाया है। वृक्ष की पत्तियाँ एवं फूल भी आलंकारिक रूप से बनाए गये हैं। (चित्र संख्या–6)

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप की स्थापना 1947 में सूजा, रजा, आरा, हुसैन, बाकरे व गोड़ द्वारा की गई।
2. शिल्पी चक्र की स्थापना बी.सी. सान्याल द्वारा 1949 में दिल्ली में की गई।
3. कलकत्ता कलाकार समूह प्रदोष दास गुप्ता एवं निरोद मजूमदार द्वारा 1943 में स्थापित किया गया।
4. इन कला समूहों ने भारतीय कलाकारों को सांगठनिक रूप से नये प्रयोग करने के लिये प्रेरित किया।

अभ्यासार्थ प्रश्न :–

अति लघूत्तरात्मक

1. पैग का पूरा नाम बताइये।
2. शिल्पीचक्र की स्थापना किसने की?
3. कलकत्ता कला समूह की स्थापना किसने की?
4. के. के. हैब्बर के दो चित्रों के नाम लिखिये।

लघूत्तरात्मक

1. प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप के कलाकारों के नाम बताइये।
2. एन. एस. बेन्द्रे के चित्रों के बारे में लिखिये।
3. जे. स्वामीनाथन के बारे में आप क्या जानते है?
4. ए. रामचन्द्रन की कला के बारे में लिखिये।

निबन्धात्मक

1. कलकत्ता कला समूह के उद्भव एवं विकास को बताइये।
2. अपनी पसन्द के 3 प्रतिनिधि कलाकारों की शैलियों का विवेचन कीजिये।

अध्याय–8
राजस्थान की आधुनिक कला

राजस्थान की आधुनिक कला – भारतीय चित्रकला में आधुनिक कला परम्पराओं की शुरूआत उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ में हो गई थी। आधुनिक चित्र शैली की स्थापना में उसके विकास में कलकता, बम्बई (मुम्बई) और दिल्ली के कला केन्द्रों तथा कलाकारो का विशेष योगदान रहा है। भारतीय आधुनिक कला परम्पराओं में दो विभिन्न वृतियां महत्वपूर्ण थी। प्रथम बंगाल स्कूल से प्रेरित अनुकरणात्मक परम्परा तथा द्वितीय रूचि अनुसार कला रूपो में भारतीय शास्त्रीय मूल्यों को भावात्मक रूपों में सृजन करने की प्रवत्ति। इन्हीं दोनो प्रवृत्तियों ने राजस्थान की आधुनिक कला के उद्‌भव में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

राजस्थान कला के क्षेत्र में विशेष स्थान रखता है। यहाँ लघु चित्रण की परम्परा अत्यन्त समृद्धशाली तथा गौरवपूर्ण है। उत्कृष्ट चित्र शैली राजस्थान की पहचान रही है। राजस्थान की अनेक उपशैलियां अपने निजी कला मूल्यों को धारण किए कला के वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान रखती है। परम्परागत शैलियो ने राजस्थान की आधुनिक कला प्रेरणा में अपने महत्व को आज भी सुरक्षित रखा है। जयपुर के महाराजा सवाई रामसिंह ने मदरसा–ए–हुनरी 1856/57 के नाम से कला संस्थान की स्थापना की जिसे महाराजा स्कूल ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट कहा जाता है। यह संस्थान स्थापना काल के आरम्भ में हस्तकला संबंधी कला का अध्ययन करवाया करता था। इस संस्थान के प्रथम प्राचार्य सी.एस. वैलेन्टाईन बने जो मद्रास स्कूल ऑफ आर्ट से आये थे। ये मद्रास से कई कलाकार अपने साथ लाये। परन्तु राजस्थान में आधुनिक कला की स्वस्थ परम्पराएं तब आरम्भ हुई जब असित कुमार हल्दार, शैलेन्द्रनाथ डे व के.के.मुखर्जी के निर्देशन में यहाँ पर अनेक कलाकर टेम्परा तथा वॉश पद्वति में भारतीय कला रूपों का चित्रण करने लगे। जिसमें रामगोपाल विजयवर्गीय अग्रणीय चित्रकार थे। रामगोपाल विजयवर्गीय बंगाल पुनर्जागरण के कला मूल्यों के आधार पर साहित्यिक उपमानों तथा देशज तत्वों को अपने चित्र में स्थान देकर इस कला यात्रा को आगे बढ़ाया। श्री भूर सिंह शेखावत, शिव नारायण चौगान ने अपनी यथार्थपरक शैली में चित्र यात्रा आरम्भ की। श्री कृपाल सिंह शेखावत ने जो कि बंगाल स्कूल के प्रतिभाशाली चित्रकार रहे, इन्होंने अपनी कला शैली में जयपुर फ्रेस्को पद्वति को अपना कर अपनी विशेष पहचान बनाई।

देवकी नन्दन शर्मा भी शैलेन्द्रनाथ डे के शिष्य रहे थे। रामनिवास वर्मा तथा गोवर्धन लाल जोशी ने परम्परागत लोक प्रभाव को आत्मसात कर अपना चित्रण कार्य किया।

इसी प्रकार आर.वी.सांखलकर, बी.सी.गुई, मोनी सान्याल पी.एन.चोयल, द्वारका प्रसाद शर्मा आदि अनेक चित्रकारों ने राजस्थान में आधुनिक चित्रकला की यात्रा को आगे बढ़ाया।

राजस्थान की आधुनिक कला के विकास में वस्तुतः कई प्रवृत्तियां क्रियाशील रही जिनमें पहली प्रवृत्ति के कलाकार वो कलाकार है, जिनका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से बंगाल स्कूल से संपर्क रहा, इन कलाकारों ने राजस्थान की धरती पर भी बंगाल स्कूल की महक फैला दी। भारतीय पौराणिक ग्रंथों के आधार पर राजस्थान में भी टेम्परा तथा वॉश तकनीक पर चित्र बनाये जाने लगे, जिनमें कई प्रयोगधर्मी चित्रकारों ने स्थानीय कला तकनीक तथा लोक तत्वों को सम्मिलित कर कला के नये प्रतिमान स्थापित किए जिनमें रामगोपाल विजयवर्गीय तथा कृपालसिंह शेखावत प्रमुख व सिद्धहस्त कलाकार थे। दूसरी

प्रवृती में वे कलाकार आते है जिन्होंने परम्परागत लघु चित्रों को आधार मानकर आधुनिक प्रयोग राजस्थानी चित्रकला में किए जिनमें सुमहेन्द्र, कृपाल सिंह शेखावत तथा बाद के कलाकारों में कन्हैयालाल वर्मा तथा नाथूलाल वर्मा प्रमुख थे। तीसरी प्रवृत्ति में वे चित्रकार आते हैं, जिन्होने यथार्थपरक शैली में अपना चित्रण कार्य किया तथा आधुनिक राजस्थानी चित्रकला को लोक रंजन हेतु जन मानस के सामने रखा। इस प्रकार के चित्रकारो में श्री भूरसिंह शेखावत, श्री शिवनारायण चौगौन, बी. सी. गुई, द्वारका प्रसाद शर्मा का नाम अग्रणीय है।

उक्त तीन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त एक अन्य प्रवृत्ति आधुनिक राजस्थानी चित्रकला में हुई जिसने रचना धर्मिता को नये आयाम प्रदान किए। इन विकसित चित्रकारों ने कला संसार को नये ढ़ंग से समझा तथा प्रस्तुत किया। इन कलाकरो ने स्व रूचि के अनुसार रूपाकारों की रचना की तथा राजस्थान में आधुनिक कला को सशक्त सम्बल प्रदान किया। इस प्रवृत्ति के चित्रकारों में र. वी. सांखलकर, पी.एन.चोयल, रघुनन्दन शर्मा, देवकीनन्दन शर्मा, राम जैसवाल, ओमदत्त उपाध्याय, सुरेश शर्मा, सी. एस. मेहता, लक्ष्मी लाल वर्मा आदि प्रमुख रहे।

आधुनिक राजस्थानी चित्रकला के विकास क्रम में उपरोक्त चित्रकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। अपने परम्परागत मूल्यों तथा नवीन प्रयोग धर्मिता से राजस्थानी आधुनिक कला की राष्ट्रीय स्तर पर पहचान स्थापित की। इस आधुनिक दौर के उत्तरकाल में राजस्थान में राजस्थान ललित कला अकादमी 1956/57 की स्थापना हो गई। जिससे राजस्थान की कला उत्तरोत्तर विकास करती गई। अकादमी द्वारा चित्रकला संबंधी अनेक कार्यक्रम आयोजित किए जाने लगे। कई प्रतिभा सम्पन्न कलाकार आधुनिक कला जगत से जुड़ते गए तथा कला उतरोत्तर समृद्धि के पथ पर अग्रसर होने लगी।

आधुनिक काल के प्रमुख चित्रकार

रामगोपाल विजय वर्गीय– (1905–2003) पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय राजस्थान में आधुनिक कला जगत के स्तम्भ कलाकार थे। राजस्थान में बंगाल स्कूल की कला परम्परा के प्रबल समर्थक थे। रामगोपाल विजयवर्गीय का जन्म सवाई माधोपुर के छोटे से गांव बालेर में सन् 1905 में हुआ। आपकी आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। साधन सम्पन्न परिवार में व्यावसायिक परिवेश होने के बावजूद आपका सहज हृदय कला के प्रति आकर्षित रहा। आपकी कला के प्रति अगाध समर्पण को देख आपको कला की विधिवत शिक्षा दिलवाने हेतु महाराजा स्कूल ऑफ आर्ट में प्रवेश दिलाया। यहाँ शैलेन्द्र नाथ डे के अधीन रहकर आपने कला शिक्षा प्राप्त की तथा 1924 में चित्रकला में डिप्लोमा प्राप्त किया।

डिप्लोमा प्राप्त करने के पश्चात् विभिन्न पत्रिकाओं हेतु चित्र बनाने का कार्य आरम्भ कर दिया तथा बंगाल स्कूल व अजन्ता की कला से प्रेरणा लेकर टेम्परा तथा वॉश तकनीक दोनो में ही चित्रण कार्य आरंभ कर दिया। 1928 के पश्चात् आपकी चित्र प्रदर्शनियाँ आयोजित होने लगी। विजयवर्गीय के चित्रों में सरलता पूर्ण गति संचालन तथा लयात्मक प्रस्तुति बहुत श्रेष्ठ रूप में उभर कर आयी है। चित्रों में रंगो की संगति माधुर्य के साथ चित्रों को सजीव कर देती है। नारी चित्रण में विजयवर्गीय सिद्धहस्त थे। आपने लयात्मक मुद्रा, शारीरिक सुडौलता का माधुर्य, सरल व प्रवाह पूर्ण रेखांकन कर आपने चित्र की उच्च कोटि की संज्ञा प्रदान की है। रेखांकन के पश्चात् रंग भरने की तकनीक भी इनकी अनोखी थी। जिसमें विशिष्ट महत्व वाले चित्र भाग को स्पष्ट प्रभाव के साथ सजग रंगो में बनाया जाता था तथा अन्य भाग को हल्के रंग तथा रेखाओं द्वारा उभारते थे। विजयवर्गीय ने वॉश तथा टेम्परा तकनीक का मिश्रण करके अपनी एक नई तकनीक का विकास किया। टेम्परा रंगो के साथ माध्यम के रूप में अण्डे की जर्दी या सफेदी, गोंद, ग्लिसरीन, आदि का प्रयोग किया जाता रहा है, आपने पायस के रूप में गोंद का प्रयोग किया।

गीतगोविन्द चित्र शृंखला, निकुंज लीला, खण्डिता राधा, मानिनी राधा एवं प्रतीक्षारत राधा इस तकनीक के प्रमुख उदाहरण है।

आपकी चित्र शैली में राजस्थान का देशज प्रभाव, अजन्ता तथा बंगाली शैली का प्रभाव रहा है परन्तु इन प्रभावों से आपकी मौलिक शैली का स्वरूप प्रभावित नहीं हुआ वरन् शैली में विशिष्ट तत्वों के रूप में विद्यमान रहे। गीतगोविन्द, उमर खैयाम, मेघदूत, (चित्र संख्या–1) रामायण, महाभारत जातक कथाएं व रागमाला पर आधारित चित्रों की श्रृंखला आपकी व्यक्तिगत शैली के प्रमुख उदाहरण है। चित्रों में वक्र शारीरिक मुद्राएं, मधुर मुस्कान अधखुली आंखे, पतली लम्बी

बाहें तथा अजन्ता के समान हाथ तथा अंगुलियों की भावात्मक मुद्राएं आपकी शैली की विशिष्ट पहचान है। आपके बनाये चित्रों में नारी चित्रण की बहुलता है। रामगोपाल विजयवर्गीय का मानना था कि ''नारी ब्रह्म की आल्हादिनी शक्ति है। कृष्ण ब्रह्म है और रासेश्वरी राधा माया, दोनों का मिलन रासलीला है। रास से रस का जन्म होता है तथा रस ही ब्रह्म है।''

रामगोपाल विजयवर्गीय ने चित्रों के विषय रूप में

चित्र संख्या–1 मेघदूत

विधिवता को अंगीकार किया। ग्रामीण एवं शहरी दोनो ही जीवन को अपने चित्रों में साकार किया यथा ग्रामीण बालाएं, वृद्ध किसान, मजदूर, पशु पक्षी, तमाशा दिखाते मदारी, गुब्बारेवाला, सावन, तीज व गणगौर आदि सामान्य जीवन के चित्र प्रमुख है।

धार्मिक विषयों में राम की वन यात्रा, विश्राम करते राम व सीता, जटायू वध विरही राम, लक्ष्मण व सूर्पणखा, वानरों के साथ राम, धृतराष्ट्र गांधारी, कृष्ण–सुदामा, गंगावतरण, अर्जुन व उर्वशी, चतुर्भज विष्णु, शिवमोह साधु का तप आदि प्रतिनिधि चित्रों के अतिरिक्त अनेकों धार्मिक चित्र बनाऐ।

साहित्य आधारित चित्रों में मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, विक्रमोवंशीय, कुमार संभव, कादम्बरी, गीत गोविन्द, ऋतु संहार तथा बिहारी सतसई समेत अनेक साहित्य रचनाओं के आधार पर चित्र सृजन किया। पद्मश्री विष्णु श्रीधर वाकणकर के शब्दो में ''विजयवर्गीय के मेघदूत के चित्रों में भावगम्यता उतनी ही मधुर है जितनी कालीदास की कविता है।''

विजयवर्गीय श्रेष्ठ कलाकार तो थे ही आपका साहित्य लेखन भी उच्च श्रेणी का था। साहित्य की प्रायः हर विधा यथा काव्य, कहानी, कथा संग्रह रिपोर्ताज, व्यंग्य, आदि में लेखन कार्य किया है, आपके काव्य संग्रह अलकावली, चिंगारियां, चित्रगीतिका अत्यन्त श्रेष्ठ तथा ख्याति प्राप्त है। कथा संग्रह में मेंहदी लगे हाथ, काजल भरी आंखे, व्यंग्यात्मक रचना,''शिवजी की अमेरिका यात्रा'' कहानी संग्रह में "मध्यम मार्ग" आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

रामगोपाल विजयवर्गीय राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट जयपुर के प्राचार्य रहे। 1970 में आपको राजस्थान ललित कला अकादमी का सर्वोच्च कला सम्मान ''कलाविद'' मिला। 1984 में आपको भारत सरकार द्वारा पद्मश्री का सम्मान मिला। 1989 में राष्ट्रीय ललित अकादमी द्वारा 'रत्न सदस्यता' से सम्मानित किया गया।

रामगोपाल विजयवर्गीय का जीवन कला के प्रति अगाध आस्था के सर्जन में ही व्यतीत हुआ। जो कला यात्रा जीवन के आरम्भकाल से शुरू की वह जीवन पर्यन्त अनवरत चलती रही। आपका 98 वर्ष की आयु में सन् 2003 को देहावसान हो गया। आपने राजस्थान में आधुनिक कला सर्जन को जो भूमि प्रदान की वह आज विभिन्न सुंदर फूलों से महक रही है।

बी. सी. गुई – भवानी चरण गुई राजस्थान की कला में प्रकृति चित्रण से पहचाने जाते हैं। आपने मेयो कॉलेज अजमेर में कला शिक्षक के रूप में लम्बे समय तक कार्य किया। बी.सी. गुई का जन्म बंगाली परिवार में 1910 में वाराणसी में हुआ। आपने चित्रकला में लखनऊ स्कूल आर्ट से डिप्लोमा प्राप्त किया।

प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण आपका प्रिय विषय रहा। बंगाल के पुनर्जागरण काल के पश्चात् कला में हो रहे नवीन कला प्रयोग की तरफ आकृष्ट होकर आपने विविधतापूर्ण चित्रण कार्य किया। राजस्थान के जन–जीवन पर यूरोपीय पद्धति में यथार्थवादी चित्रण जल रंगो के माध्यम से किया जो

चित्र संख्या–2 डाउन द केदारनाथ टेम्पल

संयोजन तथा रंगो की सौम्य संगति की दृष्टि से उच्चकोटि के है। प्रकृति के विविध रूपों को आपने पेंसिल, जल रंग तथा तैल रंगो से बहुत सूक्ष्म अध्ययन के साथ चित्रित किया। आपने चित्रों में नाईफ से पेच पद्धति द्वारा भी चित्रों का सृजन किया। विषय के रूप में प्राकृतिक चित्रों की बहुलता रही लेकिन आपने हर प्रकार के विषयों को लेकर चित्रण किया। राजस्थान की जीवन शैली पर आधारित अनेक चित्र बनाए। धार्मिक विषयों के लेकर भी अपना चित्रण कार्य किया जिनमें शेषलीला, शकुन्तला, बुद्ध निर्वाण, मीरा का विषपान, कालिदास, प्रतीक्षा, शिव ताण्डव, राधा–कृष्ण, काली आदि चित्र प्रसिद्ध हैं। (चित्र संख्या–2)

कला के उच्च शिक्षण हेतु बी.सी.गुई लन्दन भी गये जहाँ से रॉयल सोसाइटी ऑफ आर्ट्स तथा स्लेड स्कूल ऑफ सेन्ट्रल आर्ट एण्ड फैलो से कला चित्रण की विशेष दक्षता प्राप्त की।

अनेक राज्यों की कला गतिविधियों में आपको पुरस्कृत किया गया। पंजाब सरकार द्वारा रजत पदक, फाईन आर्ट सोसाईटी लाहौर, महाराजा मैसूर, एकेडमी ऑफ फाईन आर्ट कोलकता द्वारा पुरस्कृत किये गये। श्री गुई ललित कला अकादमी दिल्ली के सदस्य भी रहे तथा राजस्थान ललित कला अकादमी के उपाध्यक्ष तथा फैलो रहे। आप रॉयल आर्ट सोसाईटी, लन्दन के भी सदस्य रहे। आपके चित्र भारत सहित अनेक देशों में निजी संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

1995 में आपकी कला यात्रा पर राजस्थान ललित कला आकदमी द्वारा एक लघु फिल्म का निर्माण भी किया गया।

भूरसिंह शेखावत – भूरसिंह राजस्थानी चित्रकारो में यथार्थवादी कलाकार के रूप में विख्यात थे। इनकी आरम्भिक शिक्षा राजस्थान के ही पिलानी में हुई। आगे के अध्ययन के लिए ये मुम्बई चले गये जहाँ पर इन्होने केतकर आर्ट इन्स्टीटयूट तथा सर जे.जे.स्कूल ऑफ आर्ट से कलाशिक्षा तथा चार वर्षीय कला डिप्लोमा की उपाधि प्राप्त की। (1932–37 ई.) मुम्बई से अध्ययन समाप्त कर पुनः पिलानी में आकर शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक रूप में कार्य करने लगे। पिलानी में बिड़ला की शिक्षण संस्थान में अध्यापन करते हुए अनेक चित्रों का निर्माण किया तथा नये कलाकारों को तराशने लगे। गांधीजी के साथ प्रवास के समय उनके जीवन के अनेक प्रसंगों को अपने चित्रों में उकेरा। ये एक सिद्धहस्त कलाकार थे। इनका कलाकार हृदय प्राकृतिक परिवेश में अधिक रमता था। अनेक बार आपने पहाड़ी क्षेत्र की यात्राएं

चित्र संख्या–3 बुनकर (भूर सिंह शेखावत)

की तथा उनके प्राकृतिक सुरम्य वातावरण को चित्रों में पिरोया। (चित्र संख्या–3) चित्रों में विभिन्न विषयों पर इन्होने चित्रण कार्य किया इनका मानना था कि कला का क्षेत्र विशाल है इसको किसी सीमा में नहीं बांधा जा सकता। जितना महत्व जीवन के आनन्दपूर्ण क्षण का है उतना ही महत्व दुःखपूर्ण वेदना का भी है।

भूरसिंह शेखावत ने बिड़ला मंदिरों में तथा उनमें बने कक्षो में आन्तरिक सज्जा का कार्य भी किया, जिस हेतु दिल्ली, गया, प्रयाग, पटना आदि में बने मंदिरो में भी चित्रण के लिए गये। इन्होने कलकता, दिल्ली, इलाहाबाद, अजमेर सहित अनेक स्थानों पर अपने चित्रों की प्रदर्शनियाँ आयोजित की। अनेक कला संस्थानों की वार्षिक प्रदर्शनियों में भाग लिया यथा राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी दिल्ली, आईफेक्स दिल्ली, एकेडमी ऑफ फाईन आर्ट कलकता, बोम्बे आर्ट सोसाईटी, राजस्थान ललित कला अकादमी आदि। कई संस्थानो में आपने पुरस्कार भी प्राप्त किये। इनकी प्रसिद्धि का अनुमान इस बात से ही लगता है कि राजस्थान के कई आधुनिक कलाकार इनसे कला शिक्षा ले चुके हैं तथा गुरू के रूप में आपका नाम लेकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते है।

आपके चित्रों में विषयों की विधिवता होते हुए भी, राजस्थान की संस्कृति तथा सामाजिक जीवन की एक रूपता स्वतः दिखाई पड़ती है। टेम्परा में चित्रण करना आपको अधिक प्रिय था। चित्रों की यथार्थ परक प्रस्तुति अत्यन्त प्रभावकारी तथा कौशल लिए हुए है। ग्रामीण दृश्यों को चित्रों में पिरोना आपकी अद्‌भूत प्रतिभा है। चित्र का कोना तक सजीवता एवं रोचकता लिए है।

भूरसिंह शेखावत के चित्रों में ग्रामीण परिवेश के विषय प्रधानता लिए हुए हैं जैसे – सूत कातते, पानी भरते, आरा मशीन चलाते, खाना बनाते, चक्की चलाते, हाट बाजार, जुलाहा, कृषक दम्पति, गणगौर पूजन, गाड़िया लुहार, मंगल कामना, गोधूली, ऊंट जुगाली करते, दो दोस्त, विगत युग के कर्णधार, विश्राम करते आदि। भूरसिंह शेखावत बहुत सहृदय व्यक्तित्व के धनी थे। शांत स्वभाव से कला की साधना करना उनके जीवन का मूल मंत्र था। हालांकि वे यथार्थवादी चित्रकार रहे लेकिन राजस्थानी कला जगत को कई प्रयोगधर्मी चित्रकार इन्होने दिये हैं।

गोवर्धन लाल जोशी–

राजस्थान चित्रकला इतिहास में 'भीलों के चितेरा' नाम से प्रसिद्ध गोवर्धनलाल जोशी को ''बाबा'' कह कर संबोधित किया जाता था। आपका जन्म उदयपुर के कांकरोली जिले में सन् 1914 को हुआ था। कांकरोली के द्वारकाधीश मंदिर में भित्ति चित्रों तथा पिछवाईयों की तरफ आकर्षिक होकर इनका मन भी चित्रकला की तरफ झुक गया और अपनी समझ के अनुसार चित्रकारी आरम्भ की। इसी आकर्षण के कारण नाथद्वारा शैली के चित्रकार घासीलाल के संपर्क में आये, इन्होने गोवर्धन लाल जोशी को रेखाओं के महत्व तथा रंगो की प्रकृति से ज्ञान करवाया तथा रंगो को घोटने तथा रेखांकन का अच्छा अभ्यास करवाया। जिनसे गोवर्धन लाल जोशी की कला उत्तरोत्तर निखरती गई।

'बाबा' की कलात्मक प्रतिभा से प्रभावित होकर विद्या भवन उदयपुर ने शिक्षाविद् कालूलाल श्रीमाली की अनुशंसा पर कला शिक्षक पद पर नियुक्ति प्रदान की। इनकी कलात्मक अभिरूचि तथा चित्रात्मक कुशलता देख कला मर्मज्ञ कोरिन डेंट के कहने पर आप उच्च शिक्षा हेतु शांति निकेतन चले गये। जहाँ कला के विविध आयाम की जानकारी प्राप्त हुई। अवनीन्द्र नाथ ठाकुर तथा नन्दलाल बोस के सानिध्य से आपने रेखांकन पर निपुणता प्राप्त की। वहाँ से आने पर पुनः विद्याभवन में शिक्षण कार्य करने लगे तथा साथ ही चित्र सृजन की प्रक्रिया जारी रखी।

गोवर्धन लाल जोशी को घूम घूम कर रेखांकन करना अति प्रिय था, समीपवर्ती गांवों में कस्बों में जाकर भील जीवन पर आधारित अनेक रेखांकन आपने किये। भीलों के अतिरिक्त बंजारा, डांगिया, गाड़िया लुहार, गड़रियो का रेखांकन बड़े मनोयोग से करते थे। (चित्र संख्या–4) रेखांकन में एकाग्रचित चित्रण करते देख कर स्थानीय व्यक्तियों ने आपको 'बाबा' नाम से संबोधित करना प्रारंभ कर दिया। जो आपकी संज्ञात्मक पहचान बन गई।

चित्र संख्या–4 खलिहान की झांकी (गोवर्धनलाल जोशी)

आपने अनेक वर्णनात्मक प्रस्तुति के साथ चित्रण कार्य भी किया, जिसमें गणगौर की सवारी, पन्नाधाय, राणाप्रताप उल्लेखनीय है। सामाजिक जनजीवन पर, लोकोत्सव तीज त्यौहार तथा प्राकृतिक दृश्य संबंधी अनेक चित्र बनाये। आपके चित्रों के प्रयुक्त रंगो में चटक व घूसर दोनों प्रकार के रंग प्रयुक्त हुए लेकिन मिश्रित रंगो की चमक आपके चित्रों को अत्यन्त आकर्षक बना देती है। आपने पैराणिक व साहित्यिक विषयों पर भी अनेक चित्रण किए।

गोवर्धन लाल जोशी को राजस्थान ललित कला अकादमी ने कलाविद् की उपाधि से सम्मानित किया। आपको रतलाम प्रदर्शनी, मैसूर दशहरा प्रदर्शनी, त्रिवेन्द्रम कला प्रदर्शनी से पुरस्कार प्राप्त हुआ। आपको राष्ट्रीय सांस्कृतिक शोधवृति प्राप्त हुई तथा राजस्थान ललित कला अकादमी से भी पुरस्कार प्राप्त हुआ। राजस्थान ललित कला द्वारा फैलोशिप प्रदान की गई। आइफैक्स द्वारा भी पुरस्कार प्रदान किया। आपके लिखे गये लेखों का प्रकाशन भी किया गया तथा आकाशवाणी वार्ता कार्यक्रम भी प्रसारित हुए। आपके चित्र विभिन्न संग्राहलयो में सुरक्षित हैं। सन् 1998 में आपका देहवसान हो गया।

देवकीनन्दन शर्मा – देवकीनन्दन शर्मा राजस्थान के कला जगत में विशेष स्थान रखते हैं। स्नेहशील व्यवहार तथा सादगीपूर्ण जीवन से सभी साथी कलाकारों से आपके आत्मीय संबंध थे। तार्किक परिप्रेक्ष्य तथा पशु व पक्षियों के विविध रूपों से परिपूर्ण चित्रण के कारण कला जगत में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की।

चित्र संख्या–5 मोर (देवकीनन्दन शर्मा)

आपका जन्म अलवर जिले में 1917 ई. को हुआ। सन् 1936 में आपने महाराजा स्कूल ऑफ आर्ट से कला डिप्लोमा प्राप्त किया। यहाँ पर अध्ययन के समय शैलेन्द्र नाथ डे के संपर्क में आये। आपने नन्दलाल बोस, विनोद बिहारी मुखर्जी के सानिध्य व निर्देशन में शांति निकेतन से फ्रेस्को तकनीक की बारीकियों को सीखा। अध्ययन के पश्चात् वनस्थली विद्यापीठ में कला शिक्षक के रूप में शिक्षण कार्य किया।

देवकीनन्दन शर्मा ने अपने चित्रों में परम्परागत सांस्कृतिक स्वरूप को सहेजा। आपके प्रसिद्ध चित्रों में बैलगाड़ी की यात्रा, ग्वाल कृष्ण, ढोला मारू, जुब्बेनिसा, स्नान, कबूतर, गिरगिट, कौए, मोर आदि विशेष महत्वपूर्ण है। मोर की अनेक मुद्राओं, रूपों व भावों को बड़ी कुशलता के साथ चित्रित किया है। (चित्र संख्या–5) राजस्थान के कलाकारों द्वारा आपको 'मोर का चितेरा' संज्ञा प्रदान की गई। आपने 1953 से वनस्थली विद्यापीठ में फ्रेस्को शिविर का आयोजन शुरू किया, जहाँ देश के ख्यातिनाम चित्रकार आकर भाग लेते थे। यह परम्परा आज भी अनवरत जारी है जो आपका ही प्रयास था। वनस्थली विद्यापीठ में फ्रेस्को के रूप में भारतीय कला जगत के महान चित्रकारों का काम आज भी देखने को मिलता है।

राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा आपको समय समय पर कई बार राज्य पुरस्कार दिए गये। 1981 ई. में 'कलाविद' की उपाधि से सम्मानित किया गया। शिक्षा व संस्कृति मंत्रालय दिल्ली द्वारा आपको विशिष्ट फैलोशिप प्रदान की गई। आपके चित्र देश के विभिन्न कला संग्रहालयों में सुरक्षित है। जीवन के अंतिम पड़ाव तक आप सहजतापूर्ण चित्रण कार्य करते रहे। बाल्यकाल से आपने जो कला यात्रा आरम्भ की वह 2005 ई. में निधन होने तक अनवरत जारी रही।

कृपाल सिंह शेखावत– (1922–2008)

कृपालसिंह शेखावत का जन्म श्री माधोपुर तहसील मे सन् 1922 में हुआ। आपकी शिक्षा पिलानी व लखनऊ में हुई। आपने कला की आरम्भिक शिक्षा भूरसिंह शेखावत से ग्रहण की। कला का विधिवत अध्ययन अपने शांति निकेतन में किया। श्री विनोद बिहारी मुखर्जी व नन्दलाल बोस के सानिध्य में सन् 1947 में आपने शांतिनिकेतन से कला डिप्लोमा प्राप्त किया तथा

ऑरियन्टल आर्ट, टोक्यो से भी डिप्लोमा ग्रहण किया।

कृपाल सिंह शेखावत राजस्थान के कला इतिहास में अपना विशेष महत्व रखते है। शांति निकेतन से शिक्षा ग्रहण किए जाने के फलस्वरूप आपकी कला पर बंगाल की शैली का प्रभाव आरम्भिक काल में अवश्य रहा, जिससे प्रभावित होकर अनेक चित्र वॉश पद्वति में बनाये, किन्तु आपने राजस्थानी लघु चित्रण शैली में अपनी प्रयोग धर्मिता से नवीन प्रभावों को सम्मिलित कर अपनी एक विशेष शैली की रचना की, जिसे कृपाल सिंह के नाम से पहचाना जाने लगा। (चित्र संख्या–6) इन्होने राजस्थानी लोक कला तथा जापानी चित्रकला का समायोजन अपनी शैली में किया। कृपाल सिंह शेखावत ने चित्र प्रचलित लघुचित्रों की अपेक्षा किंचित बड़े आकार के चित्र बनाये। अजन्ता के चित्रों के समान रेखाओं का सरल प्रवाह व गति, आकार गठन में देशज प्रभाव, प्राकृतिक चित्रण में विशेषतः चट्टानो तथा वृक्षों के तनों में जापानी गतिज तथा संवेदनशील रेखांकन इनकी चित्र शैली को परम्परागत लघु चित्र शैली से भिन्न स्वरूप प्रदान करते हैं।

कृपाल सिंह जी ने हाथी दांत तथा सिल्क पर भी चित्रण कार्य किया, किन्तु माध्यम के रूप में टेम्परा इनको विशेष प्रिय था। चित्रों में विवरणात्मक प्रस्तुति अत्यन्त रोचकता से हुई है।

आपने अनेक धार्मिक विषयों को अपने चित्रों में प्रस्तुत किया है जिनमें रामायण संबंधी चित्र, कृष्ण–यशोधरा, पाबूजी की फड़, बारहमासा, राग–रागिनी आपके प्रिय विषय रहे हैं।

कृपाल सिंह शेखावत ने लघु चित्रण शैली में जितनी ख्याति अर्जित की उतनी ख्याति 'ब्लू पॉटरी' में भी अर्जित की तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी पहचान स्थापित की।

भित्ति चित्रण तथा म्यूरल भी आपने अनेक स्थानों पर बनाये। बिड़ला हाऊस में ''लाईफ ऑफ गांधी' तथा 'भरत राम की चरण पादुका ले जाते' चित्र अत्यन्त लोक प्रिय हुए। इसके अतिरिक्त आपके चित्र कई स्थानों पर संग्रहीत है यथा – नेशनल गैलरी ऑफ मॉर्डन आर्ट, दिल्ली, ललित कला अकादमी दिल्ली, राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली, इन्दिरा गांधी हवाई अड्डा, दिल्ली, जवाहर कला केन्द्र, जयपुर, नेपाल के राजा का संग्रहालय, राष्ट्रपति भवन श्री लंका, विश्व बैंक न्यूयार्क, जापान आणविक ऊर्जा संस्थान जापान आदि।

चित्र संख्या–6 राधा (कृपाल सिंह शेखावत)

आपको भारत सरकार द्वारा 1974 में पद्मश्री तथा सन् 2002 में शिल्प गुरू से सम्मानित किया गया। इसके अलावा भी अनेक संस्थानों द्वारा सम्मानित किया गया जैसे कलकता आर्ट सोसाईटी द्वारा 1950 में आपको फैलोशिप प्रदान की गई। आपको सन् 1957 से 61 तक राजस्थान ललित अकादमी द्वारा पाँच बार पुरस्कृत किया गया। सन् 1967 में राष्ट्रपति पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। सन् 1990 में इन्टरनेशनल क्राफ्ट कोंसिल न्यूयॉर्क द्वारा सम्मानित किया गया। आपने राजस्थान ललित कला अकादमी के अध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया। कृपाल सिंह शेखावत राजस्थान के कला इतिहास में विशेष सम्मान के रखते हैं। आपने अनेक नये चित्रकारों को दीक्षित किया तथा राजस्थान में कला की श्रेष्ठ परम्पराएँ स्थापित की। सन् 2008 को यह महान् चित्रकार इस संसार से विदा हो गया।

द्वारका प्रसाद शर्मा – द्वारका प्रसाद शर्मा अपने आरम्भिक काल में पाश्चात्य शैली में तैलीय रंगो द्वारा यथार्थवादी चित्रण बहुत श्रेष्ठ स्तर का करते थे परन्तु बाद के आधुनिक चित्र शैली के चित्रों का निर्माण शुरू कर दिया था। आपका जन्म सन् 1922 में, बीकानेर में हुआ था। पिता के संगीत साधक होने तथा इनका ननिहाल उस्ता चित्रकारों के मौहल्ले में होने से इनका आकर्षण सहज ही कला की तरफ हो गया। आरम्भिक काल में आपकी कला शिक्षा जर्मन

चित्र संख्या–7 घोड़ा (द्वारका प्रसाद)

कलाकार ए. एच. मूलर के सानिध्य में हुई। मूलर बीकानेर रियासत के राजसी कलाकार थे तथा पेचवर्क में यथार्थ चित्रण में पारंगत थे। इनकी शिक्षा का प्रभाव ही था कि द्वारका प्रसाद का रेखांकन तथा पेचवर्क में हाथ सधा हुआ था। घोड़े बनाना द्वारका प्रसाद को विशेष प्रिय था। घोड़ो के चित्रण में आनुपातिक व सुडौलपन देखते ही बनता है।(चित्र संख्या–7)

युवावस्था में आपने व्यक्ति चित्रण तथा मंदिर सज्जा का कार्य काफी समय तक किया तथा बाद में सवाई मानसिंह चिकित्सा महाविद्यालय में कलाकार पद पर नियुक्त हो गये। यहाँ पर आपने लंबे समय तक कार्य किया। द्वारका प्रसाद यथार्थवादी चित्रकार होते हुए भी आधुनिक चित्र परम्पराओं में बहुत रूचि रखते थे तथा अपने चित्रों में नवीन अन्वेषण करते थे। आपके चित्र ''डूबी नौका'' तथा युगदर्शन को अकादमी पुरस्कार भी मिला। पारम्परिक पद्धति पर ''गौरीपूजा'' को भी पुरस्कार प्राप्त हुआ।

द्वारका प्रसाद समय समय पर पुरस्कृत होते रहे। राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा पांच बार राज्य पुरस्कार से सम्मानित हुए। आईफेक्स ने अनुभवी चित्रकार के रूप में सम्मानित किया। आपको सज्जनसिंह सम्मान भी प्रदान किया गया। आप जयपुर में इन्डियन इन्स्टिट्यूट ऑफ क्राफ्ट एण्ड डिजाईन के संस्थापक कलाकार रहे हैं। राजस्थान ललित कला अकादमी सहित नॉर्थ सेन्ट्रल जोन तथा उत्तर पश्चिम जोन सांस्कृतिक केन्द्र के सदस्य भी रहे। आपका बीमारी के चलते सन् 2009 में देहांत हो गया।

रत्नाकर विनायक साखलकर –

रत्नाकर विनायक साखलकर का जन्म महाराष्ट्र के रत्नागिरी स्थान पर 1918 ई. में हुआ था, वहीं पर उनकी प्रारंभिक शिक्षा भी हुई। आपने कानून की उच्च शिक्षा ग्रहण की, परन्तु कला क्षेत्र में गहन रूचि होने के कारण जे. जे. स्कूल आर्ट, मुम्बई से आर्ट की मास्टर डिग्री प्राप्त की, जी. डी. (आर्ट) की उपाधि प्राप्त की तथा तत्पश्चात् 1953 ई. में एम. एड. करके दयानन्द महाविद्यालय, अजमेर में प्राध्यापक के रूप में कार्य आरम्भ किया।

र. वि. सांखलकर की कला इतिहास में विशेष रूचि रही। राजस्थान में कला आन्दोलन को अपने विचार से आन्दोलित किया। आपने परम्परागत कला परम्पराओं का विश्लेषण कर नई पीढ़ी को इससे अवगत कराया। साखलकर कला को दैवीय उपासना से जोड़ कर देखते थे। कला का सौन्दर्यगत भाव ईश्वर प्रदत शक्ति के रूप में स्वीकार करते थे। आपने कला निर्माण प्रक्रिया को दो भिन्न स्वरूप में विश्लेषित

चत्र संख्या–8 होप एण्ड डिस्पेयर 21 सेन्चुरी (आर.वी. साखलकर)

किया। प्रथम प्रक्रिया उनके अनुसार कलाकार की निजी प्रतिभा पर आधारित होती है, जिसे वह कला तत्व के आधार पर चित्र भूमि पर उभारता है। दूसरी प्रक्रिया कला पर आरोपित होती है, जो विषयगत सादृश्यता को लिए हुए होती है। वह कला के विश्द सामान्य स्वरूप को विशेष तत्व से जोड़ देती है। यह विशेष तत्व ही कला में भावाभिव्यंजना का आधार बनता है। सांखलकर ने दोनों प्रक्रिया का सांमजस्य स्थापित कर भाव के

साथ सौन्दर्य का समागम करने पर आवश्यक विश्लेषण प्रस्तुत किया। भावना तथा रूप समन्वय स्थापित कर ही सार्थक रूप की सर्जना की जा सकती है। यह सार्थक रूप कलाकार की गहरी संवेदना तथा उसके सौन्दर्य बोध पर आधारित होता है। (चित्र संख्या–8)

र.वि.सांखलकर ने कला के श्रेष्ठ विवेचनकर्ता तथा श्रेष्ठ चित्रकार के रूप में ख्याति प्राप्त की। अपने चित्रण के आरम्भिक काल में यथार्थ चित्रण से प्रभावित होकर चित्रण किया किन्तु बाद में आधुनिक चित्रकला की उतरोत्तर विकास अवस्था के साथ स्वयं को समर्पित कर दिया। आपको केन्द्र तथा राज्य द्वारा श्रेष्ठ चित्रकार का सम्मान दिया गया परन्तु आपकी विशद् परिचयात्मक उपस्थिति एक शिक्षक, कला समीक्षक तथा कला इतिहास मर्मज्ञ के रूप में होती है। आपने कला इतिहास पर अनेक श्रेष्ठ पुस्तकों का लेखन कार्य किया है। आपके द्वारा चित्रजगत को दिये गये विशेष सहयोग को कला जगत में बड़ी सराहना मिली। 1989 में राजस्थान ललित कला अकादमी ने कलाविद की उपाधि से आपको सम्मानित किया।

पी. एन. चोयल–

परमानन्द चोयल का जन्म सन् 1924 ई. में कोटा जिले में हुआ। आपका राजस्थान की आधुनिक कला में विशेष महत्व है। आपकी प्रयोगधर्मिता से राजस्थान की कला के विकास को सशक्त सम्बल मिला आरम्भिक काल में आपने बंगाल स्कूल से प्रभावित होकर चित्रण कार्य आरम्भ किया लेकिन कला की विविधताओं को आत्मसात करते हुए सृजनात्मक कलाकार के रूप में अपनी पहचान स्थापित की

चित्र संख्या–9 (परमानन्द चोयल की एक कृति)

तथा अपनी परिपक्व शैली को स्थापित किया।

आपने् सन् 1948 ई. में महाराजा स्कूल ऑफ आर्ट से चित्रकला का डिप्लोमा प्राप्त किया। जहाँ शैलेन्द्रनाथ डे तथा रामगोपाल विजयवर्गीय के शिष्यत्व में वॉश एवं टेम्परा शैली में अनेक चित्र बनाये। जिन पर पुनर्जागरण कालीन बंगाल शैली का प्रभाव रहा। बाद में आगे शिक्षा प्राप्त करने हेतु जे.जे.स्कूल ऑफ आर्ट, मुम्बई से आर्ट डिप्लोमा का अध्ययन किया। 1953 ई. में डिप्लोमा प्राप्त करने के पश्चात् इनकी कला में अपेक्षित परिवर्तन आरम्भ हुआ तथा टेम्परा व तेलरंगों में कार्य करना आरंम्भ किया। आपके जीवन दर्शन पर पाश्चात्य चित्रकार वान गॉग का प्रभाव था। यथार्थवाद की जगह भावाभिव्यक्ति को अधिक महत्व देने लगे। वान गॉग के चित्र 'धान के खेत पर कौवे' की तर्ज पर 'झोपड़ें के कौवे' चित्र भी बनाया तथा वान गॉग पर एकांकी लेखन किया व उसका निर्देशन भी किया। साठ के दशक में तैल चित्रण को अपना प्रभावी माध्यम बना लिया। तैल रंगो का पतला व पारदर्शी रूप में प्रयोग करना आपकी विशेषता मानी जाने लगी। तूलिका संचालन की स्फूर्तिमान गति चित्रों को सजीव बना देती थी। इस काल में भैंसो के चित्रण की श्रृंखला बना डाली, रेखांकन व तैल चित्रण में इन श्रृंखलाओं को इतनी ख्याति मिली की आपको ''भैसों का चित्रकार'' कहा जाने लगा। 1960 में आपको राजस्थान ललित कला अकादमी का राज्य पुरस्कार भी प्राप्त हुआ, जो चित्र भैंसे पर ही बना था। आपने स्त्री चित्रण को अधिक महत्व दिया। स्त्रियों की भावात्मक पक्ष व पीड़ा आपकी भावुकवृत्ति से विशेष आग्रह के साथ प्रस्तुत हुई। ''शिशु व माँ' के रूप में आपने कई भावपूर्ण चित्र बनाये।

आप ग्राफिक/छापाकला व तैल चित्रण में विशेष अध्ययन हेतु 1961 में स्लेड स्कूल ऑफ लन्दन गये। वहाँ पर आपने शारीरिक गठन शीलता का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन किया। वहाँ पर कार्य करते आपके चित्रों में विवरणात्मक सूक्ष्मता अधिक सशक्त ढंग से चित्रों में उभर कर आने लगी परन्तु आप भावात्मक पक्ष से विशेष आग्रह रखते थे। (चित्र संख्या–9)

चित्रों में भावात्मक अभिव्यक्ति के साथ शारीरिक गठनशीलता को मिश्रित कर एक सशक्त शैली की रचना की जो इनकी विशेष शैली के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

आपने राजस्थान के परम्परागत मूल्यों की पुनर्स्थापना हेतु एक श्रृंखला की रचना की जो राजस्थान की प्राचीन भग्नावशेषों तथा पुरानी खण्डहरनुमा हवेलियों तथा राजप्रासादों पर आधारित थी। इन चित्रों में कौवों के स्थान पर गिद्धों को चित्रित किया गया है, जो जीवन की निस्सारता के प्रतीक हैं। पी.एन.चोयल ने विभिन्न चित्र श्रृंखलाओं की रचना की जो किसी विशेष प्रयोजन के लिए होती थी।

समाज की पीड़ा को दर्शाती एक श्रृंखला 'खिड़की' बनाई जिनमें मेरी गली के आस–पास, उदयपुर की गली, चित्तौड़, दो नारियाँ, आदि उल्लेखनीय हैं। खिड़की श्रृंखला में नारी के असहाय व पीड़ा भरे जीवन को झांकते दिखाया गया। एक अन्य चित्र श्रृंखला ''परसेप्शन ऑफ उदयपुर'' में सामाजिक विषयों को आधार बना कर जनमानस की पीड़ा व भावात्मक पहलू को सुन्दरता के साथ चित्रित किया गया है। इन्होनें अपने चित्रों में संयोजन को नवीन दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया तथा तैलरंगो को जल रंगो की तरफ पारदर्शिता से प्रयुक्त कर चित्रों को नवीन रूप प्रदान किया। पी.एन.चोयल ने राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित की। इन्होंने भारत सहित अनेक देशों यथा जापान, रूस, साओवियालो, लिस्बन, क्यूबा, अल्जेरिया आदि स्थानों पर अपने चित्रों को प्रदर्शित किया। आपको 1988 में ललित कला आकदमी दिल्ली द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार दिया गया। राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा छः बार राजकीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 2007 में ललित कला अकादमी दिल्ली द्वारा 'कला रत्न' की उपाधि प्रदान की गई।

परमानन्द चोयल ने लम्बे समय तक मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में कला शिक्षक के रूप में राजस्थान के कला विद्यार्थियों को तराशा। राजस्थान में समकालीन कला एवं कलाकारों की स्थापना में आपकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सन् 1984 में आप रिटायर्ड होने के पश्चात् भी अपनी सृजन यात्रा को आगे बढ़ाते रहे जो सन् 2012 में देहावसान के साथ समाप्त हुई।

सुरेश शर्मा (1937) –

राजस्थानी आधुनिक चित्रकला में सुरेश शर्मा एक अमूर्त चित्रकार के रूप में प्रतिभा सम्पन्न कलाकार समझे जाते हैं। आपका जन्म 1937 में कोटा में हुआ। बचपन से ही कला में रूचि होने के कारण वे कला शिक्षा हेतु प्रयास करते रहे, तथा शांति निकेतन से आपने आर्ट एण्ड क्राफ्ट में 1962 में डिप्लोमा प्राप्त किया। आपने नन्दलाल बोस, रामकिंकर बैज तथा विनोद बिहारी मुखर्जी के साथ रहकर कला की बारीकियों का अध्ययन किया। कला को अपनी अभिव्यक्ति प्रदान करने में सुरेश शर्मा ने नवीन प्रयोग किए तथा अमूर्त चित्रण के प्रति आकर्षित होकर भावों को सूक्ष्मता के साथ अभिव्यक्त करने लगे।

कला में अथाह संभावनाओं को देखते हुए उन्होंने उच्च शिक्षा के लिए विदेश का रूख किया, जहाँ ब्रुकलिन म्यूजियम आर्ट स्कूल अमेरिका से कला शिक्षा प्राप्त की तथा ग्राफिक कला के अध्ययन हेतु ब्रेट इन्टरनेशनल ग्राफिक सेन्टर न्यूयार्क में प्रवेश लिया। यहाँ पर ग्राफिक संबंधी पद्वतियों का गहनता से अध्ययन किया।

सुरेश शर्मा ने अपनी कृतियों को ''शीर्षक विहिन'' रखकर

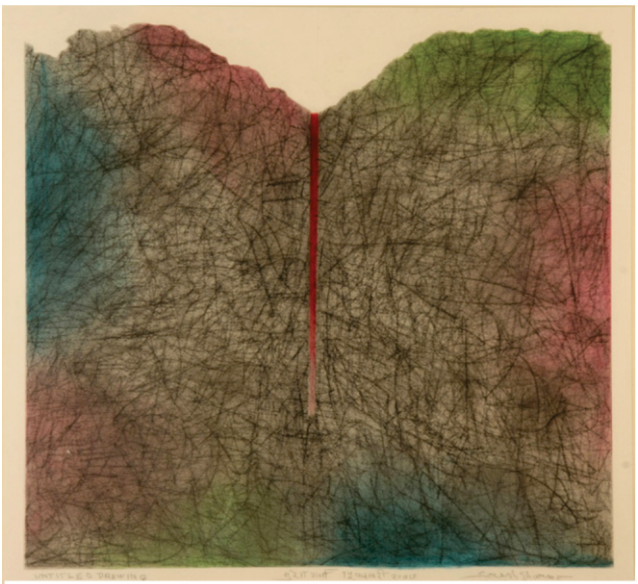

चित्र संख्या–10 सुरेश शर्मा की एक कृति

प्रदर्शित किया। इन चित्रों में ज्यामितिक अलंकरण, सीधी रेखाएं प्रयुक्त कर अन्तराल की अनन्त अनुभूति तथा गहराई की प्रगाढ़ता का बहुत ही सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया है। चित्रों में प्रायः नीली आभा विद्यमान रही है, कभी कभी हरे रंग को भी विस्तार मिला है। अमूर्त चित्रण के साथ आपने राजस्थान की छापा कला को भी नई चेतना प्रदान की। छापा चित्रों में विभिन्न माध्यमों के प्रयोग से कई प्रकार के प्रारूप एवं पोत प्रस्तुत किए। आपने छापा

चित्रकार के रूप में विशेष ख्याति प्राप्त की। (चित्र संख्या–10)

रविन्द्र भवन, दिल्ली में सन् 1973 व 1979 में एकल प्रदर्शनी का आयोजन किया, सन् 1992, 2006, 2011, 2016 में श्रीधाराणी गैलरी में चित्र प्रदर्शित किए। सन् 1981 व 1983 में जापान में अपने चित्रों को प्रदर्शित किया। राजस्थान ललित कला अकादमी ने भी आपको राजकीय पुरस्कार प्रदान किया तथा 1985 में ''कलाविद'' से विभूषित किया गया। 1984 में राष्ट्रीय ललित कला अकादमी दिल्ली के सदस्य भी मनोनित हुए। चतुर्थ बिनाले में भी आपकी सहभागिता रही। इन्टरनेशनल कन्टम्परारी आर्ट एक्जीबिशन जापान में आपके चित्र प्रदर्शित किये गये तथा इन्डो जर्मन आर्ट कैम्प मे भी आपने भाग लिया। राष्ट्रीय ललित कला अकादमी द्वारा 2012 में 'कला रत्न सदस्यता' और राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा 2015 में लाईफ टाईम अचिवमेंट अर्वाड से सम्मानित किया गया। आपने सुखाड़िया विश्वविद्यालय के चित्रकला विभाग में लंबे समय तक प्राध्यापक पद पर रहते हुए युवा चित्रकारों को शिक्षित किया ।

राम जैसवाल – सहज एंव सरल हृदय के प्रतिभाशाली कलाकार राम जैसवाल का जन्म उत्तरप्रदेश के सादाबाद स्थान पर हुआ जो मथुरा जिले में है। आपने चित्रकला की विधिवत शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् गवर्नमेन्ट कॉलेज ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्टस, लखनऊ में कलाकार के रूप में कार्य करना आरम्भ किया। कुछ समय तक मेरठ महाविद्यालय में प्राध्यापक पद पर कार्य किया। सन् 1964 में आप अजमेर आ गये तथा कला प्राध्यापक के रूप में दयानन्द कॉलेज में कार्य करने लगे। सेवानिवृत्ति के पश्चात् आज भी कला सृजन में ऊर्जा के साथ संलग्न हैं।

राम जैसवाल का आरम्भिक काल लखनऊ व मेरठ में गुजरा था। वहाँ आपका सान्निध्य असित कुमार हलदार, सुधीर रंजन, खास्तगीर, व श्रीधर महापत्र जैसे श्रेष्ठ कलाकारों के साथ रहा। इस काल में समस्त भारत पर पुनर्जागरण कालीन बंगाल स्कूल का प्रभाव था। पौराणिक विषयों को लेकर वॉश तकनीक में चित्रण की परम्परा जोर पर थी। आपकी कला में भी भारतीय परम्परा अपने काव्यात्मक माधुर्य के साथ अभिव्यक्त हुई। आप द्वारा वॉश तकनीक में किए गए चित्रण में

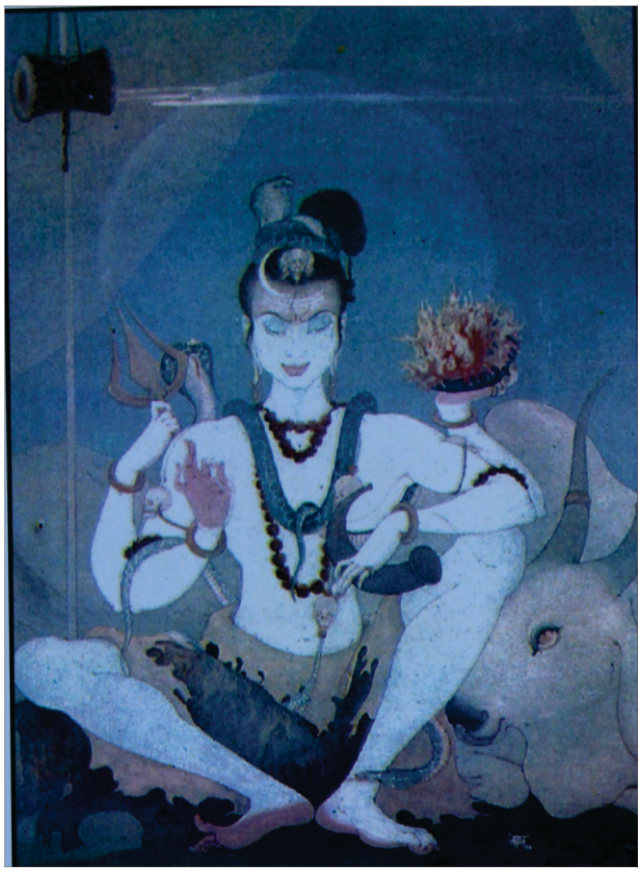

चित्र संख्या–11 वियोगी शिव (राम जयसवाल)

परम्परागत विषयों की आध्यात्मिक एवं काल्पनिक प्रस्तुति है। विशेषतः आपके चित्र बंदी, वियोगी, अतीत विशेष उल्लेखनीय है। प्रकृति चित्रण आपके अद्भुत कौशल के परिचायक है, वेट टू वेट पद्वति से जलरंगो द्वारा प्रकृति को चित्रित करने में आपका कौशल अद्वितीय रहा है। गोमती के तट, रेजिडेन्सी, वियोगी शिव आदि ऐसे ही चित्र है। (चित्र संख्या–11)

अजमेर आने के बाद जल रंग के चित्रण में विविधताएं उभर कर आने लगीं, विभिन्न ऋतुओं तथा मौसम, पहाड़ी, जंगल, झरने, झीलों की मनोरम छटाएं आपके चित्रों में बिखरने लगीं। न केवल जल रंग अपितु टेम्परा में भी आपने श्रेष्ठतम् चित्र सृजन किया है, जिनमें स्ट्रीट सींगर, प्रणय, आंगन की दोपहरी, पूजा का दिन विशेष उल्लेखनीय है।

आप अति संवेदनशील कलाकार है, जीवन की विषमताए, त्रासदी सांस्कृतिक क्षीणता आपको उद्वेलित सहज ही कर देते हैं, जिनसे प्रभावित होकर भी आपने अपने चित्रों का निर्माण किया जैसे नीतिज्ञ, अवैध तथा खण्डित संस्कृति आदि। आप न केवल चित्रकार के रूप में ख्यातिनाम व्यक्ति है अपितु

आप एक साहित्यकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। आपने काव्य संग्रह तथा कहानी संग्रहों का लेखन भी किया है।

राजस्थान की समकालीन कला–

राजस्थान में अग्रणी वरिष्ठ चित्रकारो ने राजस्थान की कला को दिशा प्रदान की वह निरन्तर विकास को अग्रसर होती रही कई प्रतिभा सम्पन्न कलाकार इस कलायात्रा में सम्मिलित होते गये। अपने अमूर्तन चित्रण को श्वेत श्याम रूप से केनवास पर उतारने में सिद्धहस्त विद्यासागर उपाध्याय, छापांकन कला के साथ लक्ष्मीलाल वर्मा, छापांकन एवं म्यूरल चित्रण में सी. एस. मेहता अमूर्त चित्रण में ज्योति स्वरूप शर्मा ने योगदान दिया। चित्रों की बारीकी व सुगठित संयोजन के साथ तैल चित्रण तथा छापांकन कला में शैल चौयल ने चित्रों को ताजगी के साथ प्रस्तुत किया। लघुचित्रण को आधार बनाकर नवीन संयोजन एवं संगति के चित्रकारो में कन्हैया लाल वर्मा, नाथूलाल वर्मा, समन्दर सिंह उल्लेखनीय है। सृजनशील रचनाधर्मिता तथा नवीन अन्वेषण के साथ मोहन शर्मा, शब्बीर हसन काजी, दिलीप सिंह चौहान, आर.बी.गौतम, महेन्द्र कुमार शर्मा, ललित शर्मा, आदि ने ख्याति अर्जित की महिला चित्रकारो में कुमारी प्रभाशाह, दीपिका हाजरा, किरण मुर्डिया, ईला यादव आदि ने समकालीन कला में अपना योगदान प्रदान किया।

कुछ युवा चित्रकार अपने नवीन तकनीक व प्रारूप द्वारा कला को नये आयाम प्रस्तुत करने में कृत संकल्प रहे, जिनमें सुनीत घिल्डियाल, एकेश्वर हटवाल, सुरेन्द्र जोशी, गगन बिहारी दाधीच, रामेश्वर सिंह राजीव गर्ग, अब्बास बाटलीवाला, विष्णु माली, हेमन्त द्विवेदी, दीपक भारद्वाज, जगमोहन माथोडिया, मदनसिंह राठौड़, विजय जोशी, दीपक भट्ट, महिला चित्रकारों में सुरजीत कौर चोयल, मीना बया, मीनाक्षी कासलीवाल, वीरबाला भावसार, मीनू श्रीवास्तव, रीता प्रताप, पुष्पा दूल्लर, इन्दूसिंह, रेखा पंचौली, कृष्णा महावर, आदि उल्लेखनीय है।

राजस्थान की कला वर्तमान में राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान स्थापित कर चुकी है। राजस्थान के अनेक समकालीन चित्रकार राष्ट्रीय स्तर चित्र सृजन में सहभागिता निभा रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. राजस्थान में मदरसा ए हुनरी की स्थापना किसने की थी ?
2. महाराजा स्कूल ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट के प्रथम प्राचार्य कौन थे ?
3. राजस्थान में बंगाल स्कूल की प्रभाव किन कला अध्यापकों के कारण आया ?
4. बंगाल स्कूल शैली के चित्रों को प्रायः किस माध्यम में बनाया जाता था।
5. बिड़ला हाऊस, पिलानी में गांधीजी पर आधारित भिति चित्र किसने बनाये ?
6. रामगोपाल विजयवर्गीय का जन्म कब और कहां हुआ था ?
7. कृष्ण ब्रह्मा है और रासेश्वरी राधा माया'' कथन किस चित्रकार का है ?
8. ''शिव जी की अमेरिका यात्रा'' व्यंग रचना किसने लिखी ?
9. कृपाल सिंह शेखावत ने आरम्भिक कला शिक्षा किससे प्राप्त की ?
10. राजस्थान में ब्लू पोटरी निर्माण एवं चित्रण के प्रतिनिधि चित्रकार कौन है ?
11. रत्नविनायक सांखलकर राजस्थान के किस महाविद्यालयमें कला शिक्षण देते थे ?
12. राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा किस चित्रकार पर सन 1995 में लघु फिल्म बनाई गई ?
13. देवकी नन्दन शर्मा कला शिक्षक के रूप कहां शिक्षण करवाते थे ?
14. "बाबा" नाम से कौनसे चित्रकार प्रसिद्ध थे, जिन्हे ''भीलो का चितेरा'' भी कहा जाता है ?
15. "परसेप्शन ऑफ उदयपुर" चित्र श्रृंखला किसने रची ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. द्वारका प्रसाद शर्मा की चित्रण तकनीकी क्या थी एवं वे किस माध्यम में मुख्यतः कार्य करते थे ?
2. राम जैसवाल ने आरम्भिक काल में किन बंगाली चित्रकारो से चित्रकला का प्रशिक्षण लिया ?
3. सुरेश शर्मा ने ग्राफिक कला का उच्च प्रशिक्षण कहां से लिया ?
4. राजस्थान में बंगाल स्कूल के किन कलाकारों ने आधुनिक कला के विकास में अपना योगदान दिया ?

5. आधुनिक काल के ''लघु चित्रण शैली'' से प्रेरित किन्हीं दो चित्रकारों के नाम बताओ।
6. राजस्थानी आधुनिक शैली के उद्‌भव में कौन कौन सी प्रवृत्तियां महत्वपूर्ण थी ?
7. रामगोपाल विजयवर्गीय के धार्मिक विषय के प्रमुख चित्रों के नाम क्या थे ?
8. ब्लू पोटरी क्या है, इसके प्रमुख रचनाकार कौन हैं ?
9. गोवर्धन लाल जोशी ने अपना रेखांकन प्रायः किन विषयों पर किया है ?
10. पी.एन.चौयल किस युरोपीय चित्रकार से प्रभावित थे और क्यों ?

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. रामगोपाल विजयवर्गीय की कला की समीक्षात्मक व्याख्या करते हुए राजस्थान की आधुनिक कला में उनके योगदान को उल्लेखित कीजिए।
2. कृपालसिंह शेखावत के व्यक्तित्व की व्याख्या करते हुए उनके चित्रों की कलात्मक समीक्षा कीजिए।
3. पी.एन.चोयल की कला के विषय बताते हुए उनकी कला की विशेषताएं बताईये।
4. बी.सी.गुई के जीवन एवं कृतत्व पर प्रकाश डालिये।
5. राजस्थान की आधुनिक शैली के आरम्भ में बंगाल स्कूल का क्या प्रभाव रहा, विस्तृत व्याख्या कीजिए।

भारतीय मूर्तिकला और मन्दिर स्थापत्य

अध्याय–9

मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला और स्थापत्य

भारतीय कला का काल विभाजन इतिहास के आधार पर ही पूर्व, मध्य और उत्तरमध्य काल के युगमान में साधारणतः किया जाता है। यह परिधियाँ निःसन्देह ऐतिहासिक युगधारा पर आधारित हैं और यह कहना आवश्यक नहीं है कि कला व इतिहास के काल परिणाम सदा समान नहीं होते। सांस्कृतिक एवं कलात्मक पदचिन्ह काल विधान के मोहताज नहीं होते, वरन् वे अपनी सार्थकता की स्मृति भविष्य के भाल (ललाट) पर छोड़ जाते हैं।

मूलतः ऐतिहासिक काल निर्धारण राजकुलों के उत्कर्ष–अपकर्ष, उदय–पतन और आकस्मिक राजनीतिक घटनाओं से युगपत बदलाव का लेखा–जोखा है किन्तु कला इन परिवर्तनों, राजकीय संरक्षण एवं सामाजिक धार्मिक परिवर्तनों के चलते इतिहास के युगों का अतिक्रमण कर जाती है।

यहाँ मध्यकाल (600 ई. से 900 ई. पूर्व मध्य और 900 से 1200 ई. उत्तर मध्य) को स्थायी विभाजन न मानकर कला विकास, शैलियों में परिवर्तन और कला रुपों में आये बदलावों को लेकर उनके अध्ययन की दृष्टि से किया गया है। भारतीय इतिहास में गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात समग्र भारत की अवधारणा के विखण्डन के फलस्वरुप उत्तर गुप्तकाल में अनेक नवीन स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हुई। इनमें मालवा–मगध में उत्तर–गुप्त, उत्तर–मध्यभारत में कन्नौज़ का वर्धन वंश और दक्षिण में चालुक्य, राष्ट्रकूट और पल्लव राजवंश प्रमुख थे।

उपरोक्त सभी राजवंश एक दूसरे के समकालीन रहे, फलस्वरुप अनेक राजनीतिक उतार–चढ़ाव एवं ऐतिहासिक घटनाक्रमों ने राज्यों के मध्य क्षेत्रीय सीमाएं अवश्य निर्धारित कर दीं। लेकिन निर्बाध चली आ रही गुप्तकालीन सांस्कृतिक एवं कलात्मक परम्पराएँ कालान्तर में भी आध्यात्म भावभूमि पर अविरल प्रवाहमान रहीं। फिर चाहे वो बौद्ध, हिन्दू और जैन आदि किसी भी धर्म सम्प्रदाय से सम्बद्ध क्यों न हो, सभी में कलात्मक साहचर्य एवं भावगत एकरुपता अविभाज्य है। इनमें प्रधान देवप्रतिमा ही मात्र धर्म विशेष का संकेत सूचक जान पड़ती हैं।

कला इतिहास की दृष्टि से उत्तर भारत के सम्राट हर्षवर्धन महत्वपूर्ण हैं, जो वीर योद्धा एवं कुशल प्रशासक के साथ–साथ कला प्रेमी भी थे, उनके कलात्मक प्रेम की पुष्टि हमें चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तांत से होती है। ह्वेनसांग ने नालन्दा विश्वविद्यालय, विभिन्न मंदिरों एवं हर्ष रचित साहित्य का उल्लेख किया है। 620 ई. में 'उत्तरापथनाथ' नरेश हर्षवर्धन को हराकर चालुक्यवंशीय राजा पुलेकेशियन द्वितीय ने अपने साम्राज्य का पश्चिम–मध्य भारत तक विस्तार कर नासिक को राजधानी बना सकल 'दक्षिणोपथनाथ' की उपाधि का वरण किया।

सातवीं सदी का पूर्वाह्न चालुक्यकालीन कला का चरमोत्कर्ष था। इसी समय के मन्दिरों में ऐहोल का दुर्गा मंदिर 550 ई., बादामी के गुफा मंदिर शृंखला में विष्णु मंदिर 578 ई., पटकदल में लोकेश्वर शिव को समर्पित पापनाथ एवं विरुपाक्ष मंदिर 740 ई. आदि के वास्तु एवं मूर्तन की समृद्ध परम्परा का उत्कर्ष एलोरा के गुफा मंदिरों में पूरे वैभव के साथ देखा जा सकता है।

कालान्तर में दक्षिण के शक्तिशाली क्षत्रप दंतीदुर्ग ने 753 ई. में पुलेकेशिन द्वितीय को परास्त कर दक्षिण में राष्ट्रकूटों की सत्ता स्थापित की। इसी वंश के प्रतापी राजा कृष्ण राय प्रथम ने विश्व प्रसिद्ध कैलाशनाथ मंदिर का निर्माण करवाया।

ऐलोरा

पूर्व मध्यकालीन मूर्तिकला एवं स्थापत्य के प्रमुख केन्द्र के रुप में ऐलोरा (वेरुल) का महत्व सर्वोपरि है। औरंगाबाद से 55 किलोमीटर की दूरी पर स्थित ऐलोरा धार्मिक त्रिवेणी है जो बौद्ध, हिन्दू और जैन धर्म के आपसी साहचर्य एवं कलात्मक ऐक्य का साक्षात प्रतिरूप है। 8वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में निर्मित 34 गुफाओं के विशाल कला संसार में गुफा संख्या एक से 12 तक बौद्ध धर्म और 13 से 29 तक हिन्दू धर्म को समर्पित है वहीं शेष पाँच गुफाएं जैन धर्म की दार्शनिकता को परिलक्षित करती हैं।

विशाल मूर्तन, बेजोड़ अलंकृत स्तम्भों और आध्यात्मिक भावनाओं से युक्त ऐलोरा के सभी मंदिर बारदरी शैली (एकाश्म शैली) में एक ही पर्वत में कटे व दो या तीन मंजिले हैं। इन गुफा मंदिरों का निर्माण चालुक्य काल से राष्ट्रकूटों के समय तक चलता रहा। चालुक्य कालीन गुफाओं में मुख्य रूप से तीन मंजिला गुफा संख्या 12 विश्वकर्मा मंदिर, बुद्ध के सात मानुषी रूपों के मूर्तन को लेकर विशेष प्रसिद्ध है। गुफा संख्या 15 दशावतार मंदिर, जिसमें विष्णु के नृसिंहावतार एवं अन्य पौराणिक कथाओं का सुन्दर मूर्तन है।

लेकिन इन सबसे अधिक वैभवशाली एवं मूर्तन की समृद्धता का साक्षात है राष्ट्रकूट राजा कृष्ण राम प्रथम द्वारा निर्मित गुफा संख्या 16 का कैलाशनाथ मंदिर, जिसे रंगमहल भी कहते हैं। इस भव्य मंदिर का निर्माण 757 –790 ई. के मध्य हुआ। संसार के असाधारण मंदिरों में शामिल कैलाशनाथ मंदिर का सृजन एकल पर्वत को तराश कर 276 फीट गहरे, 154 फीट चौड़े और 120 फीट ऊँचे खुले आंगन में स्वतंत्र मंदिर के रुप में किया गया है। कला इतिहासकार डॉ. आनन्द के. स्वामी के मतानुसार कैलाशनाथ मंदिर का निर्माण पट्टकदल के विरुपाक्ष मंदिर का ध्यान में रखकर बेसर शैली में किया गया है। (चित्र संख्या–1)

गौपुरम से मंदिर के प्रवेश द्वार के ठीक सामने खुले आंगन के मध्य स्थित विशाल शिवालय के दोनों तरफ 60 फीट ऊँचे अंलकृत विशाल स्तंभ और स्तंभों के पास विशाल गजराज स्वतंत्र रुप से मूर्तमान होकर मंदिर की भव्यता को बढ़ा रहे हैं। मुख्य मंदिर में प्रवेश द्वार नंदी के मण्डप से निर्मित है, जिससे होकर हम सोलह अलंकृत स्तंभों से युक्त मण्डप के प्रार्थना कक्ष में पहुँचते हैं। मण्डप के ठीक सम्मुख मध्य में थोड़ा ऊपर स्थित गर्भ गृह में विशाल शिवलिंग सुशोभित है। गर्भ गृह पर स्थित 96 फीट ऊँचा मस्तकशिखर द्रविड़ शैली में निर्मित है। विमान के प्रदक्षिणापथ से लगे पाँच अलग–अलग देवालय और आंगन में अन्य देवताओं के आवास बने हैं। मंदिर के सभी स्तंभ नागर शैली में निर्मित हैं। चालुक्य कालीन बेसर शैली की पूर्ण परिणति कैला ा मंदिर में मिलती है। मुख्य मंदिर की बाहरी दीवारों एवं सम्पूर्ण परिसर में लगभग 42 पौराणिक आख्यानों एवं शिव प्रसंगों का भव्य मूर्तन है, जिसमें रावण का कैलाशोत्तोलन, शिव विवाह, शिव ताण्डव, रामायण के प्रसंग, भैरव एवं अन्य देवी–देवताओं का मूर्तन प्रमुख है। (चित्र संख्या–2)

कैलाश के भैरव की मूर्ति जितनी भयानक रूप वाली है, पार्वती प्रतिमा उतनी ही सौम्य है। शिव ताण्डव का ऐसा प्रबल वेग पाषाण में अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। शिव विवाह में शिव–पार्वती का परिणय भावी सुख की मर्यादा बांध देता है। वहीं रावण का कैलाशोत्तोलन पौरुष की पराकाष्ठा को परिभाषित करता है। रावण भुजाएं फैलाए कैलाश के सम्पूर्ण

चित्र संख्या–1 ऐलोरा

चित्र संख्या–2 रावण का कैलाशोत्तोलन

तल को पुरजोर हिलाता है, जिससे उसकी संधि तक हिल जाती है। भयसंत्रस्त पार्वती शिव के विशाल भुजदण्ड का आलम्बन ले रही है और अन्य जीव–जन्तु भय से त्रस्त हैं। वहीं शिव अटल–अचलता का भाव लिए अपने पाँव के अंगूठे से पर्वत को हल्के से दबा कर रावण के श्रम को निरर्थक कर देते हैं। ऐलोरा का कैलाशनाथ मंदिर भारतीय वास्तु एवं मूर्तन की श्रेष्ठ उपलब्धि है। अन्य गुफाओं में जैन धर्म को समर्पित गुफा इन्द्रसभा, जिसे छोटा कैलाश भी कहते हैं, अपने अलंकरण एवं मूर्तन में बेजोड़ है। इसमें इन्द्र, इन्द्राणी एवं महावीर भगवान का मूर्तन भव्य बन पड़ा है। गुफा संख्या 21, रामेश्वर मंदिर में शिव ताण्डव, महिषासुरमर्दिनी एवं घूमरेलण गुफा संख्या 29 में शिवविवाह आदि का मूर्तन भी बड़ा ही भव्य एवं भावपूर्ण बन पड़ा है।

ऐलिफेंटा :–

7 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में निर्मित राष्ट्रकूटकालीन गुफा मंदिरों में ऐलिफेंटा का शिव मंदिर प्रमुख है। मुम्बई से 6 मील दूर एक टापू पर स्थित यह मंदिर अपने स्थापत्य एवं मूर्तन के लिए ऐलोरा के समकक्ष माना जाता है। धारापुरी नाम से प्रसिद्ध इस समुद्री टापू पर विशाल पर्वत के ऊपरी भाग को तराश कर मंदिर श्रृंखला का निर्माण किया गया है। (चित्र सं–3)

मुख्य शिव मंदिर अपने प्रवेश द्वार से 60 फीट चौड़ा और 18–20 फीट ऊँचा है। छत चट्टान काट कर बनाए गए अलंकृत स्तंभों पर आधारित है। स्तंभों पर ऐलोरा की भांति देवी–देवताओं एवं अन्य आकृतियों का सुन्दर मूर्तन है। मंदिर के मध्य 18 फीट ऊँची विशाल शिव की त्रिशिरा मूर्ति विराजमान

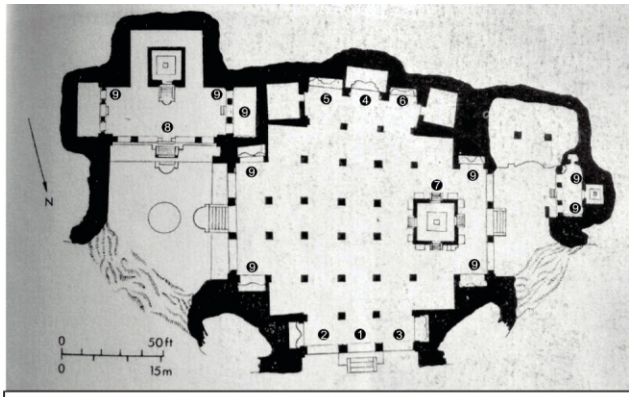

ऐलिफेन्टा,शिव मन्दिर नक्शा
1. मुख्य प्रवेश द्वार 2. शिव योगेश्वर 3. शिव नटराज
4. शिव महेश मूर्ति 5. शिव अर्द्धनारीश्वर 6. शिव गंगाधर
7. शिवलिंग 8. लघु शिव मन्दिर 9. अन्य मूर्ति शिल्प

चित्र संख्या–3

चित्र संख्या–4 त्रिशिरा शिव

है। महेश्वर की प्रकाण्ड मूर्ति, जिसके मुखमण्डलों पर प्रशान्त गंभीरता व्याप्त है, विशाल जटाजूट श्रृंगार से सुशोभित मुकुट उनके संकल्प को प्रतिष्ठित करता है। (चित्र सं–4)

धीर–गंभीर चिंतनशील मस्तक, बोझिल पलकों युक्त नेत्रों से नीचे झांकते शिव, गुप्तकालीन होठ रसपूरित भाव लिये हुए उत्कीर्ण किये गये हैं। बांयी ओर का मुख मण्डल शिव के रौद्र रुपी 'भैरव' संहारक भाव को चरितार्थ करता है, जिसके एक हाथ में नर मुण्ड और कंधे पर झूलते सर्पों का मूर्तन, बल एवं रुप में असाधारण है। वहीं दांयी ओर पार्वती–रूप आकर्षक मुख मण्डल, मोतियों एवं पुष्पों से आच्छादित मुकुट से सुशोभित है और हाथ में कमल–पुष्प सृष्टि के प्रति उनके सौम्य एवं सृजनात्मक भाव को दर्शाते हैं।

महेश्वर शिव की त्रिमूर्ति के दोनों ओर के स्तंभ विष्णु और ब्रह्मा के रूप को मूर्तमान करते हैं। स्तंभ के दांयी ओर अर्द्धनारीश्वर की 16 फीट ऊँची प्रतिमा लोकजीवन में प्रकृति–पुरुष के साहचर्य से सृष्टि के सृजन की प्रतीकात्मकता की द्योतक है। वहीं बांयी ओर शिव विवाह के स्वरूप का लीलाभाव सृष्टि के प्रणय को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त विराट एवं लोमहर्षक शिव नटराज, सृष्टि के संतुलन का और शिव योगेश्वर की प्रतिमा पुरुष के स्वयं की चित्त जागृति (आत्म कल्याण) के आध्यात्मिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है। वहीं शिव गंगाधर का मूर्तन तप एवं श्रम के साध्य को सार्थकता प्रदान करता है।

ऐलिफेंटा के शिव मंदिर का शिल्प विधान

प्रकृति–पुरुष के सम्पूर्ण विस्तार के मनोवैज्ञानिक एवं सौन्दर्यात्मक पक्ष की सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् की अवधारणा को पुष्ट करता है।

1. प्रवेश द्वार
2. योगेश्वर शिव
3. शिव नटराज
4. महेश मूर्ति (त्रिमूर्ति)
5. अर्द्धनारीश्वर
6. शिव विवाह
7. गर्भ गृह – शिवलिंग
8. शिव प्रसंग – शिव गंगाधर, अंधकठेश्वर शिव
9. अन्य मूर्तिशिल्प

महाबलिपुरम :–

मध्यकालीन मंदिर श्रृंखला में पल्लवकालीन मंदिरों में महाबलिपुरम एवं कांची के समुद्र तट पर निर्मित विशाल मूर्तन अपने समय की गौरव गाथा बयान करते हैं। आठवीं सदी में शैव धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा के फलस्वरूप पल्लववंशीय प्रतापी राजा महेन्द्र वर्मन प्रथम और उसके पुत्र नृसिंह वर्मन द्वितीय ने कांची को राजधानी बनाया। सातवीं सदी के मध्य नृसिंह वर्मन द्वितीय के समय कांची एवं महाबलिपुरम पल्लवकालीन वास्तु एवं मूर्तन के प्रमुख कला केन्द्र बन कर उभरे। इस समय स्थापत्य एवं मूर्तन की एक नवीन द्रविड़ शैली का विकास हुआ। इस शैली में निर्मित 'मामल्ल शैली मंदिर रथ' या पगोड़ा के नाम से जाने जाते हैं। जो शिल्प विधान में भव्य एवं बेजोड़ हैं। (चित्र सं–5)

कांची के प्रमुख मंदिरों में राज सिद्धेश्वर शिव मंदिर, बैकुण्ठ पैरूमल का मंदिर और मांग्तेश्वर का शिव मंदिर आदि पल्लवकालीन स्थापत्यमूर्तन के प्रारंभिक स्वरूप को निश्चित करते हैं। वहीं मामल्ल शैली के विख्यात महाबलिपुरम के विशाल शिल्प इस समय का उत्कर्ष है। महाबलिपुरम के मंदिरों में सात पगोड़ा (सप्त रथ) गंगावतरण, त्रिमूर्ति मंदिर, वराह एवं दुर्गा मंदिर प्रमुख हैं। (चित्र सं–6)

गंगा अवतरण नामक शिल्प अत्यन्त ही दृश्य संकुल पर्वत शिला की दीवार है जो खुले आकाश के नीचे अपनी अनन्त मूर्ति सम्पदा के लिए विश्वप्रसिद्ध है। यह सम्पूर्ण दृश्य 98 फीट ऊँचा और 33 फीट चौड़ा विशाल पाषाण शिल्प 'तीर्थम्' के नाम से पुकारा जाता है, जिसे "भागीरथ की तपस्या" भी कहते हैं। विशाल पाषाण शिला के मध्य एक चौड़ी दरार गंगा के बहाव को परिलक्षित करती है, जिसके दोनों ओर देवों, मानवों, पशुओं, नागों, गजों गंधर्वों एवं विद्याधरों आदि की अनन्त सजीव आकृतियाँ निरूपित हैं। ये सभी आकृतियाँ गंगा की अमृतधारा के बहाव की ओर हाथ जोड़े खड़ी हैं या उस ओर बढ़ती जा रही हैं। गंगा के बहाव के ठीक नीचे पास में दोनों भुजाएं ऊपर उठाए भागीरथ के तपस्या निमग्न रूप का मूर्तन है। वहीं पास में एक बिलाव को भी तपस्यारत दिखया गया है। यह समूची जनसंकुल दृश्य–परम्परा भावाभिव्यंजना एवं मूर्तन की पराकाष्ठा है।

इसके अतिरिक्त 'सप्त रथों' के रूप में पाँच पाण्डव रथ, द्रौपदी रथ व गणेश रथ मुख्य हैं। जिन्हें प्रत्येक को अलग–अलग पर्वत काटकर नवीन द्रविड़ शैली में निर्मित किया गया है। वास्तव में ये सभी शिव मंदिर हैं। इनमें सर्वप्रथम धर्मराज रथ, भीमरथ, सहदेव रथ हैं, जिनकी छतें पिरामिडनुमा हैं और एक के ऊपर एक तीन तल चढ़ते चले गए हैं जो अपने विविध अलंकरणों से सुशोभित हैं। वहीं अर्जुन रथ, नकुल रथ, द्रौपदी रथ और गणेश रथ अपेक्षाकृत साधारण स्तर को दर्शाते हैं। इन रथों की कलात्मक विशेषताओं में पतले कीर्तिमुख सिंह

चित्र संख्या–5 महाबलीपुरम

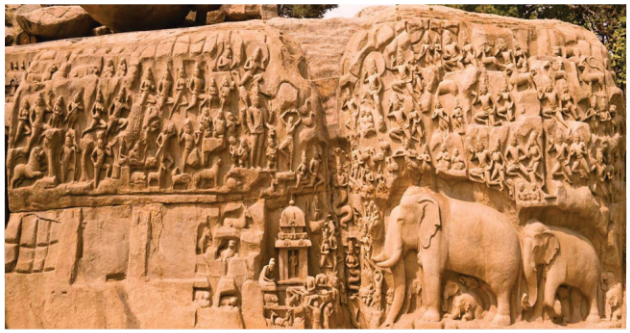

चित्र संख्या–6 गंगा अवतरण

पीठ पर स्थित अलंकृत स्तंभ, मकरतोरण द्वार और चैत्य वातायनीय मेहराबों में 'उत्कीर्ण' मूर्तिशिल्प विशेष दर्शनीय हैं। वराह मंदिर में विष्णु के दस अवतारों का मूर्तन तो है ही, साथ ही दुर्गा, गजलक्ष्मी एवं सूर्यादि तथा राजा महेन्द्र वर्मन को रानियों के साथ उत्कीर्ण किया गया है। महेश मण्डप या दुर्गा मंदिर में महिषासुरमर्दिनी की आक्रामक प्रतिमा अपनी गति एवं ओज के लिए जानी जाती है। इस गुफा मंदिर में शेषशायी विष्णु का अतिविशाल मूर्तन अपनी भव्यता में बेजोड़ है। इसी गुफा में नृसिंह वर्मन को रानियों के साथ उत्कीर्ण किया गया है। पल्लवकालीन कलाओं को उत्तरोत्तर विकास क्रम आने वाले समय में नृसिंह वर्मन द्वितीय के पश्चात अनुगामी राजाओं के शासन काल में निर्बाध रूप से यथावत् रहा।

कोणार्क मन्दिर :–

भारतीय इतिहास में निर्मित सूर्य मंदिरों में सबसे प्रसिद्ध कोणार्क का सूर्य मंदिर भारत के उड़ीसा राज्य के पुरी नगर में स्थित है। तेरहवीं शताब्दी में गंग बंग के राजा नृसिंहदेव द्वारा लाल बलुआ पत्थर एवं काले ग्रेनाइट पत्थर से इसका निर्माण करवाया गया था। यह मंदिर, भारत के प्रसिद्ध स्थलों में से एक है। इसे युनेस्को द्वारा विश्व धरोहर स्थल घोषित किया गया है। कलिंग शैली में निर्मित यह मंदिर सूर्य देव(अर्क) के रथ के रूप में निर्मित है। इसे पत्थर पर उत्कृष्ट नक्काशी करके बहुत ही सुंदर बनाया गया है। संपूर्ण मंदिर स्थल को एक बारह जोड़ी चक्रों वाले, सात घोड़ों से खींचे जाते सूर्य देव के रथ के रूप में बनाया है। इस रथ के पहिए, जो कोणार्क की पहचान बन गए हैं, मंदिर के आधार को सुंदरता प्रदान करते हैं। यह मंदिर अपनी कामुक मुद्राओं वाली शिल्पाकृतियों के लिये भी प्रसिद्ध है। वास्तु दोष एवं आक्रमणों के कारण इस मंदिर का काफी भाग ध्वस्त हो चुका है। यहाँ सूर्य को बिरंचि–नारायण कहते थे। मुख्य मंदिर तीन मंडपों में बना है। इनमें से दो मण्डप ढह चुके हैं। तीसरे मंडप में जहाँ मूर्ति थी अंग्रेजों ने भारतीय स्वतंत्रता से पूर्व ही रेत व पत्थर भरवा कर सभी द्वारों को स्थायी रूप से बंद करवा दिया था, ताकि वह मंदिर और क्षतिग्रस्त ना हो पाए, इस मंदिर में सूर्य भगवान की तीन प्रतिमाएं हैं–

चित्र संख्या–7 चक्र (कोणर्क)

बाल्यावस्था–उदित सूर्य
युवावस्था–मध्याह्न सूर्य
प्रौढावस्था–अस्त सूर्य

इसके प्रवेश पर दो सिंह हाथियों पर आक्रामक होते हुए रक्षा में तत्पर दिखाये गए हैं। दोनों हाथी, एक–एक मानव के ऊपर स्थापित हैं। ये प्रतिमाएं एक ही पत्थर की बनीं हैं। मंदिर के दक्षिणी भाग में दो सुसज्जित घोड़े बने हैं, जिन्हें उड़ीसा सरकार ने अपने राजचिह्न के रूप में अंगीकार कर लिया है। मंदिर सूर्य देव की भव्य यात्रा को दिखाता है। इसके प्रवेश द्वार पर ही नट मंदिर है। ये वह स्थान है, जहाँ मंदिर की नर्तकियां, सूर्यदेव को अर्पण करने के लिये नृत्य किया करती थी। पूरे मंदिर में पुष्प–लताएं और ज्यामितीय नमूनों की नक्काशी की गई है। इनके साथ ही मानव, देव, गंधर्व, किन्नर आदि की आकृतियां भी हैं। यहाँ की शिल्प कलाकृतियों का एक संग्रह, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के सूर्य मंदिर संग्रहालय में सुरक्षित है।

कोणार्क का सूर्य मन्दिर बारह जोड़ी पहियों वाले रथ पर बनाया गया है। ये पहिये बारह महिनों के प्रतीक माने जाते हैं। इन पहियों की ऊंचाई दस फीट है। मन्दिर के पूर्व एवं पश्चिम दिशा में बने दो पहिये (चक्र) सूर्य चक्र के नाम से जाने जाते हैं। इन पहियों में बनी आठ मुख्य आरें दिन के आठ प्रहरों को दर्शाती है। (चित्र संख्या–7) आठ मुख्य अरों के एकान्तर में आठ पतली अरें भी बनी है। पहिये के किनारे पर दो मुख्य अरों के बीच साठ मनकों की श्रृंखला समय की सटीक जानकारी प्रदान करती है। पहिये पर फूल–पत्तों व पशु आकृतियों का

चित्र संख्या–8 मंजीरा वादिका

अलंकरण देखा जा सकता है। मुख्य अरों के मध्य मे दर्पण देखती स्त्री, अंगड़ाई लेती स्त्री आदि दृश्यों को उत्कीर्ण किया गया है।

सूर्य मंदिर के शिखर पर कुछ स्वतंत्र मूर्तिशिल्प वादिकाओं (जैसे बांसुरी वादिका, मंजीरा वादिका) के बने हैं। इनमें से एक मूर्तिशिल्प नृत्यरत मुद्रा में मंजीरा वादिका का है। (चित्र सं–8) इसमें मंजीरा वादिका को त्रिभंगीय मुद्रा में बनाया गया है। वादिका की मुखाकृति गोल, नयन मीनाकृत, केश विन्यास सुन्दर तथा चेहरे पर मुस्कान सुशोभित है। वस्त्राभूषणों के रूप में कानों में कुण्डल, गले में हार, हाथों पर भुजबंद व कड़े, कमर पर करधनी, सिर पर मुकुट एवं अधोवस्त्र धारण किये हुए है। वादिका को सम्पूर्ण नारी तत्वों से अलंकृत किया गया है, जिससे यह आकृति अत्यन्त मनोहारी एवं लावण्य युक्त दिखाई देती है।

खजुराहो :–

मध्यकालीन मूर्तिकला का उत्कृष्ट केन्द्र खजुराहो मध्य प्रदेश के छत्तरपुर जिले में स्थित एक छोटा–सा कस्बा है लेकिन अद्‌भुत मंदिरों की वजह से यह विश्व प्रसिद्ध है। 1838 में एक ब्रिटिश इंजीनियर कैप्टन टी.एस. बर्ट ने इन मन्दिरों की खोज की और उनका अलंकारिक विवरण बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के समक्ष प्रस्तुत किया। खजुराहों के स्मारक अब भारत के पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग की देखभाल और निरीक्षण में हैं। कलानुरागी चंदेल वंशीय शासकों ने लगभग 84 मंदिरों का निमार्ण करवाया था, लेकिन उनमें से अभी सिर्फ 22 मंदिर ही ज्ञात हैं, यद्यपि दूसरे पुरावशेषों के प्रमाण प्राचीन टीलों तथा बिखरे वास्तुखंडों के रूप में आज भी खजुराहो तथा इसके आसपास देखे जा सकते हैं। सामान्य रूप से यहाँ के मंदिर बलुआ पत्थर (सैण्ड स्टोन) से निर्मित किए गए हैं, लेकिन चौंसठ योगिनी, ब्रह्मा तथा ललगुआँ महादेव मंदिर ग्रेनाइट (कणाष्म) से निर्मित हैं। ये मंदिर शैव, वैष्णव तथा जैन संप्रदायों से सम्बंधित हैं। ये मंदिर मध्य भारत की स्थापत्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। यहाँ मंदिर बिना किसी परकोटे के ऊँचे चबूतरे पर निर्मित किए गए हैं। आमतौर पर इन मंदिरों में गर्भगृह, अंतराल, मंडप तथा अर्धमंडप देखे जा सकते हैं। यहाँ की प्रतिमाऐं विभिन्न भागों में विभाजित की गई हैं। जिनमें प्रमुख प्रतिमा परिवार, देवता एवं देवी–देवता, अप्सरा, विविध प्रतिमाऐं, जिनमें मिथुन आदि सभी प्रकार की प्रतिमाओं का परिमार्जित रूप यहाँ स्थित मंदिरों में देखा जा सकता है। यहाँ मंदिरों में जड़ी हुई मिथुन प्रतिमाऐं सर्वोत्तम शिल्प की परिचायक हैं, जो कि दर्शकों की भावनाओं को अत्यंत उद्वेलित व आकर्षित करती हैं। यहाँ के प्रमुख मंदिरों में लक्ष्मण, विश्वनाथ, कंदरिया महादेव, जगदम्बा, चित्रगुप्त, दूल्हादेव, पार्श्वनाथ, आदिनाथ, वामन, जवारी, तथा चतुर्भुज इत्यादि हैं। खजुराहो चंदेल शासकों के प्राधिकार का प्रमुख स्थान था, जिन्होंने यहाँ अनेकों तालाबों, शिल्पकला की भव्यता और वास्तुकलात्मक सुंदरता से सजे विशालकाय मंदिर बनवाए। यशोवर्मन ने विष्णु का मंदिर बनवाया जो अब लक्ष्मण मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। विश्वनाथ, पार्श्वनाथ और वैद्यनाथ के मंदिर राजा डांगा के समय के हैं जो यशोवर्मन के उत्तरवर्ती थे। खजुराहो का सबसे बड़ा और महान मंदिर अनश्वर कंदरिया

चित्र संख्या–9 कंदरिया महादेव

महादेव का है। इसके अलावा कुछ अन्य उदाहरण हैं जैसे कि वामन, आदि नाथ, जवारी, चतुर्भुज और दूल्हादेव कुछ छोटे मंदिर हैं। खजुराहो का मंदिर समूह अपनी भव्य छतों (जगती) और कार्यात्मक रूप से प्रभावी योजनाओं के लिए भी उल्लेखनीय है। यहाँ की शिल्पकलाओं में धार्मिक छवियों के अलावा परिवार, दिकपाल और अप्सराएँ भी हैं। यहाँ वेशभूषा और आभूषणों की भव्यता मनमोहक है। वास्तुकला और मूर्तिकला की दृष्टि से खजुराहो के मन्दिरों को भारत की सर्वोत्कृष्ठ कलाकृतियों में स्थान दिया जाता है। खजुराहो में विराजमान बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा के प्राप्त होने से यह संकेत मिलता है कि इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का भी प्रचलन था।

खजुराहो की मिथुन प्रतिमाएं

इन मूर्तियों के बारे में भिन्न भिन्न व्याख्याएँ व विचार हैं। कुछ की मान्यता है कि ये प्रतिमाएँ समकालीन समाज की जर्जर व कमजोर नैतिकता का प्रतिनिधित्व करती हैं। कुछ की धारणा है कि यह कामशास्त्र के पौराणिक ग्रंथों के रत्यात्मक आसनों का निदर्शन है। यह भी माना जाता है कि ये प्रतिमाएँ, कुछ विशेष मध्यकालीन भारतीय पंथ जो कि कामुक कृत्य को धार्मिक प्रतीकवाद मानते थे, का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये लोग मोक्ष पाने के लिए योग तथा भोग दोनों ही मार्गों का अनुसरण करते रहे होंगे। भारतीय कला, साहित्य तथा लोक परम्परा में हमेशा ही ऐसी मूर्तियों की उपस्थिति रही है। मिथुन प्रतिमाएँ तो शुंग काल की मूर्तिकला तथा मृण मूर्तियों में भी मौजूद थी।

लक्ष्मण मन्दिर, खजुराहो– यह वैष्णव मंदिर है। इस मंदिर को 930 से 950 ईस्वी के बीच, चंदेल शासक यशोवर्मन ने बनवाया था। इस मंदिर की लम्बाई 29 मीटर तथा चौड़ाई 13 मीटर है। स्थापत्य तथा वास्तु कला के आधार पर, बलुआ पत्थरों से बने मंदिरों में लक्ष्मण मंदिर सर्वोत्तम है। ऊँची जगत पर स्थित इस मंदिर के गर्भगृह में विष्णु की मूर्ति अलंकृत तोरण के बीच स्थित है। पूरा मंदिर एक ऊंची जगत पर स्थित होने के कारण मंदिर में विकसित इसके सभी भाग देखे जा सकते हैं। जिनके अर्द्धमंडप, मंडप, महामंडप, अंतराल तथा गर्भगृह में, मंदिर की बाहरी दीवारों पर प्रतिमाओं की दो पंक्तियां जिनमें देवी देवतागण, युग्म और मिथुन आदि हैं। मंदिर के बाहरी हिस्से की दीवारों तथा चबूतरे पर युद्ध, शिकार, हाथी, घोड़ों, सैनिक, अप्सराओं और मिथुनाकृतियों के दृश्य अंकित हैं। सरदल के मध्य में लक्ष्मी है तथा दोनों ओर ब्रह्मा एवं विष्णु हैं।

कंदरिया महादेव :– कंदरिया महादेव मंदिर, खजुराहो के मंदिरों में सबसे बड़ा, ऊंचा और कलात्मक यही मंदिर है। (चित्र संख्या–9) यह मंदिर 109 फुट लम्बा, 60 फुट चौड़ा और 116 फुट ऊँचा है। इस मन्दिर के सभी भाग– अर्द्धमण्डप, मण्डप, महामण्डप, अन्तराल तथा गर्भगृह आदि, वास्तुकला के बेजोड़ नमूने हैं। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणापथ है। यह मंदिर शिव को समर्पित है तथा इस मंदिर में शिवलिंग के अलावा अन्य देवी–देवताओं की कलात्मक मूर्तियाँ मन मोह लेती हैं। मन्दिर के प्रत्येक भाग में केवल दो और तीन फुट ऊँची मूर्तियों की संख्या ही 872 है। छोटी मूर्तियाँ तो असंख्य हैं। पूरी समानुपातिक योजना, आकार, आकर्षक मूर्तिकला एवं भव्य वास्तुकला की वजह से यह मंदिर मध्य भारत में अपनी तरह का शानदार मंदिर है। मंदिर में सोपान द्वारा अलंकृत कीर्तिमुख, नृत्य दृश्य युक्त तोरण द्वार से प्रवेश किया जा साकता है। बाहर से देखने पर इसका मुख्य द्वार एक गुफा यानी कि कंदरा जैसा नजर आता है, शायद इसीलिए इस मंदिर का नाम कंदरिया महादेव पड़ा है। गर्भगृह के सरदल पर विष्णु, उनके दाएँ ब्रह्मा एवं बाएँ शिव दिखाए गए हैं। चमड़े से जबरदस्त घिसाई करने के कारण यहाँ की मूर्तियों को दूर से देखने पर लगता है जैसे आप सैंड स्टोन से बने मंदिर को

नहीं बल्कि चंदन की लकडी से बनी कलाकृतियां देख रहे हैं। (चित्र संख्या–10) खजुराहो में 64 योगिनियों का खुला मन्दिर, खुरदुरे ग्रेनाइट पत्थर का बना हुआ है। उत्तरमुखी इस मन्दिर का निर्माण 900 ईस्वी में हुआ माना जाता है। जबकि 10वीं शताब्दी के मध्य में बने नागर शैली के उत्कृष्ट मन्दिर, चिकने बलुआ पत्थर से निर्मित हैं। यहाँ से ब्रह्माणी, इंद्राणी व महिषासुर मर्दिनी की प्रतिमाऐं प्राप्त हुई हैं।

खजुराहो में आठ जैन मन्दिर भी हैं। जैन मन्दिरों की वास्तुकला अन्य मन्दिरों के शिल्प से मिलती–जुलती है। सबसे बड़ा मन्दिर पार्श्वनाथ का है, जिसका निर्माण काल 950–1050 ई. है। यह 62 फुट लम्बा और 31 फुट

चित्र संख्या–10 अलंकृत स्तम्भ(खजुराहो)

चौड़ा है। इसकी बाहरी भित्तियों पर तीन पंक्तियों में जैन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

कन्दरिया महादेव मंदिर की बाहरी दीवारों पर अलंकरण का दृश्य कन्दरिया महादेव मंदिर की बाहरी दीवारों पर देवी–देवता, प्रमी–प्रेमिका एवं देवदूतों आदि की आकृतियों का विभिन्न मुद्राओं में उत्कीर्णन किया हुआ है। चित्र में संदर्भित दृश्य में विशेषतः नारी आकृतियों को विभिन्न भाव–भंगिमाओं में शृंगार रस के साथ दर्शाया गया है। नारी आकृतियों के चेहरे अण्डाकार, गोल व किंचित मुस्कान युक्त है तथा आंखें लम्बी व भौहें धनुषाकार हैं। इन मूर्तिशिल्पों में मांसल शरीर व क्रिया शीलता का सुन्दर समन्वय किया गया है। दैनिक क्रियाकलापों का आध्यात्मिक भावनाओं के साथ प्रस्तुतिकरण इन मूर्ति शिल्पों में देखा जा सकता है।

चोल कालीन कांस्य मूर्तिशिल्प :–

नटराज – यह मूर्तिशिल्प कांस्य धातु का बना हुआ है, जिसमें शिव को एक पैर पर खड़ी मुद्रा में नृत्य करते हुए ढ़ाला गया है। इसमें शिव को ताण्डव नृत्य करते हुए दिखाया गया है, जिसमें शिव की चार भुजाएँ विभिन्न मुद्राओं में है। शिव के दाहिने हाथ में स्थित डमरू की ध्वनि को सृजन का प्रतीक तथा दूसरे दाहिने हाथ की अभय मुद्रा को बुराईयों से रक्षा के प्रतीक के रूप में माना जाता है। बाएं हाथ की हथेली पर अग्नि को विनाश के प्रतीक के रूप में दिखाया गया है। दूसरा बांया हाथ उठे हुए बायें पैर की ओर इंगित करते हुए है। दायें पैर के नीचे अज्ञानता रूपी बौना राक्षस दबा पड़ा है। शिव के गले व हाथों में लहराते सर्प कुण्डलिनी शक्ति का परिचायक है। ब्रह्माण्ड के प्रतीक के रूप में ज्वालाओं को घेरे के रूप में बनाया गया है।

(चित्र संख्या–11)

इस सम्पूर्ण संयोजन में संतुलन एवं गति को भाव एवं सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसमें भारतीय कला के सम्पूर्ण सिद्धान्तों को प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। यह मूर्तिशिल्प दिल्ली के संग्रहालय में सुरक्षित है।

चित्र संख्या–11 नटराज

उमा पार्वती :–चोल शासन काल में बनी अनेक कांस्य प्रतिमाऐं प्राप्त हुईं है, जिनमें शिव (नटराज) के प्रतिमाओं के अलावा शिव की अर्धांगिनी उमा (पार्वती) के भी अनेक मूर्तिशिल्प विशेष रूप से उल्लेखनीय है। देवी उमा की इस

प्रतिमा में नारी सौन्दर्य को करूणा, वात्सल्य, प्रेरणा, शक्ति एवं आध्यात्मिकता के साथ संजोया गया है। त्रिभंगीय मुद्रा में देवी का दांया पैर कुछ आगे निकला हुआ है एवं शरीर का सम्पूर्ण भार बांए पैर पर प्रतीत होता है। बांया हाथ नीचे की ओर तिरछा एवं दायां हाथ ऊपर की ओर वक्षस्थल तक उठा हुआ है। मुखमण्डल पर शान्त भाव लिए हुए सम्पूर्ण शरीर नृत्यरत मुद्रा में है।

चित्र संख्या–12उमा(पार्वती)

वस्त्राभूषणों के रूप में अधोवस्त्र, सिर पर मुकुट एवं गले में हार, हाथों में कंगन, कमर में करधनी आदि का अलंकरण किया गया है। देवी के अंग प्रत्यंगों के छरहरेपन, तीखे नक्श एवं भावपूर्ण मूर्तन से सौन्दर्य सिद्धान्तों को परिलक्षित किया गया है।(चित्र सं–12)

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. मध्यकाल में बौद्ध हिन्दु और जैन धर्म से सम्बन्धित मूर्तन हुआ है।
2. एलोरा के सभी मंदिर बारदरी शैली (एकाश्म शैली) के हैं।
3. मध्यकालीन मंदिरों में महाबलीपुरम कांची के समुद्र तट पर निर्मित विशाल मंदिर है।
4. कोणार्क मंदिर सूर्य मंदिरों में सबसे प्रसिद्ध मंदिर स्थापत्य है।
5. 1838 में ब्रिटिश इंजीनियर कैप्टन टी.एसबर्ट ने खजुराहों मंदिरों की खोज की।
6. नटराज के मूर्तिशिल्प में भगवान शिव को ब्रह्माण्ड के प्रतीक रूप दिखाया है।
7. राजा कृष्ण राय प्रथम ने विश्व प्रसिद्ध कैलाश नाथ का मंदिर का निर्माण करवाया।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मध्यकालीन मूर्तिकला के प्रमुख केन्द्रों के नाम लिखो।
2. ऐलोरा के कैलाशनाथ मंदिर का निर्माण कब और किसने करवाया ?
3. ऐलिफेंटा के गुफा मंदिर किस धर्म से सम्बन्धित हैं, और कहाँ स्थित है ?
4. महाबलिपुरम के मुख्य मूर्तिशिल्प के नाम लिखो।
5. चोल कालीन कोई दो मूर्तिशिल्पों के नाम बताएं।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कोणार्क की प्रमुख मूर्तियों का उल्लेख करो।
2. नटराज मूर्ति किस माध्यम में निर्मित है व किस काल में बनी ?
3. गंगा अवतरण शिल्प का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मध्यकालीन मूर्तिकला पर निबन्ध लिखिए।
2. ऐलिफेंटा के वास्तु एवं मूर्तन की कलात्मक विशेषताएं लिखिए।
3. महाबलिपुरम के मूर्तिशिल्पों पर एक लेख लिखिए।
4. खजुराहों की मूर्तिकला पर विस्तार से टिप्पणी लिखिए।

अध्याय–10

राजस्थान की मूर्तिकला व मन्दिर स्थापत्य

राजस्थान में मूर्तिकला एवं मंदिर स्थापत्य का इतिहास काफी प्राचीन एवं समृद्ध रहा है। मूर्तिकला एव मंदिर स्थापत्य कला एक दूसरे से घनिष्ट रूप से अन्तर्सम्बन्धित है। इन दोनों ही कला क्षेत्रों का विकास धार्मिक भावनाओं के मार्गदर्शन में सांस्कृतिक विशिष्टताओं के अलंकरण के साथ हुआ।

मूर्तिकला की दृष्टि से विकास के क्रम में प्रारम्भिक स्वरूप आज से लगभग 4500 वर्ष पहले के कालीबंगा क्षेत्र (जिला हनुमानगढ) से प्राप्त हुए हैं। उदयपुर के पास आहड़ सभ्यता की खुदाई में भी कालीबंगा के समान खिलौने जैसी आकृतियाँ प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त बनास नदी घाटी सभ्यता से प्राप्त मूर्तिशिल्पों में भी प्राचीन नदी घाटी सभ्यता की कलागत विशेषताएं देखने को मिलती हैं। इन क्षेत्रों से मुख्यतः मिट्टी व धातु की बनी हुई छोटी मूर्तियाँ मिली है।

मौर्य एवं मौर्य के उत्तर काल में राजस्थान में मूर्तिकला के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई। टोंक जिले से कई मृण मूर्तियाँ एवं मुद्राएं प्राप्त हुई हैं जिनमें मातृदेवी, शिव पार्वती एवं खिलौने की आकृतियों के मूर्तिशिल्पों में सुन्दर भावाभिव्यक्ति हुई है। इन मूर्तिशिल्पों में वेशभूषा, आभूषणों व विभिन्न अंगों अद्भुत प्रकार से कलात्मक विशिष्टताओं को लिए हुए बनाया गया है।

शुंगकाल में राजस्थान की मूर्तिकला ने नवीन पथ का अनुसरण किया जिसमें जन सामान्य की रूचि व धार्मिक भावनाओं का प्रभाव रहा। इस काल में महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, कृष्ण, वासुदेव, वसुन्धरा आदि देवी देवताओं एवं फूल–पत्तों, जीव–जन्तुओं आदि विषय वस्तुओं को कलागत विशेषताओं के समावेश के साथ स्थापत्य (मन्दिर व स्तूप आदि)

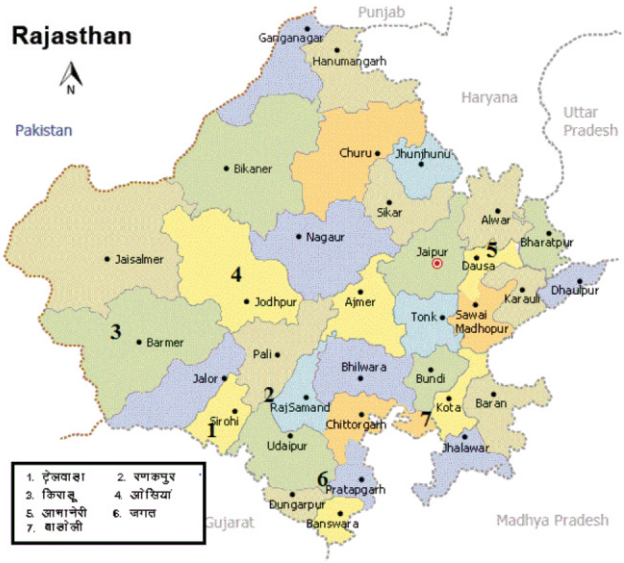

कला के अलंकरण में प्रयुक्त किया गया है। शुंगकालीन मूर्तिकला के प्रमुख क्षेत्रों में मध्यमिका, रंगमहल, नोह, नांद, मालवनगर, विराटनगर, लालसोट, सांगर, भांडपुर, नगर, सांभर, पीरनगर, अद्यापुर आदि शामिल किये जा सकते हैं।

मध्यमिका (चित्तौड़गढ़ के पास) बौद्ध व वैष्णव धर्म से सम्बन्धित विषयवस्तु को मूर्तिकला के माध्यम से जीवंत स्वरूप देने का प्रमुख स्थल रहा था।

रंगमहल से एकमुखी शिवलिंग, पशु, बेल–बूटें एवं स्त्री–पुरूष की विभिन्न आकृतियाँ मिली हैं। नोह (भरतपुर के पास) से यक्ष–यक्षी की प्रतिमाएँ व एक चतुर्मुख विशाल प्रतिमा प्राप्त हुई हैं। नांद (अजमेर के पास) से शिवलिंग की प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिसके अधोभाग में वैष्णव देव परिवार का अंकन इसे विशिष्ट बनाता है। कुषाणकालीन अनेक बुद्ध व बौधिसत्व प्रतिमाएँ भरतपुर क्षेत्र में प्राप्त हुई हैं। गुप्तकाल में राजस्थानी मूर्तिकला पहले की अपेक्षा और अधिक समृद्ध हुई तथा यह

काल भारत के संदर्भ में मूर्तिकला का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल के प्रमुख कला केन्द्रों में रंगमहल, भरतपुर, विराटनगर, कल्याणपुर, डूंगरपुर एवं रेड़ आदि उल्लेखनीय है। इन स्थानों से मुख्यतः शिव, विष्णु एव यक्षी आदि की प्रतिमाएं मिली हैं। गुप्तोत्तर काल की अनेक प्रस्तर की बनी हुई शिव प्रतिमाएं उपलब्ध हैं। इनका एक बड़ा संग्रह डूंगरपुर संग्रहालय में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय संग्रहालय (नई दिल्ली) व विश्व के अन्य संग्रहालयों में भी ये प्रतिमाएं संग्रहीत है। मेवाड़ (उदयपुर) एवं वागड़ (डूंगरपुर, बांसवाड़ा) क्षेत्र इन प्रतिमाओं समृद्ध स्रोत रहे हैं। राजस्थान के प्राचीनतम तिथियुक्त मन्दिर के रूप में चन्द्रभागा (झालावाड़) का शीतलेश्वर महादेव का मन्दिर प्रसिद्ध है। मध्यकाल मूर्तिकला की दृष्टि से काफी समृद्ध रहा है। पूर्व मध्यकालीन (600 ई. से 800 ई.) एवं उत्तर मध्यकालीन (900 ई. से 1300 ई.) मूर्तिकला अपने चरमोत्कर्ष पर थी। इस समय के मन्दिरों में देव प्रतिमाएं विभिन्न स्वरूपों में शास्त्रानुसार परिकल्पना के साथ जीवंत हुई हैं। मध्यकालीन मूर्तिकला के केन्द्रों में आभानेरी, आबू, अटरू, किराडू, बाड़ोली, ओसियां, नागदा, चित्तौडगढ़ एवं सीकर आदि प्रमुख हैं। आभानेरी (जिला दौसा) स्थित हर्षतमाता के मन्दिर की मूर्तियां विशिष्ट मुद्राओं के लिए प्रसिद्ध है। अटरू (हाडौती क्षेत्र) के शिवमन्दिर की पार्वती की मूर्ति अत्यन्त सुन्दर व कलात्मक लक्षणों को लिए हुए है। जैन धर्म से सम्बन्धित प्रतिमाएँ नाडोल (पाली), लाडनू (नागौर) औसियाँ (जोधपुर), देलवाड़ा (सिरोही), रणकपुर (पाली), पल्लू (हनुमानगढ़), झालरापाटन (झालावाड़) केशवरायपाटन (बूंदी) आदि स्थलों पर सुन्दर रचना व अभिव्यक्ति के साथ देखी जा सकती हैं।

आधुनिक भारतीय (12वीं शताब्दी से अब तक) मूर्तिकला के युग में निर्मित कीर्तिस्तम्भ (चित्तौडगढ़) को भारतीय मूर्तिकला का शब्दकोष भी कहा जाता है। जगदीष मंदिर, उदयपुर में स्थित है जिसमें भगवान जगदीश की सुन्दर प्रतिमा स्थापित है। आमेर में जगत शिरोमणी मन्दिर एवं शिलादेवी मन्दिर स्थित है। शिलादेवी मन्दिर में पालयुगीन शिलादेवी की प्रतिमा है जिसे राजा मानसिंह बंगाल से लाये थे। नाथद्वारा में श्रीनाथजी, कांकरोली में द्वारिकाधीश, कोटा में मथुरेशजी, जयपुर में गोविन्ददेवजी एवं बीकानेर में रत्नबिहारी आदि मन्दिरों में देव प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

मन्दिर स्थापत्य कला की दृष्टि से राजस्थान का उत्तरी भारत में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सातवीं शताब्दी से पहले राजस्थान में जो मन्दिर बने थे उनके केवल अवशेष मात्र ही बचे हैं। इनके बाद सातवीं से दसवीं शताब्दी में यहाँ अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ तथा कई क्षेत्रीय शैलियों का विकास भी हुआ। आठवीं शताब्दी में गुर्जर–प्रतिहार क्षेत्रीय शैली का विकास हुआ, जिसके उदाहरणों में नीलकण्ठेश्वर मन्दिर (केकीन्द, मेड़ता) एवं सोमेश्वर मन्दिर (किराडू, बाड़मेर) आदि प्रमुख हैं। गुर्जर–प्रतिहार शैली से कुछ भिन्न मन्दिरों के रूप में अम्बिका माता मन्दिर (जगत, उदयपुर), सास–बहु का मन्दिर (नागदा, उदयपुर) एवं शिव मन्दिर (बाड़ोली, चित्तौडगढ़) आदि के नाम लिये जा सकतें हैं। दक्षिणी राजस्थान में स्थित इन मन्दिरों में शैलीगत तत्वों की विविधता व गुजरात का प्रभाव दिखाई देता है।

उत्तरमध्य कालीन राजस्थान के मन्दिर संख्या में अधिक तथा अलंकृत हैं। ये मन्दिर मारू–गुर्जर शैली में बने हैं। इस शैली के मन्दिरों के द्वार सजावटी, खम्भें अलंकृत तथा पीठिका ऊँची है। ओसियां का सचिया माता मन्दिर तथा चित्तौड़गढ का समिंधेश्वर मन्दिर आदि इसी प्रकार के उदाहरण हैं। राजस्थान में स्थित जैन मन्दिर वास्तुकला की दृष्टि से विश्व विख्यात हैं। इन जैन मन्दिरों का निर्माण जैन धर्म की पूजा पद्धति, मान्यताओं, भावनाओं एवं आदर्शों के समावेश के साथ हुआ है जो विशिष्ट तल विन्यास, संयोजन एवं अलंकरण की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं।

इन जैन मन्दिरों में देलवाड़ा के मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। रणकपुर, औसियाँ एवं जैसलमेर में स्थित जैन मन्दिर भी कलात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट श्रेणी के हैं। अन्य उल्लेखनीय जैन मन्दिरों में धाणेराव एवं सेवादी (पाली), वर्माण (सिरोही), चाँदखेड़ी व झालरापाटन (झालावाड़), कशोरायपाटन (बूंदी) एवं श्रीमहावीर जी (करौली) आदि स्थानों के मन्दिर प्रमुख हैं।

देलवाड़ा :–

यह स्थान माउण्ट आबू (जिला सिरोही, राजस्थान) से लगभग 2) किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ के जैन मन्दिर स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला की दृष्टि से पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। यहाँ पर पाँच मन्दिरों का समूह है। इस समूह के

पाँच मन्दिर – 1. विमलशाही मन्दिर, 2. लूणवसही मन्दिर, 3. पार्श्वनाथ या चौमुखा मन्दिर, 4. पीतलहर मन्दिर एवं 5. महावीर स्वामी मन्दिर हैं। विमलवसही मन्दिर एवं लूण वसही मन्दिर कलात्मक दृष्टिकोण से देलवाड़ा के शेष अन्य मन्दिरों से श्रेष्ठ हैं। इनका निर्माण 11वीं से 13वीं शताब्दी के दौरान गुजरात के सोलंकी शासकों के मंत्रियों द्वारा करवाया गया था।

देलवाड़ा के मन्दिरों में विषयवस्तु की दृष्टि से काफी विविधता देखने को मिलती है। कमल के पुष्पों, पंक्तिबद्ध सिंहों, नर्तक–वादक, हंस (पक्षी), यक्षिका, महाविद्या, गजलक्ष्मी, जैन श्रावक–श्राविका व कृष्ण लीला आदि विषयवस्तु को अद्भुत तरीके से मन्दिर के विभिन्न भागों में मूर्तिशिल्पों के रूप में जीवंत किया गया है। मन्दिर के गर्भगृह व अन्य स्थानों पर जैन तीर्थंकरों को प्रमुखता के साथ सम्मानपूर्वक एवं आध्यात्मिक भावनाओं के साथ अराध्य देव के रूप में स्थान मिला है। इन मन्दिरों में राजस्थान–गुजरात की सोलंकी (चालुक्य) शिल्पकला शैली के प्रमुखता से दर्शन होते हैं। यहाँ बेल–बूटे, जालियां, नक्काशीदार मेहराब, अलंकृत स्तम्भ एवं गुम्बद आदि दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र हैं। यहाँ जैन धर्म के साथ–साथ हिन्दू धर्म के पौराणिक आख्यानों का भी मूर्तन हुआ है। राग रागिनी, संगीतज्ञों, नर्तकियों, यक्ष–यक्षी एवं विद्या की देवियों का सौन्दर्यपूर्ण अंकन हुआ है। मन्दिरों के गर्भगृह में जैन तीर्थंकर आदिनाथ, नेमीनाथ, पर्श्वनाथ एवं महावीर स्वामी की मूर्तियाँ स्थापित हैं। मन्दिर की मूर्तियों में गोल एवं छोटा मुख तथा तीखे नयन नक्श का अंकन हुआ है। अलंकरणों की अत्यधिकता व आकृतियों की पुनरावृति को इन मन्दिरों की शिल्पकला के प्रमुख दोष के रूप से माना जा सकता है।

विमलशाही मन्दिर– देलवाड़ा में स्थित पाँच मन्दिरों के समूह में विमलशाही मन्दिर सबसे प्राचीन है। (चित्र संख्या–1)

चित्र संख्या–1 विमल शाही मंदिर

इसका निर्माण 1031ई. में गुजरात के सोलंकी शासक भीमदेव (प्रथम) के मंत्री विमल शाह ने करवाया था। इस मन्दिर को बनाने में उस समय लगभग 19 करोड़ रुपये खर्च हुए तथा 1500 शिल्पियों और 1200 श्रमिकों ने 14 वर्षों के अथक परिश्रम से इसे मूर्ति एवं शिल्प कला के एक उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में स्थापित किया। इसके निर्माण में प्रयुक्त संगमरमर के पत्थर को गुजरात में स्थित अम्बाजी से हाथियों पर लाद कर यहाँ लाया गया था। यह मन्दिर प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) को समर्पित है तथा गर्भगृह में आदिनाथ की सफेद संगमरमर से बनी प्रतिमा स्थापित है। यह मन्दिर अपनी अद्भुत अलंकृत नक्काशी एवं शिल्प कला की उत्कृष्टता से दर्शकों को आश्चर्य चकित करता है। इसे मुख्यतः तीन भागों में विभेदित किया जा सकता है। 1. गर्भगृह, 2. रंग मण्डप एवं 3. प्रदक्षिणा पथ।

इस मन्दिर के गर्भगृह में श्वेत संगमरमर से बनी प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ की (लगभग 2 मीटर ऊँची) प्रतिमा स्थापित है। इस प्रतिमा में तीर्थंकर को आसनस्थ मुद्रा में आध्यात्मिक ओज़ के साथ दर्शाया गया है। इस मूर्तिशिल्प में नासाग्र दृष्टि, श्रीवन्स चिह्न, अजानबाहु व कुन्तल केश विन्यास के साथ आध्यात्मिक भावनाओं का सुन्दर सम्मिश्रण किया गया।

मन्दिर के प्रदक्षिणापथ में 57 कोठरियाँ या देव कुलिकाएँ बनी हुई हैं। देव कुलिकाओं में विभिन्न तीर्थकरों की आकर्षक प्रतिमाएँ लगी हुई हैं। कुलिकाओं के सामने की छत दो–दो गुम्बदों के रूप में विभेदित है, जिनमें सुन्दर शिल्पाकृतियों का उत्कीर्णन किया हुआ है। इन शिल्पाकृतियों में सिंह, नर्तक–वादक, कमलपुष्प, गजलक्ष्मी, कृष्ण की जलक्रीड़ा एवं तीर्थंकरों के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं आदि को जीवन्तता के साथ संजोया गया है। प्रदक्षिणापथ में महामानसी, रोहिणी, अप्रतिचक्रा, सरस्वती एवं महालक्ष्मी आदि की प्रतिमाएँ भी विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। अष्टभुजाकार एवं आठ मीटर व्यास वाला रंगमडप इस मन्दिर का सबसे अधिक अलंकृत कलात्मक एवं आकर्षक भाग है। इसका निर्माण 1149 ई. में पृथ्वीपाल ने करवाया था। इसकी छत 6.6 मीटर के गोलाकार गुम्बद के रूप में बनी है। यह गुम्बद 12 अलंकृत स्तम्भों एवं तोरणों पर आश्रित है। गुम्बद में हाथियों,

चित्र संख्या–2 अलंकरण (देलवाड़ा)

हंसों, अश्वों एवं नर्तकों आदि आकृतियों के ग्यारह संकेन्द्रित वलय बने हैं। गुम्बद् के केन्द्र में नीचे की ओर झूलती हुई स्थिति में झूमकों को उत्कीर्ण किया गया है। गुम्बद के परिधीय भाग में 16 महाविद्या देवियों को खड़ी हुई स्थिति में सुन्दरता के साथ साकार किया गया है। रंगमण्डप के स्तम्भों पर वाद्ययंत्र बजाते हुए नारियों को उत्कीर्ण किया गया है।

लूणवसही मन्दिर– इस मन्दिर का निर्माण गुजरात के सोलंकी राजा भीम देव द्वितीय के मंत्री वास्तुपाल एवं तेजपाल ने 1232 ई. में करवाया था। इसे बनाने में 2500 श्रमिकों ने 15 वर्षों तक अथक परिश्रम किया तथा निर्माण में साढे बारह करोड़ रुपये की लागत आई। रचना की दृष्टि से यह मन्दिर विमलशाही मन्दिर के ही समान है, लेकिन आकार अपेक्षाकृत छोटा है। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह मन्दिर भी उत्कृष्ट श्रेणी का है। इसके गर्भगृह में जैन तीर्थंकर नेमीनाथ की काले रंग की प्रतिमा स्थापित है। गर्भगृह के प्रवेशद्वार के दोनों ओर देवरानी एवं जेठानी के दो आले बने हुए हैं, जिनमें तीर्थंकर आदिनाथ एवं शान्तिनाथ की प्रतिमाएं लगी हुई है। ये दोनों ही आले शिल्पकला की दृष्टि से अद्भुत हैं।

इसके प्रदक्षिणापथ में 52 कुलिकाएं हैं, जिसमें विभिन्न तीर्थंकरों की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं तथा इनके सामने छतों पर पुष्प, हाथी, घोड़ें, पालकी, हंस, अम्बिका देवी, नर्तकियों, सैनिकों एवं भगवान नेमीनाथ के जीवन से सम्बन्धित प्रसंगों का अंकन अत्यन्त कुशलता के साथ किया गया है।

रंगमण्डप की छत का अलंकरण विस्मयकारी है। छत के मध्य में अलंकृत दण्ड बहुत ही आकर्षक लगता है। स्तम्भ शीर्ष पर 16 विद्या देवियों की खड़ी हुई स्थिति में सुन्दर प्रतिमाओं को बनाया गया है। रंगमण्डप में इन्द्र एवं कृष्ण लीला से सम्बन्धित दृश्यों तथा 68 नर्तकियों की आकृतियों का उत्कीर्णन अत्यन्त मनोहारी है। मण्डप की छत पर तीर्थंकरों की आकृतियाँ भी उत्कीर्ण हैं। (चित्र संख्या–2)

पीतलहर मन्दिर (ऋषभ देव मन्दिर) :–इसका निर्माण 1374 ई. से 1433 ई. के मध्य गुजरात के भामाशाह ने करवाया था। यह मन्दिर प्रथम जैन तीर्थकर ऋषभदेव या आदिनाथ को समर्पित किया गया है। मन्दिर में स्थापित भगवान आदिनाथ की प्रतिमा पंच धातु की बनी हुई है, लेकिन इसमें मुख्य रूप से पीतल का उपयोग होने के कारण इसे पीतलहर नाम से जाना जाता है।

पार्श्वनाथ मन्दिर :–यह विशाल मन्दिर तीन मंजिला है। इसका मन्दिर निर्माण मण्डलिक एवं उसके परिवार के लोगों ने 1458–59 ई. में करवाया था। यह मन्दिर 23वें जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ को समर्पित है। गर्भगृह की चारों दिशाओं में चार विशाल मण्डप बने हुए है, जिनके सामने संगमरमर से बनी पार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापित है। बलुआ पत्थर से बने इस मन्दिर के गर्भगृह की बाहरी दिवारों पर यक्षिणियों, दिक्पालों, विद्यादेवियों एवं स्त्रियों की आकर्षक शिल्पकृतियाँ बनी हुई है।

महावीर स्वामी मन्दिर :–इसका निर्माण 1582 ई. में करवाया गया था। देलवाड़ा के पाँच जैन मन्दिरों के समूह में यह मन्दिर सबसे छोटा एवं सामान्य प्रकार का है। यह मन्दिर अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी को समर्पित है।

रणकपुर :–

जैन धर्मावलम्बियों के पाँच प्रमुख धर्म स्थलों में एक रणकपुर भी है। यह स्थान पश्चिमी मारवाड़ के पाली जिले में सादड़ी गाँव से 8 किमी दूरी पर स्थित है। इस स्थान का नाम राणा कुम्भा के नाम पर रणपुर रखा गया था, जो वर्तमान में रणकपुर के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ के प्राचीन जैन मन्दिर अपनी स्थापत्य एवं मूर्तिकला के लिए विश्वविख्यात है। महाराणा कुम्भा के शासन काल में वास्तुकला को अत्यधिक प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्राप्त था। उन्हीं के शासन काल में (15वीं शताब्दी में) इन अलंकृत स्तम्भों वाले अद्भुत जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ था। (चित्र संख्या–3) रणकपुर में ही आठवीं शताब्दी का एक सूर्य मन्दिर भी स्थित है। इन मन्दिरों में सबसे

चित्र संख्या–3 रणकपुर

प्रमुख मन्दिर चौमुखा मन्दिर है। इनके अलावा यहाँ तीर्थंकर पार्श्वनाथ एवं नेमीनाथ के दो छोटे मन्दिर भी स्थित हैं।

आदिनाथ मन्दिर या चौमुखा मन्दिर :–

इस मन्दिर की स्थापना 1439 ई. में हुई थी तथा इसके निर्माण में 50 वर्षों से भी अधिक समय लगा था। यह मन्दिर आकर्षक एवं विशाल (48400 वर्गफीट) है, जिसके निर्माण में उस समय लगभग 99 लाख रुपये की लागत आने का अनुमान लगाया जाता है। इसे आचार्य सोमसुन्दर सूरीजी की प्रेरणा से धरणाशाह एवं रत्नाशाह नामक भाइयों ने बनवाया था। मन्दिर का निर्माण कार्य देपाक नामक मुख्य शिल्पी के मार्गदर्शन में सैकड़ों सिद्धहस्त शिल्पियों ने निरन्तर अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप विक्रम सम्वत् 1496 में सम्पन्न हुआ था। इसकी दीवारों के लिए सोनाणा का पत्थर व आधार तल के लिए सेवादी का पत्थर तथा कुछ विशिष्ट मूर्तियों को बनाने के लिए बाहर से भी पत्थर मंगवाया गया था। चौमुखा मन्दिर को आदिनाथ मन्दिर, त्रैलोक्य दीपक, त्रिभुवन विहार, धरण विहार, खम्भों का अजायबघर आदि नामों से भी जाना जाता है।

इस तिमंजिला मन्दिर की चारों दिशाओं में चार कलात्मक प्रवेश द्वार हैं। प्रवेश द्वार से अंदर आने पर सभामण्डप व मेघनाद मण्डप आते हैं। इस मन्दिर में कुल 24 मण्डप, 85 शिखर एवं 1444 अलंकृत स्तम्भ कला की उत्कृष्टता का बखान करते प्रतीत होते हैं। यह मन्दिर प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ को समर्पित है। अतः इसके गर्भगृह में आदिनाथ (ऋषभदेव) की 4 प्रतिमाएं चारों दिशाओं की ओर उन्मुख होती हुई स्थापित हैं। आदिनाथ की ये आसीन प्रतिमाएं विशाल हैं तथा संगमरमर की बनी हुई हैं। अतः इस मन्दिर को चतुर्मुख मन्दिर या चौमुखा मन्दिर के नाम से भी जाना जाता है। यह मन्दिर वास्तुकला एवं मूर्तिकला का एक अद्भुत उदाहरण है। इसके भीतरी भाग में अलंकृत तोरण द्वार, कलात्मक मण्डप एवं देवकुलिकाओं में स्थित आकर्षक प्रतिमाएं, इस मन्दिर को एक आलौकिक स्वरूप प्रदान करती हैं। इसीलिए इस मन्दिर को 'त्रलोक्य दीपक' भी कहा जाता है।

इस मन्दिर की परिक्रमा में देव कुलिकाएं बनी हैं, जिनमें बनी प्रतिमाओं में शारीरिक सौन्दर्य, भावभंगिमाएं, प्रफुल्लित मुखमण्डल, तीक्ष्ण भौहें, बड़े नेत्र, अद्भुत केशविन्यास, क्षीण कटि, मनमोहक शारीरिक मुद्राएं, भावाभिव्यक्त हस्तमुद्राएं, पारदर्शी वस्त्र व कलात्मक आभूषणों के अंकन की उत्कृष्टता ने निर्जीव प्रस्तर में प्राणों की अनुभूति करवाई है। परिक्रमा पथ में उत्कीर्ण विभिन्न देवी–देवताओं की प्रतिमाओं में भावाभिव्यक्ति का सुन्दर एवं अद्भुत प्रदर्शन देखने को मिलता है। इन मूर्तिशिल्पों में विष्णु, सरस्वती, पशुपक्षियों एवं बेलबूटों का सुन्दर अंकन किया गया है। (चित्र संख्या–4) स्त्री को वेणी गुन्थते हुए, पैरों में घुंघरू बांधते हुए, पाँव में चुभे कांटे को निकालते हुए, संगीत में लीन, शिशु के साथ क्रीड़ा में मग्न एवं आभूषण सजाते हुए आदि स्वरूपों को विविध

चित्र संख्या–4 अलंकरण(रणकपुर)

भावभंगिमाओं के साथ मूर्तिशिल्पों में जीवन्त किया गया है।

रंग मण्डप (सभा मण्डप) के तौरणद्वारों में अत्यन्त सूक्ष्म तक्षण कार्य किया गया है। इसकी छत व गुम्बद कलात्मक विशिष्टता लिए हुए है। गुम्बद के परिधीय भाग में विभिन्न मुद्राओं व भावभंगिमाओं के साथ वाद्ययन्त्र बजाते हुए व नृत्यरत नारी आकृतियां एक घेरे में बनाई गई हैं। रंगमण्डप मे बेलबूटों, ज्यामितीय अलंकरणों व अद्‌भुत कलात्मक जालियों का प्रयोग बहुतायत से किया गया है। मण्डपों की छतों में लटकते हुए पाषाण झूमरों से मण्डप के सौंदर्य में अपार वृद्धि हुई है।

इस मन्दिर के 1444 खम्भें तत्कालीन तक्षण कला में शिल्पियों की कुशलता का दृढ प्रमाण देते हुए प्रतीत होते हैं। प्रत्येक स्तम्भ (खम्भे) के उत्कीर्ण अन्य स्तम्भों से भिन्न एवं उत्कृष्ट हैं। ये स्तम्भ मन्दिर में इस प्रकार से स्थापित है कि अराध्य तीर्थंकर आदिनाथ के दर्शन करने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करते। सुन्दर नक्काशी युक्त ये स्तम्भ मन्दिर के कलात्मक सौन्दर्य का सबसे प्रमुख व आकर्षक भाग हैं।

विषयवस्तु की दृष्टि से यह मन्दिर काफी विविधता रखता है। इसमें जैन तीर्थकरों के अलावा भी अन्य देवी–देवताओं, यक्ष–यक्षिणी, वानर, किन्नर, नृत्यांगनाओं व जैन धर्म से सम्बन्धित दृश्यों आदि विषयवस्तुओं को साकार रूप प्रदान किया गया है। नारी आकृतियों में विभिन्न भावभंगिमाओं एवं शारीरिक मुद्राओं का अद्‌भुत एवं मनोहारी अंकन हुआ है। मंदिर की छत पर शिखरों की कतार मन्दिर की भव्यता व शिल्पकला के कौशल का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करती है। मन्दिर के भूतल में सुरक्षा की दृष्टि से कुछ कमरे भी बनवाये गये थे। मन्दिर का बहिरंग भाग मूर्तिशिल्प रहित है।

पार्श्वनाथ के छोटे मन्दिर बाहरी भाग पर खजुराहो जैसे श्रृंगारिक मूर्तिशिल्पों का अंकन देखा जा सकता है।

इस मन्दिर के मूर्तिशिल्प में नारी की क्लिष्ट मुद्राओं का अंकन किया गया है, जो अतिरंजनापूर्ण प्रतीत होती है।

किराडू :–

यह स्थल बाड़मेर से लगभग 40 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह राजस्थान के खजुराहों के नाम से भी प्रसिद्ध है। इतिहासकारों के अनुसार यहाँ के मन्दिरों का निर्माण 11वीं शताब्दी में परमार वंश के राजा दुलशालराज एवं उनके वंशजों ने करवाया था। (चित्र संख्या–5) यह स्थल पहले 'किराट कूप' के नाम से जाना जाता था। वर्तमान में यहाँ (किराडू में) पाँच मंदिरों की श्रृंखला के खंडहरनुमा एवं जर्जर स्थिति में अवशेष देखने को मिलते है। इस क्षेत्र में फैले अवशेषों से पता चलता है कि किराडू अपने समय का एक महत्त्वपूर्ण मूर्तिकला का केन्द्र रहा था। इसके साथ ही किराडू व्यापार एवं संस्कृति का भी समृद्ध केन्द्र था। यहाँ स्थित पाँच मन्दिरों के समूह में वैष्णव एवं शैव मन्दिर बने हैं, जिसमें अधिकांश भग्नावशेषों के रूप में ही उपलब्ध हैं। किराडू के मन्दिरों में सोमेश्वर मन्दिर सबसे बड़ा, आकर्षक, सुन्दर व भगवान शिव को समर्पित है। मारू–गुर्जर शैली के इस मन्दिर में गर्भगृह, सभा मण्डप, द्वार मण्डप एवं मूल प्रासाद बने हैं। सभा मण्डप की छत को आठ अलंकृत स्तम्भों ने धारण किया हुआ था, लेकिन वर्तमान में इनके भग्नावशेष ही देखे जा सकते हैं। ये स्तम्भ अष्ठकोणीय, लम्बे एवं अलंकरणों से सुसज्जित हैं। स्तम्भों पर घट पल्लव, मकरमुख, पत्रपल्ली एवं कीर्तिमुख आदि का अलंकरण कुशलता के साथ किया गया है। मन्दिर के गर्भगृह का अधिकांश भाग अब भी सुरक्षित है।

चित्र संख्या–5 किराडू

इस मन्दिर के विभिन्न भागों में हिन्दू देवी–देवताओं की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। काले एवं नीले रंग के पत्थरों पर हाथी, घोड़े तथा विभिन्न भाव भंगिमाओं के साथ नारी आकृतियों का उत्कीर्णन इस मन्दिर की कलात्मक उत्कृष्टता एवं कुशलता को दर्शाती हैं। मन्दिर की दीवारों व स्तम्भों पर कलात्मक नमूनों (मोटिफ) की भरमार देखने को मिलती है।

किराडू के मन्दिरों में विष्णु मन्दिर भी उल्लेखनीय है। यह मन्दिर 'सोमेश्वर मन्दिर' की अपेक्षाकृत आकार में छोटा है तथा भगवान विष्णु को समर्पित है। यह स्थापत्य एवं तक्षण कला की दृष्टि से काफी समृद्ध है।

किराडू के मन्दिरों में विषयवस्तु की दृष्टि ये हिन्दू देवी–देवता, रामायण एवं महाभारत के प्रसंग, हाथी, घोड़े, विभिन्न मुद्राओं में नारी, द्वारपाल, शिवगण, त्रिदेव–ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गंगा–यमुना एवं कलात्मक नमूनों को प्रमुखता से स्थान दिया गया है। ब्रह्मा–सावित्री, उमा–महेश्वर एवं लक्ष्मी–नारायण की प्रतिमाएँ काफी आकर्षक हैं।

ओसियाँ :–

यह स्थान जोधपुर से लगभग 57 किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण–पश्चिम दिशा में स्थित है। यहाँ के जैन एवं ब्राह्मण मन्दिर उत्कृष्ट स्थापत्य एवं मूर्तिकला के लिये प्रसिद्ध हैं। यह स्थल ओसवाल जैनियों के मूल स्थान के रूप में भी महत्त्वपूर्ण है। आठवीं एवं नवीं शताब्दी में यह व्यापारियों और जैन व वैष्णव धर्मावलम्बियों का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ लगभग 16 हिन्दू एवं जैन मन्दिरों के अवशेष देखे जा सकते हैं। गुर्जर–प्रतिहार शैली में बने इन मन्दिरों में शिव, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा, अर्द्धनारीश्वर, महिषमर्दिनी, नवग्रह, कृष्ण, हरिहर, सचिया माता, भगवान महावीर, पीपला माता एवं दिक्कपाल आदि प्रमुख है। यहाँ के वैष्णव, जैन व शाक्त मन्दिरों में धार्मिक एकता, समन्वय एवं सौहार्द की झलक देखने को मिलती है। ये मन्दिर दो स्थलों पर केन्द्रित हैं। 8वीं–9वीं शताब्दी के मन्दिर ओसियाँ में तथा 10वीं–11वीं शताब्दी के मन्दिर ओसियाँ के निकट ही पूर्व दिशा में एक पहाड़ी पर स्थित है।

सचिया माता का मन्दिर– सचिया माता मन्दिर का निर्माण 1178 ई. में परमार शासक उपेन्द्र ने करवाया था। सचिया माता परमार शासकों की कुल देवी थी तथा ओसवाल जैन धर्मावलम्बियों की कुल देवी के रूप में भी जानी जाती है। यह मन्दिर ओसियाँ

चित्र संख्या–6 सचिया माता मंदिर

ग्राम के पास एक पहाड़ी पर बना हुआ है। इस मन्दिर तक पहुँचने के लिए बनी सीढ़ियों पर नौ तौरण द्वार बने हैं जो शक्ति के नौ रूपों को समर्पित हैं। मन्दिर के चारों ओर कई वैष्णव मन्दिर बने हुए हैं। मन्दिर परिसर में स्थित चण्डी मां मन्दिर, अम्बा माता मन्दिर व सूर्य मन्दिर भी दर्शनीय हैं। मन्दिर में उत्कीर्ण गणेश एवं दुर्गा की प्रतिमाएं दर्शकोंव श्रद्धालुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है।

सचिया माता मन्दिर के मुख्य गर्भगृह में श्याम वर्ण की मां सचिया की प्रतिमा स्थापित है। गर्भगृह के सामने स्थित मण्डप में हवन कुण्ड भी बना है तथा शिखर पर स्वर्ण कलश एवं ध्वज सुशोभित है। मंदिर के दरवाजों पर पौराणिक एवं लोक कथाओं का अंकन किया गया है। मारू (गुर्जर–प्रतिहार) शैली में बना यह मन्दिर हिन्दू एवं जैन दोनों सम्प्रदायों के लिए एक प्रमुख पवित्र धार्मिक स्थल है।(चित्र संख्या–6)

पीपला माता मन्दिर :–10–11 वीं सदी में बना यह शाक्त मन्दिर सूर्य मन्दिर के पास ही स्थित है। इसके गर्भगृह में महिषमर्दिनी एवं कुबेर की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। यहाँ 30 स्तम्भों का एक सभा भवन भी बना हुआ है। इसके शिखर का शीर्ष भाग भग्नावस्था में है। यह मन्दिर ऊँचें चबूतरे पर बना हुआ है।

जैन मन्दिर :–

ओसियाँ के जैन मन्दिरों में महावीर मन्दिर महत्त्वपूर्ण है। इस मन्दिर का निर्माण प्रतिहार नरेश वत्सराज (770–800ई.) ने 783 ई(आठवी शताब्दी) में करवाया था। यह मन्दिर अन्तिम जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी को समर्पित है। इसके मुख्य गर्भगृह में महावीर स्वामी की पद्मासन मुद्रा में स्वर्ण पर्त चढ़ी प्रतिमा (32 इन्च) स्थापित है, जिसके पार्श्व में दो

चित्र संख्या–7 जैन मंदिर ओसियां

काले संगमरमर से बनी पार्श्वनाथ के मूर्तिशिल्प भी दर्शनीय है। गर्भगृह के सामने सभा गृह एवं खुला मण्डप है। इस मन्दिर का तौरणद्वार अत्यन्त आकर्षक अलंकृत एवं भव्य बना हुआ है। मन्दिर के विभिन्न हिस्सों में जैन तीर्थंकरों, देवी देवताओं एवं यक्ष–यक्षिणियों को उत्कीर्ण देखा जा सकता है।

बलुआ पत्थर से बना यह मन्दिर कलात्मक रूप से अन्य मन्दिरों से उत्तम है तथा ओसियाँ के जैन मन्दिरों में सर्वाधिक सम्पूर्णता लिए हुए है।

वैष्णव मन्दिर – ओसियाँ के वैष्णव मन्दिरों में हरिहर एवं सूर्य मन्दिर महत्त्वपूर्ण हैं। (चित्र संख्या–7)

हरिहर मन्दिर :– यह तीन मन्दिरों का समूह है, जो हरिहर को समर्पित है। हरिहर स्वरूप भगवान विष्णु एवं शिव का समेकित रूप है। ये मन्दिर ऊँचे उठे हुए चबूतरे पर बने हैं। इनमें से दो मन्दिर 8वीं शताब्दी का तथा तीसरा मन्दिर 9वीं शताब्दी का बना हुआ है। स्थापत्य कला की दृष्टि से ये मन्दिर ओसियाँ के मन्दिरों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

सूर्य मन्दिर इस मन्दिर के मुख्य भागों में गर्भगृह, अन्तराल, प्रदक्षिणा पथ, सभामण्डल व द्वार मण्डप उल्लेखनीय हैं। जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है, यह मन्दिर भगवान सूर्य को समर्पित है लेकिन इस मन्दिर के गर्भगृह में कोई देव प्रतिमा स्थापित नहीं है। गर्भ गृह का प्रवेश द्वार अलंकरणों से परिपूर्ण है। जिसके सिरदल पर लक्ष्मीनारायण, ब्रह्मा, शिव, गणेश एवं कुबेर की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह के बाहर महिषमर्दिनी, सूर्य एवं गणेश की प्रतिमाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। छत पर कमल पर लिपटे सर्पों की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह के सामने स्तम्भयुक्त खुलामण्डप है। इस मन्दिर में शैव एवं वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित आकृतियों का उत्कीर्ण मुख्य रूप से किया गया है। यह मन्दिर भी एक ऊँचे चबूतरे पर बना है तथा इसके निर्माण में भी बलुआ पत्थर का उपयोग हुआ है।

आभानेरी :–

दौसा जिले के सिकन्दरा कस्बे से उत्तर की ओर तथा बाँदीकुई से सात किलोमीटर की दूरी पर आभानेरी नामक एक छोटा गाँव स्थित है। इसका पुरातन नाम 'आभा नगर' (चमकदार नगर) था। यह गुर्जर–प्रतिहार काल में कला का एक समृद्ध केन्द्र था। पुरातत्व विभाग को प्राप्त अवशेषों के अनुसार आभानेरी का इतिहास लगभग 3000 साल पुराना है। मिहिर भोज को राजा चाँद के नाम से भी जाना जाता है। राजा चाँद ने आभानेरी में कई अद्‌भुत एवं आकर्षक शिल्पाकृतियों का निर्माण करवाया था, जिनके कुछ अवशेष जयपुर एवं आमेर के संग्रहालयों में भी सुरक्षित है तथा शेष मूल स्थान पर स्थित हैं। यहाँ की स्थापत्य एवं शिल्पाकृतियों में आठवी–नवीं सदी का हर्षत माता का मन्दिर एवं चाँद बावड़ी प्रसिद्ध है। हर्षत माता के मन्दिर का निर्माण 8वीं–9वीं शताब्दी में चौहान वंशीय राजा चाँद ने करवाया था। यह मन्दिर 11वीं शताब्दी में महमूद गज़नवी (1021 ई. से 1026 ई.) के आक्रमण से क्षतिग्रस्त हुआ था। वर्तमान में उपस्थित मूर्तिशिल्पों व स्थापत्य के अवशेष भी अधिकांशतः भग्नावशेषों के रूप में ही मिलते हैं। इस मन्दिर का वर्तमान स्वरूप प्राचीन मन्दिर के भग्नावशेषों से ही पुनर्निर्मित किया गया है। जनश्रुति के अनुसार इस मन्दिर के गर्भगृह में हर्षत (अर्थात आनन्द की देवी) माता को प्रसन्न मुद्रा में नीलम के पत्थर से बनी लगभग 6 फीट ऊँचाई वाली प्रतिमा स्थापित थी। लेकिन सन् 1968 में यह प्रतिमा चोरी हो गई थी। यह मन्दिर एक ऊँचे चबूतरे पर बना है। वर्तमान में दोहरी जगती पर स्थित इस मन्दिर के गर्भगृह में सीमेन्ट व चूने का प्रयोग नहीं हुआ है, जो शिल्पकला की दृष्टि से उल्लेखनीय है। मन्दिर की ऊपरी जगती के चारों ओर ताखों में धार्मिक एवं लौकिक जीवन से सम्बन्धित दृश्यांकन किया हुआ है।

मन्दिर के विभिन्न भागों में महिषमर्दिनी, दुर्गा, पार्वती, अर्द्धनारीश्वर, शिव, विष्णु, सूर्य, भैरव, यक्ष–यक्षिणी, नाग–

नागिन, रति–कामदेव, प्रेमी युगल, समुद्र मन्थन आदि का मूर्तन हुआ है। शृंगाररत देवी दुर्गा की प्रतिमा आमेर संग्रहालय में संरक्षित है। इस प्रतिमा में देवी को दर्पण में निहारते हुए, सिन्दुर लगाते हुए एवं पैरों के घुंघरू ठीक करते हुए दिखाया गया है।

इस मन्दिर के सामने ही चाँद बावड़ी स्थित है, जिससे यह प्रतीत होता है कि भारतीय परम्परा एवं संस्कृति के अनुसार बावड़ी में व्यक्ति स्नान करने के पश्चात् ही शारीरिक रूप से स्वच्छ होकर मन की शुद्धि के लिए मन्दिर में प्रवेश करते थे।

चाँद बावड़ी :–इसका निर्माण 9वीं शताब्दी में राजा चाँद (मिहिर भोज) द्वारा करवाया गया था, जिसके कारण इसका नाम चाँद बावड़ी पड़ा। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह एक अद्भुत नमूना है। यह बावड़ी विश्व में सबसे गहरी बावड़ी है जिसके ऊपर से नीचे तक पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। (चित्र संख्या–8) इस बावड़ी की चौड़ाई 35 मीटर तथा गहराई 19.5 मीटर है। इस बावड़ी में सीढ़ियों के 13 तल बने हैं तथा कुल 3500 सीढ़ियाँ हैं। ये सीढ़ियाँ बावड़ी के तीन ओर समरूप है तथा बावड़ी में एक ओर (चौथी तरफ) तीन मंजिलनुमा भवन निर्मित है। बावड़ी के भवनों में नृत्यकक्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बावड़ी की सबसे नीचे की मंजिल पर दो ताखे बने हुए हैं जिनमें गणेश एवं महिषासुर मर्दिनी की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। यहाँ एक 17 किलोमीटर लम्बी गुप्त सुरंग भी है। बावड़ी के चारों ओर स्तम्भयुक्त वर्गाकार बरामदे भी बने हुए है।

इस बावड़ी को अंधेरे व उजाले की बावड़ी के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि चाँदनी रात में इस बावड़ी का दृश्य चन्द्रमा के प्रकाश (चांदनी) में प्रकाशित होकर अद्भुत आभा उत्पन्न करता है।

आभानेरी के मन्दिर व मूर्तिशिल्पों की तक्षण कला में

चित्र संख्या–8 चाँद बावडी

चित्र संख्या–9 आभानेरी का एक शिल्प

महामारू शैली के दर्शन होते है। विषयवस्तु की दृष्टि से हिन्दू देवी देवताओं एवं लौकिक जीवन से सम्बन्धित घटनाओं को महत्व दिया गया है। (चित्र संख्या–9) देवी के विभिन्न रूपों एवं भाव भंगिमाओं का उत्कीर्ण भी आकर्षक है। स्थापत्य कला की दृष्टि से आभानेरी की बावड़िया अद्भुत है, जिनमें चाँद बावड़ी विश्व में स्थापत्य कला का अपनी श्रेणी में अद्वितीय नमूना है।

जगत (उदयपुर) :–

उदयपुर के दक्षिणपूर्व में लगभग 50 किलोमीटर की दूरी पर जगत नामक ऐतिहासिक ग्राम स्थित है। इस ग्राम में दसवीं शताब्दी का कलात्मक वैभव लिए हुए अम्बिका माता का मन्दिर है। जिस कलावधि में खजुराहों के लक्ष्मण मन्दिर का निर्माण हुआ, उसी समय इसका (अम्बिका माता का मन्दिर) निर्माण भी हुआ था। अम्बिका माता का यह मन्दिर जगत ग्राम में स्थित है। देवी दुर्गा को समर्पित यह मन्दिर मूर्तियों के खजाने की तरह प्रतीत होता है। इसी कारण इस मन्दिर को राजस्थान का खजुराहो भी कहा जाता है। मन्दिर के सभाग्रह के शिलालेख के अनुसार इसका जीर्णोद्धार विक्रम सम्वत् 1017 में गुहिल वंशीय शासक रावल अल्लाट या उनके पुत्र रावल नरवाहन के शासनकाल में वल्लुका के पुत्र सम्वापुरा नामक व्यक्ति ने करवाया था। मन्दिर परिसर चारों ओर से एक विशाल परकोटे से घिरा हुआ है। इस परिसर में मुख्य मन्दिर के अतिरिक्त एक छोटा मन्दिर भी है। मुख्य मन्दिर की पूर्व दिशा में 50 फीट की दूरी पर परकोटे से लगता हुआ एक प्रवेश मण्डप बना है। इसके प्रवेश द्वार स्तम्भों पर देवी की आकृतियों एव छत में समुद्रमन्थन का दृश्यांकन किया गया है। प्रवेश मण्डप के बाहरी हिस्से में प्रेमी युगल का अंकन भी देखा जा सकता है। यह प्रवेश मण्डप आकर्षक अलंकरण

चित्र संख्या–10 देव मूर्तियां (जगत, उदयपुर)

से युक्त है तथा इस मन्दिर को समकालीन अन्य मन्दिरों से एक अलग पहचान देता है। इस प्रवेश मण्डप की ऊँचाई लगभग 15 फीट है तथा इसके सामने की ओर के भाग में दिक्पाल एवं अप्सराएं उत्कीर्ण हैं। यह प्रवेश मण्डप छह गोलाकार स्तम्भों पर टिका हुआ है। प्रवेश मण्डप के अलंकरण में देवी वराही, नृत्यरत शिव, कमलपुष्प, कीर्तिमुख, घट–पल्लव, समुद्रमन्थन दृश्य एवं देवी के विभिन्न रूपों को प्रमुखता से स्थान दिया गया है। वराही की चार भुजाएं हैं तथा उनके हाथ में मछली व अस्त्र को दिखाया है। सभामण्डप एवं गर्भगृह की बाहरी दीवारों पर विभिन्न देवी देवताओं के बड़े मूर्तिशिल्पों में देवी दुर्गा के विभिन्न रूपों को प्राथमिकता देते हुए उत्कीर्ण किया गया है। सभा मण्डप के बाहरी भाग में दिक्पाल, अप्सराएँ, वीणाधारिणी सरस्वती, देवी दुर्गा के विभिन्न स्वरूप व अन्य देवी–देवताओं को जीवंत स्वरूप में मूर्तियों में ढ़ाला है। (चित्र संख्या 10) मन्दिर के पार्श्व भाग में महिषमर्दिनी, बाएं भाग में नृत्यरत गणपति तथा उत्तर व दक्षिण की ओर वाली दीवारों पर देवी अम्बिका की विभिन्न मुद्राओं व भाव भंगिमाओं का मूर्तन उल्लेखनीय है। महिषमर्दिनी मूर्तिशिल्प में देवी दुर्गा को महिषासुर का मर्दन (मारते हुए) करते हुए दिखाया गया है। देवी अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित है तथा भैंसे के रूप में महिषासुर की गर्दन को काटकर धड़ से अलग कर दिया गया है।

बाड़ोली :–

बाड़ोली कोटा से लगभग 50 किलोमीटर दक्षिण में चित्तौडगढ़ जिले में रावतभाटा कस्बे के पास स्थित है। यहाँ पर 8वीं से 12वींशताब्दी के मन्दिर एक समूह के रूप में विद्यमान हैं। इस मन्दिर समूह में नौ षैव मन्दिर बने हैं, जिसमें शिव, विष्णु, त्रिमूर्ति, वामन, महिषमर्दिनी एवं गणेष के मन्दिर प्रमुख है। इन मन्दिरों को सबसे पहले प्रकाश में लाने का श्रेय जैम्स टॉड (1821 ई.) को दिया जाता है।

ये सभी मन्दिर बिना जगती एवं बिना प्रदक्षिणा पथ के हैं। स्थापत्य कला की दृष्टि से इन मन्दिरों को गर्भगृह, अन्तराल, मुखमण्डप एवं षिखर में विभेदित किया जा सकता है। इनकी आन्तरिक दीवारों पर अलंकरण का अभाव है। वास्तु एवं अलंकरण के अध्ययन के आधार पर इन मन्दिरों को तीन समूहों में बांटा जा सकता है–

प्रथम समूह में 9वीं शताब्दी में बने मन्दिर संख्या–1 एवं मन्दिर संख्या–8 को,

द्वितीय समूह में 10वीं शताब्दी में बने मन्दिर संख्या–4, मन्दिर संख्या–5, मन्दिर संख्या–6 एवं मन्दिर संख्या–7 को तथा तृतीय समूह में 10वीं एवं 11वीं शताब्दी में बने मन्दिर संख्या–2, मन्दिर संख्या–3 व मन्दिर संख्या–9 को रखा जा सकता है।

स्थान व स्थिति की दृष्टि से इन नौ मन्दिरों में से 8 मन्दिर दो समूहों में तथा एक मन्दिर उत्तर–पूर्व में लगभग आधा किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इन सभी मन्दिरों में घटेश्वर शिवालय सबसे प्रमुख एवं प्रसिद्ध मन्दिर है। (चित्र संख्या–11)

यहाँ के अभिलेखों के अनुसार यह मन्दिर झरेश्वर का है। सम्भवतः इसी का अपभ्रंश रूप घटेश्वर के रूप में सामने आया होगा। मन्दिर में स्थित शिवलिंग की आकृति घट के समान होने के कारण भी यह सम्भव है कि इस मन्दिर का नाम घटेश्वर पड़ा हो। घटेश्वर नाम से प्रसिद्ध यह मन्दिर बाड़ोली के मन्दिरों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस मन्दिर को मुख्यतः गर्भगृह, अर्धमण्डप, अंतराल एवं रंगमण्डप (श्रृंगार चौरी) में विभेदित किया जा सकता है। पूर्वाभिमुख इस मन्दिर के गर्भगृह में पाँच शिवलिंग स्थापित हैं।

चित्र संख्या–11घटेश्वर मंदिर

गर्भगृह के प्रवेश द्वार के सिरदल पर शिव नटराज तथा द्वार के दोनों ओर शैव द्वारपाल के मूर्तिशिल्प बनाएं गए हैं। गर्भगृह की बाहरी दीवारों पर बने मुख्य ताखों में नटराज, चामुण्डा एवं त्रिपरान्तक की प्रतिमाएँ बनी हुई है। ये सभी तथ्य इस मन्दिर के शिवालय होने का प्रमाण देते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. राजस्थान में मूर्तिकला एवं मंदिर स्थापत्य कला की दृष्टि से मध्यमिका, रंगमहल, नोह, नांद, मालव नगर, आभानेरी, अटरू, लाडनूं, ओसियाँ, देलवाड़ा, रणकपुर, किराडू, जगत, बाड़ोली, पल्लू आदि महत्वपूर्ण स्थल हैं।
2. देलवाड़ा के पाँच जैन मन्दिरों के समूहों में विमलशाही एवं लूणवसही मंदिर प्रमुख हैं।
3. रणकपुर के जैन मंदिरों में चौमुखा मंदिर भगवान आदिनाथ या ऋषभदेव को समर्पित है।
4. किराडू के मंदिरों के भग्नावषेषों से पता चलता है कि यहाँ पाँच मंदिर गुर्जर–मारू शैली में बने थे, जिनमें सोमेश्वर मंदिर प्रमुख है।
5. ओसियाँ में जैन एवं वैष्णव धर्म से सम्बन्धित आठवीं व ग्यारहवीं शताब्दी में बने कई मंदिर स्थित हैं। ओसियाँ के मंदिरों में सचिया माता का मंदिर एवं महावीर मंदिर कलात्मक दृष्टिकोण से प्रमुख हैं।
6. आभानेरी में हर्षत माता के मंदिर व चाँद बावड़ी का निर्माण राजा चाँद ने नवीं शताब्दी में करवाया था।
7. उदयपुर जिले के जगत ग्राम में अम्बिका माता का मंदिर स्थित है, जिसमें देवी प्रतिमाओं का प्रमुखता से उत्कीर्णन किया गया है।
8. बाड़ोली (रावत भाटा के पास) में नौ शैव धर्म से सम्बन्धित मंदिर बने हैं, जिनका निमार्ण आठवीं से बारहवीं शताब्दी में हुआ था। इनमें मंदिर संख्या सात (घटेश्वर मंदिर) सबसे प्रमुख है।
9. सातवीं शताब्दी से पहले के मंदिरों के केवल अवषेष मात्र ही शेष बचे हैं। इसके बाद मुख्यतः गुर्जर–प्रतिहार या मारू–गुर्जर क्षेत्रीय शैली में मन्दिरों का निर्माण हुआ। इनमें अलंकृत स्तम्भ एवं ऊँची पीठिका का निर्माण देखने को मिलता है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

प्र.1 हर्षत माता का मन्दिर किस स्थान पर स्थित है ?

प्र.2 चौमुखा मन्दिर किसे समर्पित है ?

प्र.3 किस मन्दिर के गर्भगृह के प्रवेश द्वार के दोनों ओर देवरानी व जैठानी के दो आले बने हुए है?

प्र.4 बाड़ोली के मन्दिरों में सबसे प्रमुख मन्दिर कौनसा है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्र.1 चाँद बावड़ी की प्रमुख विशेषताएं लिखिए।

प्र.2 बाड़ोली के मन्दिर को वास्तु एवं अलंकरणों की विशिष्टताओं के आधार पर कितने समूहों में बांटा जा सकता है?

प्र.3 जगत मन्दिर की प्रमुख कलागत विशेषताएं लिखिए।

प्र.4 किराडू के मन्दिर स्थापत्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

प्र.5 अम्बिका माता मन्दिर के मूर्तिशिल्प 'महिषमर्दिनी' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

प्र.6 घटेश्वर मन्दिर कहाँ स्थित है ?इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

प्र.1 देलवाड़ा के जैन मन्दिरों का संक्षिप्त परिचय देते हुए किसी एक मन्दिर के स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प का विस्तार से वर्णन कीजिए।

प्र.2 रणकपुर के चौमुखा मन्दिर का सविस्तार वर्णन कीजिए।

प्र.3 ''ओसियाँ के मन्दिरों में वैष्णव, जैन एवं शाक्त मन्दिरों के रूप में धार्मिक सहिष्णुता व एकता की झलक देखने को मिलती है।'' इस संदर्भ में अपने विचार लिखिए।

अध्याय–11

आधुनिक भारतीय मूर्तिकला

आधुनिक भारतीय मूर्तिकला का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी से माना जाता है, जो कि तत्कालीन समय में हुए परिवर्तनों का परिणाम था। इस समय भारतीय पुनर्जागरण के कलाकारों में आधुनिक भारतीय मूर्तिकला के मार्ग को सुगम बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जिस प्रकार आधुनिक भारतीय चित्रकला को प्रारम्भ करने का श्रेय अवनीन्द्रनाथ टैगोर को दिया जाता है उसी प्रकार आधुनिक भारतीय मूर्तिकला को प्रारम्भ करने का श्रेय रामकिंकर बैज को दिया जाता है। रामकिंकर बैज को आधुनिक भारतीय मूर्तिकला का जनक भी कहा जाता है। ये अनेक परवर्ती मूर्तिकारों के प्रेरणा स्रोत रहे हैं।

18वीं शताब्दी में भारतीय मूर्तिकला निष्प्राण होती जा रही थी, इस समय भारतीय मूर्तिकला को ब्रिटिश संरक्षण व प्रोत्साहन नहीं मिला, जबकि इस समय ब्रिटिश साम्राज्य का प्रभाव बढ़ चुका था। ब्रिटिश शासन के दौरान अंग्रेजों ने भारत के विभिन्न स्थानों पर कला विद्यालयों की स्थापना की। इन कला विद्यालयों में कला के क्षेत्र में यूरोपीय पद्धति को बढ़ावा दिया जाता था। इस समय के मूर्तिशिल्पों में पाश्चात्य प्रभाव जैसे यथार्थवाद, घनवाद, भविष्यवाद, अभिव्यंजनावाद आदि का समावेश दिखाई देता है। 19वीं सदी के अंत तक स्वदेशी आंदोलन के कारण स्वदेशी कला के पुनर्जागरण की ओर कलाकारों का ध्यान आकर्षित हुआ। इस समय कलकत्ता के गवर्नमेंट स्कूल ऑफ आर्ट के प्रिंसिपल ई.वी. हैवल व अवनीन्द्र नाथ ठाकुर ने भारतीय कलाओं की विशेषताओं को विकसित करने का प्रयास किया। इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप कलकत्ता में इण्डियन सोसायटी ऑफ आर्ट की स्थापना हुई। इस समय के मूर्तिकारों में रोहित (1868–1895), फणीन्द्र नाथ बोस (1888–1926), हरिण्यमय राय चौधरी (1884–1862), देवी प्रसाद राय चौधरी (1899–1975) आदि प्रमुख हैं।

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विदेशी मूर्तिशिल्पों का आकर्षण सम्पन्न लोगों में अत्यधिक था। इस वर्ग के लोग अपने घरों में विदेशी मूर्तिशिल्पों की सजावट करके अपनी सम्पन्नता का प्रदर्शन करने में गौरव महसूस करते थे। इस प्रकार की विपरीत परिस्थितियों में यूरोपीय शैली से हट कर मूर्तिशिल्पों में भारतीय तत्वों का समावेश करने का साहस देवी प्रसाद राय चौधरी ने दिखाया। राम किंकर बैज ने आधुनिक भारतीय मूर्तिकला में नए आयामों की स्थापना कर इसे और अधिक सुदृढ़ता व समृद्धि प्रदान की। इन्होंने अपने मूर्तिशिल्पों द्वारा जन–साधारण को गौरवान्वित किया। इनके मूर्तिशिल्पों में विषयवस्तु व बाह्य परिवेश में अटूट सम्बन्ध व समन्वय दिखाई देता है। इन मूर्तिशिल्पों में यथार्थवाद, घनवाद व अतियथार्थवाद प्रतिबिम्बित होता है।

आधुनिक भारतीय मूर्तिकला को और आगे गति प्रदान करने में देवी प्रसाद राय चौधरी एवं राम किंकर बैज के शिष्यों का योगदान काफी महत्त्वपूर्ण रहा है, जिनमें धनराज भगत, पी. वी. जानकीराम, रजनीकांत पंचाल, ए.एम.डाबरीवाला व राघव कनेरिया आदि प्रमुख हैं।

बंगाल के मूर्तिकारों ने न केवल अपनी निज शैली को विकसित किया बल्कि उन्होंने अपने मूर्तिशिल्पों में परम्परागत व अधारभूत तत्वों तथा दर्शन में पश्चातय कला शैली व उसके तत्वों को सम्बन्धित किया। इससे भारतीय मूर्तिकला आधुनिक प्रवृत्तियों व विविधता की दृष्टि से काफी समृद्ध हुई। इन मूर्तिकारों में सुधीर रंजन खस्तगीर (1907–1974), प्रदोष दास गुप्ता (1912–1991), चिंतामणीकर (1915–2005) शंखों चौधरी

(1916–2006), सोमनाथ होर (1921–2006), मीरा मुखर्जी (1923–1998) आदि प्रमुख हैं। चिंतामणीकर के मूर्तिशिल्पों में वर्तमान, भविष्य व भूत का समावेश एक साथ देखा जा सकता है। शंखो चौधरी के मूर्तिशिल्पों में लोक एवं आदिवासी कला का समन्वय दृष्टिगत होता है। सोमनाथ होर ने युद्ध व अकाल की विभीषिका के मार्मिक भावों को अपने मूर्तिशिल्पों में प्रभावी रूप से अभिव्यक्त किया है।

आज़ादी से पहले व बाद के कुछ दशकों तक पोट्रेट और यथार्थता पर मूर्तिशिल्प बने। समय के साथ–साथ मूर्तिकला भी नवाचारों के पथ पर बढ़ती चली गई तथा विभिन्न प्रकार के अमूर्त व विरूपित मूर्तिशिल्पों का तक्षण हुआ। यात्रा के इस सोपान में ऊषा रानी हूजा (1923–2013), सरवरी राय चौधरी (1933–2012), विपिन गोस्वामी (1934), शंकर घोष (1934), दिलीप सरहर (1944), मणिक तालुकदार (1944) आदि ने पश्चमी शैली से अलग नए आयामों को समावेशित करके भारतीय शैली को समृद्ध किया।

40 के दशक में भारतीय मूर्तिकला पश्चातय दासता से मुक्त होकर कला के उन्मुक्त गगन में नई ऊँचाईयों को छूने लगी। परवर्ती मूर्तिकारों के मूर्तिशिल्पों में शैली विषय व माध्यम के दृष्टिकोण से नूतन प्रवृत्तियों का समन्वय स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इन्होंने मूर्तिशिल्पों के निर्माण में माध्यम व विषय वस्तु की दृष्टि से अपना दायरा काफी विस्तृत कर लिया। ये मूर्तिकार मूर्तिशिल्पों की रचना में प्रस्तर (जैसे संगमरमर, ग्रेनाइट आदि), धातु (जैसे कांस्य, स्टील आदि), लकड़ी, प्लास्टिक, फाइबर (रेशे), ग्लास, चमड़ा, अनुपयोगी वस्तुओं, मोम, पेपरमेशी आदि माध्यमों का प्रयोग कर रहे हैं। इन मूर्तिकारों में बसन्त के. शर्मा, रजत घोष, ओम प्रकाश खेर, रजत घोष, ध्रुव मिस्त्री, विवान सुन्दरम्, राजेन्द्र मिश्रा (1950), अशोक गोड़ (1965), ज्ञान सिंह (1960), अंकित पटेल (1957), सी. पी. चौधरी (1951), भुपेश कावडिया (1969), आदि प्रमुख है, जिन्होंने अपनी प्रतिभा और कुशलता से अपने मूर्तिशिल्पों में नवीन आयामों की स्थापना की है।

मूर्तिशिल्प के क्षेत्र में सतत रूप से होते परिवर्तनों का ही परिणाम है कि आज के मूर्तिशिल्पों के स्वरूप में काफी भिन्नता देखने को मिलती है, जिसमें मूर्तिकारों ने निजस्व व नवीनता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

आधुनिक मूर्तिकला की प्रमुख विशेषताऐं :–

1 परम्परावादी बन्धन से मुक्त।

2 परम्परा के विकासवादी स्वरूप का मूर्तन।

3 विषय, माध्यम व अभिव्यक्ति में स्वतंत्रता।

4 सरलीकृत स्वरूप का विकास।

5 स्वतंत्र मूर्तिशिल्पों का मूर्तन।

6 वैश्विक दृष्टिकोण का विकास।

7 वैश्विक कला सिद्धान्तों का समन्वय।

राम किंकर बैज (1906–1980 ई.) :–

राम किंकर बैज ने नवीन कला आंदोलन को गति प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनका जन्म पश्चिमी बंगाल के बांकुरा में 26 मई, 1906 को आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछड़े परिवार में हुआ था। इन्होने शांति निकेतन से कला में डिप्लोमा प्राप्त किया तथा शिक्षा ग्रहण करके स्वतंत्र रूप से अपनी कला साधना में लग गए। यहीं पर इन्होंने अपना समय कला को समर्पित किया और शिल्पकला विभाग के विभागाध्यक्ष भी रहें। इनकी कला शैली में निज शैली के नए प्रतिमानों की स्थापना हुई। इन्होंने विभिन्न माध्यमों (जैसे मिट्टी, प्रस्तर, कंकरीट, कांस्य आदि) में मूर्तिशिल्पों की रचना की। इनके प्रमुख विषय भारतीय तथा जनसामान्य से प्रभावित रहे। इनकी कला शैली पर लोक कला जैसी सरलता, सहजता व ज्यामितीयता का समन्वय स्पष्टतः दिखाई देता है। इनके मूर्तिशिल्पों में ''संथाल परिवार'', ''मिल कॉल'', ''महात्मा बुद्ध'', ''मिथुन'', ''सुजाता'' व रवीन्द्र नाथ टैगोर का आवक्ष (पोट्रेट) आदि प्रमुख हैं।

ये प्रथम भारतीय मूर्तिकार हैं जिन्होंने सीमेन्ट व कंकरीट माध्यम का प्रभावशाली ढ़ंग से प्रयोग कर मूर्तिशिल्पों की रचना की। इस माध्यम में इन्होनें मूर्तिशिल्पों में एक विशेष प्रकार के पोत (टेक्सचर) का सृजन किया, जो इनके मूर्तिशिल्पों को अन्य से एक अलग एवं विशिष्ट पहचान देते हैं।

इनके व्यक्तित्व व कला से साहित्यकार व फिल्मकार भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। इन पर कई पुस्तकों की भी रचना हुई जैसे आर. शिवा कुमार द्वारा रचित ''रामकिंकर्स यक्ष यक्षी'', सोमेन्द्र नाथ बंदोपाध्याय द्वारा रचित ''माई डेज़ विथ राम किंकर'' व प्रो. ए. रामचन्द्रन द्वारा रचित 'द मैन एण्ड द

चित्र संख्या–1 मिल कॉल

चित्र संख्या–2 संथाल फैमिली

फिल्म का निर्माण भी प्रारम्भ किया गया था, लेकिन ऋत्विक घटक की मृत्यु हो जाने के कारण यह फिल्म अधूरी रह गई।

इनके मूर्तिशिल्पों में अभिव्यंजनावाद व अतियथार्थवाद का प्रभाव देखने को मिलता है। इनके द्वारा जीवन पर्यन्त कला के क्षेत्र में दिये गये योगदान के लिये इन्हें पद्मभूषण (1970ई.) से भी सम्मानित किया गया था। 2 अगस्त, 1980 ई. को इनका देहान्त कोलकाता में हुआ जिससे कला जगत को अपूरणीय क्षति हुई।

मिल कॉल मूर्तिशिल्प की रचना सन् 1956 में राम किंकर बैज द्वारा की गई, जो कि शांति निकेतन में स्थापित है। इसका ढ़ांचा बनाने में लोहे का उपयोग किया गया तथा जिस पर आकार बनाने हेतु सीमेन्ट, रोड़ी व बज़री का उपयोग किया है। इस स्मारकीय मूर्तिशिल्प में दो स्त्रियों व बालक को तेज गति से जाते हुए दर्शाया गया है। ये चावल की मिल में काम करने वाली मजदूर स्त्रियाँ हैं, जिनको मिल के सायरन की आवाज सुनाई दी है जिससे वे मिल की तरफ तेजी से प्रस्थान कर रही हैं। इनके पास कपड़े सुखाने का समय भी नहीं है इसलिए वे दोड़ते हुए कपड़े सुखा रही हैं। (चित्र संख्या–1) इस संयोजन में आकृतियों को क्लिष्ठ मुद्राओं में गति के साथ दिखाया है। तेज गति दिखाने के लिये स्त्रियों के वस्त्रों को उड़ते हुए, पैरों से मिट्टी को उछलते हुए प्रदर्शित किया गया है। एक स्त्री को आगे की ओर देखते हुए व दूसरी को पीछे की ओर देखते दिखाया है।

बालक का मुख ऊपर की ओर देखते हुए दिखाया है। इससे श्रमिक वर्ग की महिलाओं के परम्परा व आधुनिकता तथा वर्तमान व भविष्य की बीच के संघर्ष को कलाकार ने सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस मूर्तिशिल्प में भारतीय और पश्चातय तत्वों का समन्वय तथा भारतीय विषय वस्तु के रूप में संथाल जाति के परम्परागत जीवन का आधुनिकता के साथ समन्वय स्थापित करने का द्वंद्व का कुशलता के साथ प्रस्तुतिकरण किया गया है। इस मूर्तिशिल्प में कलागत दृष्टि से गति, भाव, लावण्य व प्रमाण आदि का समावेश श्रेष्ठ रूप से हुआ है।

संथाल फैमिली मूर्तिशिल्प की रचना सन् 1938 में शांति निकेतन में की गई जिसमें एक संथाल परिवार के एक पुरूष व एक महिला को दिखाया है। महिला के बांऐ हाथ में एक शिशु जबकि पुरूष के बांऐ कन्धे पर बड़ा काँवर है, जिसके आगे की तरफ वाली टोकरी में भी एक शिशु को बैठे दिखाया है जिसके भार को संतुलित करने के लिए पिछली टोकरी में सामान रखा दिखाया है। साथ ही एक श्वान (कुत्ता) को भी दिखाया है। महिला को सिर पर भी टोकरी व दरी–पट्टी रखे दिखाया है। यह शिल्प आदम कद से डेढ़ गुना ऊँचा है।

प्रस्तुत मूर्तिशिल्प में भी जनजाति कृषक गरीब संथाल परिवार का जीवन्त प्रस्तुतीकरण किया गया है। यह परिवार जीविकोपार्जन हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हुए दिखाया है कलागत दृष्टि से इसमें संतुलन व सम्बद्धता के सिद्धान्त की पालना की गई है। साथ ही अतियथार्थवाद व अभिव्यंजनावाद का प्रभाव भी है।(चित्र संख्या – 2)

शरीर की रचना को जीवन्तता के साथ दिखाया है, स्त्री देह को कोमलता लिए दिखाया है। शरीर की मुद्रा से गति का आभास होता है तथा चेहरे के भावों को सार्थक किया है।

देवी प्रसाद राय चौधरी(1899–1975 ई.) :–

इनका जन्म 15 जून, 1899ई. को तेजहट (आधुनिक बंगलादेश) में हुआ था। ये अवनीन्द्र नाथ टैगोर के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। मूर्तिकला के साथ–साथ चित्रकला में भी निपुण थे। इन्होंने ऑरियन्टल आर्ट स्कूल से शिक्षा ग्रहण की तथा यहीं पर शिक्षक के रूप में भी कार्य किया। इन्होंने मूर्तिकला का प्रारम्भिक प्रशिक्षण हिरण्यमय् राय चौधरी के निर्देशन में लिया। इन्होंने बंगाल स्कूल की परम्परा व पद्धतियों से हटकर निजी शैली का विकास किया। इनके मूर्तिशिल्पों में सामान्य वर्ग के जीवन संघर्ष को बखूबी साकार रूप प्रदान किया है। इनकी प्रसिद्धी चित्रकार की अपेक्षा मूर्तिकार के रूप में अधिक रही। इन्होंने अपने मूर्तिशिल्पों के माध्यम से रोमांसवादी प्रवृत्ति का सूत्रपात किया। इनके इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप मूर्तिकला के क्षेत्र में प्रयोगवादी विचारधारा का विकास हुआ। बाद में ये आगामी प्रशिक्षण हेतु इटली गए, जिसका प्रभाव (पश्चिमी प्रभाव) इनकी मूर्तिशिल्पों में आया। इसके पश्चात उन्होंने अपना अध्ययन बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट से किया। 1928 ई. में चैन्नई (मद्रास) गए तथा यहाँ के गवर्नमेंट स्कूल ऑफ आर्ट में अध्ययन किया तथा प्राचार्य पद पर भी कार्य किया। ये राष्ट्रीय ललित कला अकादमी के संस्थापक अध्यक्ष भी रहे। कला के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान देने के लिए सन् 1958 में इन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया गया। इन्हें शरीर सरंचना के बारे में गहन जानकारी थी जो इनके मूर्तिशिल्पों में देखी जा सकती है। इन्होंने विभिन्न माध्यमों (जैसे मिट्टी, प्लास्टर ऑफ पेरिस तथा कांस्य) में मूर्तिशिल्पों की रचना की है। इनके मूर्तिशिल्पों में ''शहीद स्मारक'' (पटना), ''श्रम की विजय'' (चैन्नई) व ''महात्मा गाँधी'' (1956ई.)(कांस्य) आदि प्रमुख हैं। इनके आदमकद मूर्तिशिल्पों में गति, ऊर्जा एवं भाव का अद्भुत समन्वय है। 15 अक्टूबर, 1975 को इनका देहान्त हो गया।

शहीद स्मारक मूर्तिशिल्प की स्थापना सन् 1956 में पटना

चित्र संख्या–3 शहीद स्मारक

सचिवालय भवन के बाहर की गई। कांस्य धातु से बनी इन मूर्तियों की ढलाई पहले इटली में की गई थी तत्पश्चात् इन्हें पटना (बिहार) में स्थापित किया गया (चित्र सं–3)।

इस संयोजन में सात युवकों को दिखाया गया है जिन्होंने राष्ट्रीय ध्वज फहराने के प्रयास में अपने प्राणों का बलिदान दिया। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान सन् 1942 में डॉ. अनुग्रह नारायण को पटना में राष्ट्रीय ध्वज फहराने का प्रयास करने के कारण गिरफ्तार कर लिया गया था। जिसकी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप 11 अगस्त, 1942 को पटना सचिवालय पर राष्ट्रीयध्वज फहराने के संकल्प के साथ एक जुलुस आगे बढ़ रहा था। अंग्रेजों ने इन युवा देशभक्त छात्रों को निर्ममता से गोली मार दी थी। इसी घटना में सात युवक शहीद व अनेक घायल हो गए। इस मूर्तिशिल्प में देवी प्रसाद राय चौधरी ने ''शहीद स्मारक'' के रूप में घटना को जीवन्त किया है। शहीद स्मारक पर उन सात युवा शहीदों के नाम उत्कीर्ण हैं, जिन्होंने अपने प्राणों का बलिदान दिया था। ये नाम निम्नलिखित हैं:–

उमाकान्त प्रसाद सिन्हा (कक्षा 9), रामानन्द सिंह (कक्षा 9), देवीपदा चौधरी (कक्षा 9), राम गोविन्द सिंह (कक्षा 9), राजेन्द्र सिंह (कक्षा 10), सतीश प्रसाद झां

चित्र संख्या–4 श्रम की विजय

इस संयोजन में प्रथम युवक को राष्ट्रीय ध्वज लिये हुए आगे की ओर बढ़ते हुए दिखाया है। तीन युवकों को घायल अवस्था में निढ़ाल होकर गिरते–पड़ते दिखाया है। एक युवक दूसरे घायल युवक को सम्भालते हुए आगे बढ़ने की मुद्रा में है, दो अन्य युवक सीना तान कर आगे की ओर बढ़ रहे हैं। प्रस्तुत मूर्तिशिल्प में तत्कालीन अंग्रेजों की क्रूरता, शहीदों के जोश के भाव (आत्मविश्वास) को शारीरिक मांसपेशियों के उभारों के साथ अदभुत प्रकार से अभिव्यक्त किया है। यह मूर्तिशिल्प लाइफ–साइज़ में निर्मित है। चेहरे के भाव देशभक्ति से ओतप्रोत हैं।

श्रम की विजय मूर्तिशिल्प की रचना देवी प्रसाद राय चौधरी ने कांस्य माध्यम मे की तथा इसकी स्थापना सन् 1959 में चैन्नई में समुद्र के किनारे की गई। इस स्थल के निकट देश का प्रथम श्रमिक दिवस मनाया गया था। इस संयोजन में चार व्यक्तियों द्वारा एक चट्टान को बलपूर्वक लुढ़काने में होने वाले कठिन परिश्रम व युक्ति को बहुत ही प्रभावशाली ढ़ंग से प्रदर्शित किया गया है। साथ ही कठिन श्रम के दौरान होने वाली शारीरिक मुद्राओं व शरीर की मांस–पेशियों के खिंचाव को वास्तविक अभिव्यक्ति दी है। चट्टान उलटने के काम में लगे चारों श्रमिकों के शरीर पर एक छोटा अधोवस्त्र तथा सिर पर पतला कपड़ा है। ये श्रमिक लकड़ी के कुन्दे द्वारा विशाल चट्टान को हटाने के लिये प्रयासरत है। इसमें श्रमिकों के सामूहिक परिश्रम व प्रयास द्वारा बड़े व कठिन कार्य को सफलतापूर्वक निष्पादित करने की कला व तकनीक को प्रदर्शित किया गया है।

इसमें शक्ति एवं गति का प्रदर्शन अप्रतिम है। यथार्थवादी शैली का पूर्ण प्रभाव हम देख सकते हैं। जनसामान्य वर्ग के जीवन के प्रति संघर्ष को सशक्तता के साथ दिखाया है।(चित्र संख्या – 4)

शंखों चौधरी(1916–2006 ई.) :–

इनका जन्म 25 फरवरी 1916 को संथाल परगना, बिहार में हुआ। ये राम किंकर बैज के शिष्य थे। इन्होंने विभिन्न माध्यमों में आधुनिक कला के आयामों, यथार्थता, सरलता आदि को साकार करते हुए अनेक मूर्तिशिल्पों का निर्माण किया। इन्होंने बड़ोदरा विश्वविद्यालय में एक अलग शिल्प कार्यशाला की स्थापना की। इस कार्यशाला में इन्होंने बीस सालों तक अध्यापन कार्य करवाया। 1939 इन्होंने कला में स्नातक की उपाधि शांति निकेतन से प्राप्त की। सन् 1945 में इन्होंने कला भवन शांति निकेतन से ललित कला में डिप्लोमा, मूर्तिकला में

विशेष योग्यता के साथ किया। 1945 में इन्होंने धातु ढलाई की नेपाली पद्धति का अध्ययन किया। 1947 में यूरोप की यात्रा की तथा इंग्लैण्ड व पेरिस में कार्य भी किया। 1949 से 1970 तक ये बड़ौदा विश्वविद्यालय में मूर्तिकला विभाग के विभागाध्यक्ष रहे।

इन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया जैसे– ललित कला अकादमी के राष्ट्रीय पुरस्कार (1956), पद्मश्री (1971), कालीदास सम्मान, ललित कला रत्न (2004) आदि। इनके मूर्तिशिल्प में अन्तराल का बहुत महत्व है, अन्तराल के माध्यम से इन्होंने मूर्तिशिल्पों में गतित्व प्रदान किया है। इनके मूर्तिशिल्पों में नारी आकृति, वन्य जीवन से सम्बन्धित विषय वस्तु को प्रमुखता से साकार किया है। इन्होंने लकड़ी, प्रस्तर, धातु, टेराकोटा व संगमरमर (सफेद, काला) आदि विविध माध्यमों में अपनी कला में मौलिकता का प्रदर्शन किया है।

27 अगस्त, 1906 को दिल्ली में इनका देहान्त हो गया। इन्होंने जीवन पर्यन्त कला की साधना करते हुए विभिन्न संस्थानों को कला के क्षेत्र में संरक्षण प्रदान किया। कार्ल खण्डालवाला के अनुसार इन्होंने अभिव्यक्ति के किसी खास सम्प्रदाय को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया।

प्रमुख मूर्तिशिल्प– पिज़न, पिकॉक, कॉक (1951ई.), बर्ड, हैड ऑफ गर्ल (1958ई.), टॉएलिट, खड़ी आकृतियाँ, कर्व आकृतियाँ एवं अनेक शीर्षकहीन आकृतियाँ आदि।

टॉयलेट यह मूर्तिशिल्प 36x30x66.5 सेमी का प्रस्तर (पाषाण) से बना हुआ है। इस मूर्तिशिल्प में एक नारी आकृति को बैठी हुई मुद्रा में सरलीकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। दोनों हाथ सिर के पीछे की ओर कर रखे हैं। इसमें रिक्त स्थान के माध्यम से रिक्तता को प्रदर्शित किया गया है। इस मूर्तिशिल्प में त्रि–आयामी प्रमाण के साथ–साथ ज्यामितीय (घनवादी) प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। मूर्तिशिल्प में मुख के नयन नक्ष को मात्र आभास द्वारा दिखाया है (चित्र सं–5)।

पक्षी मूर्तिशिल्प स्टेनलेस स्टील से बना है तथा 62.2x25.4x20.3 सेमी आकार का है । इस मूर्तिशिल्प को एक लकड़ी के आधार पर लगाया गया है। यह मूर्तिशिल्प स्टील धातु का बना है, इसलिए इस पर पड़ रहे छाया–प्रकाश का प्रभाव अत्यंत आकर्षक है। इन्होंने धातु मूर्तिशिल्पों में वक्राकारों के प्रयोग से शिल्पों को जीवन्तता प्रदान की है। (चित्र सं–6)

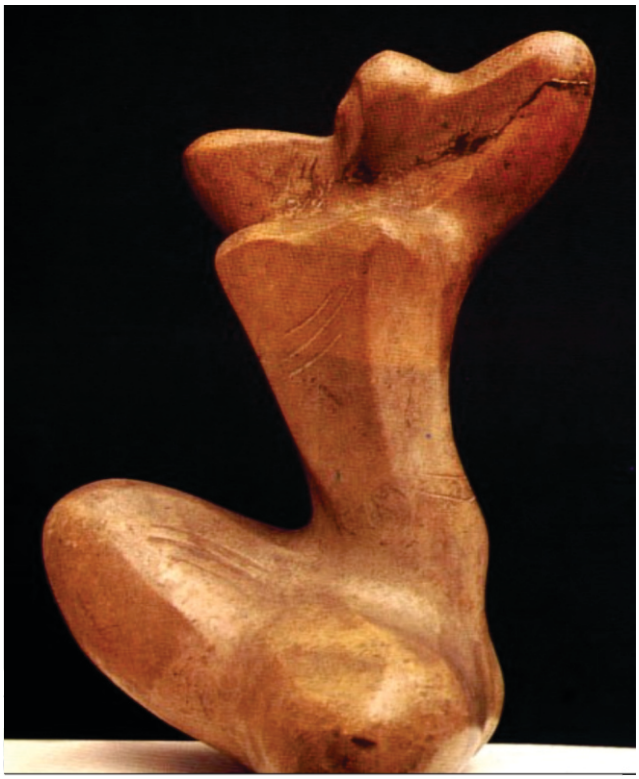

चित्र संख्या–5 टॉयलेट

चित्र संख्या–6 पक्षी

धनराज भगत (1917–1988ई.)

इनका जन्म 1917ई. में लाहौर में हुआ था। इन्होंने मूर्तिकला में डिप्लोमा स्तर की शिक्षा मेयो कॉलेज ऑफ आर्ट, लाहौर से प्राप्त की। ये कला महाविद्यालय दिल्ली में मूर्तिकला विभाग के विभागाध्यक्ष के पद पर भी कार्यरत रहे तथा 1977 में यहाँ से सेवानिवृत हुए। प्रयोगधर्मी व अपारम्परिक कलाकारों मे इनका नाम प्रमुखता में लिया जाता है। इन्होंने पेपरमेशी, धातु, काष्ठ, प्रस्तर व सीमेन्ट आदि विविध माध्यमों में अपने मूर्तिशिल्पों की रचना की। इनके मूर्तिशिल्पों में बाह्य आकार सपाट व चिकनापन लिए हुए है तथा इनमें लम्बाई, कोमलता, लय और गति जैसी विशेषताएं प्रमुखता से प्रदर्शित होती हैं। इन्होंने मुख्यतः अमूर्तवादी शैली में कार्य करते हुए विभिन्न मूर्तिशिल्पों की रचना की है जिनमें द किंग, बांसुरी वादक, सितार वादक, द किस, कॉस्मिक मैन, स्पिरिट ऑफ वर्क, शीर्षक हीन (घोड़ा) व मोनार्क श्रृंखला आदि प्रमुख हैं। इन्होंने मूर्तिशिल्पों में ज्यामितीयता व ऊपर से यांत्रिक पदार्थों जैसे कील, तार, पेच, आदि लगाने का नवीन प्रयोग किया है।

इनकी आकृतियों में प्राचीन व आधुनिक कला का अद्भुत समावेश किया गया है। इनकी कला साधना को 1977 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया। सन्1988 में 71 वर्ष की आयु में इनका निधन हो गया। इनके नाम पर सन् 2010 में राजकीय कला महाविद्यालय चण्डीगढ़ में ''धनराज भगत स्कल्पचर पार्क'' की स्थापना हुई।

धनराज भगत की इस कृति ''कॉस्मिक मैन'' का आकार 171x81x22 सेमी है, जिसको कि सीमेन्ट व प्लास्टर से बनाया गया है। वर्तमान में यह मूर्तिशिल्प ललितकला अकादमी, नई दिल्ली में संग्रहित है। इस मूर्तिशिल्प में ज्यामितीय आकार में मानव दिखाया है, जिसके ऊपरी भाग में अर्ध–चन्द्रमा स्थित है जो यह दर्शाता है कि यह कॉस्मिक मैन (अंतरिक्ष मानव) है। इसमें अमूर्तवादी शैली का प्रभाव स्पष्ट है। (चित्र सं–7)।

धनराज भगत ने ''शीर्षकहीन मोनार्क'' श्रृंखला के अन्तर्गत आकृति मूलक विशेषता लिए हुए मूर्तिशिल्पों की रचना की है। चित्र में दर्शाए गए शीर्षकहीन (मोनार्क) मूर्तिशिल्प 44.4x24.1x17.7 सेमी आकार का है। इसकी रचना में लकड़ी,

चित्र संख्या–7 कॉस्मिक मैन

चित्र संख्या–8 मोनार्क

ताम्र पत्र व कीलों का उपयोग किया गया है। मोनार्क शृंखला में शासक (राजा) को जन प्रतिनिधि के रूप में प्रतीकात्मक रूप से प्रदर्शित किया है। मूर्तिशिल्प को अलंकृत करने में धातु पत्रों व कीलों का उपयोग किया गया है। लकड़ी में खुदाई कर बनाई आकृतियाँ खुरदरापन लिए हुए है। यह मूर्तिशिल्प धनराज भगत के निजी संग्रह में सुरक्षित है।(चित्र संख्या–8)

सतीश गुजराल (1925ई.) :–

इनका जन्म 25 दिसम्बर, 1925 में झेलम (पंजाब) में हुआ था, वर्तमान में यह स्थान पाकिस्तान में स्थित है। समकालीन मूर्तिकारों में इनका विशेष स्थान है। ये मूर्तिकार के साथ–साथ प्रसिद्ध चित्रकार, वास्तुकार, लेखक व ग्राफिक डिज़ाइनर भी हैं। आठ वर्ष की आयु में दुघर्टनावश इनकी श्रवण शक्ति क्षीण हो गई, जिसका प्रभाव इनके अध्ययन पर भी पड़ा लेकिन इन्होंने अपना अधिकांश समय कला के प्रति समर्पित किया तथा इकबाल व गालिब की रचनाएं भी पढ़ीं, जिसका उनके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा। 13 वर्ष की आयु में ये लाहौर आए तथा यहाँ उन्होंने मेयो स्कूल ऑफ आर्ट में अन्य विषयों के साथ मृतिकाशिल्प और ग्राफिक डिजाइन के क्षेत्र में अध्ययन किया। सन् 1944 में इन्होंने सर जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट, मुम्बई में प्रवेश लिया, लेकिन स्वास्थ्य संबंधी परेशानी होने के कारण सन् 1947 में इन्हें अपना अध्ययन बीच में ही छोड़ना पड़ा। सन् 1952 में इन्हें पलासियों नेशनल डि बेलास आर्ट, मैक्सिकों में अध्ययन करने हेतु छात्रवृति मिली। बाद में इंपीरियल सर्विस कॉलेज, विंडसर, यू.के. (ब्रिटेन) में भी इन्होंने विधिवत् रूप से अध्ययन किया। सन् 1947 में हुए भारत विभाजन का प्रभाव इनकी कलाकृतियों विशेष रूप चित्रों में देखने को मिलता है।

सन् 1952 से 1974 तक इन्होंने अपनी कलाकृतियों की प्रदर्शनी विश्व के अनेक बड़े शहरों में लगाई, वास्तुकार के रूप में इन्होंने बेल्जियम के दूतावास का भी डिजाइन तैयार किया जिसे 20वीं सदी की श्रेष्ठतम् भवनों की सूची में स्थान प्राप्त हुआ है। ये भारत में प्रथम कोलाज कलाकार के रूप में भी जाने जाते हैं। इनके जीवन और काम पर आधारित कई वृतचित्र (डॉक्यूमेंट्री) बने हैं जिनमें से एक वृतचित्र '' अ ब्रश विथ लाइफ'' सन् 2012 में जारी हुआ है। जिसकी अवधि 24

चित्र संख्या–9 स्ट्रीट सिंगिंग कपल

मिनट की है। इनके बड़े भाई इन्द्र कुमार गुजराल भारत के पूर्व प्रधानमंत्री थे। इनका पुत्र मोहित गुजराल एक प्रसिद्ध वास्तुकार है तथा पुत्री कल्पना ज्वेलरी डिज़ाइनर व दुसरी पूत्री रसील इंटीरियर डिज़ाइनर है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी सतीश गुजराल को देश–विदेश में अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। सन् 1999 में भारत सरकार ने इन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया। इन्हें दो बार चित्रकला के लिए व एक बार मूर्तिकला के लिए कला का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिल चुका है। इन्हें मैक्सिको का ''लियानार्डो द विंसी'' पुरस्कार तथा बैल्जियम के राजा का ''आर्डर ऑफ क्राउन'' सम्मान भी मिला है। इन्होंने सिरेमिक, काष्ठ, पाषाण एवं धातु आदि माध्यमों में

मूर्तिशिल्पों की रचना की है। इनके मूर्तिशिल्पों पर आस–पास के परिवेश व परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा है। लोहड़ी के त्यौहार में प्रज्वलित होने वाली अग्नि में जलती हुई लकड़ियों के विविध स्वरूपों से प्रभावित होकर उन्होंने जली हुई लकड़ी से मूर्तिशिल्पों की रचना की। भैंसों के गले में लटकती घण्टियों के टेक्सचर (पोतों) से प्रेरित होकर उन्होंने विभिन्न धातु आकृतियों का निर्माण किया। ग्रेनाइट के विभिन्न रंगों व पोतों से प्रभावित होकर उन्होंने मानव व जानवरों के विभिन्न मूर्तिशिल्पों की रचना की। गुजराल ने स्मारकीय कांस्य मूर्तिशिल्पों की रचना की जो कि मानव व यांत्रिक विशेषताओं को लिए हुए हैं। इनकी ऊचांई लगभग 11 से 12 फीट तक है। इनमें भावनाओं व ऊर्जा की सशक्त अभिव्यक्ति की है। गुजराल के अनुसार उनके मूर्तिशिल्पों की रचना पूर्व निर्धारित नहीं होती है। इनके मूर्तिशिल्प छोटे व बड़े आकार के हैं। इनका मानना है कि बड़े मूर्तिशिल्पों से अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत और अधिक अच्छे प्रकार से होती है। इनके मूर्तिशिल्पों में स्ट्रीट सिंगिंग कपल तथा मानव, मशीन और जानवर के शीर्षकहीन मूर्तिशिल्प प्रमुख हैं। जली हुई लकड़ी के मूर्तिशिल्पों की श्रृंखला में देवी–देवता व मानव आकृतियाँ बनाई गई हैं।

शीर्षकहीन (स्ट्रीट सिंगिंग कपल) मूर्तिशिल्प कांस्य धातु से बना है तथा इसकी ऊँचाई 28 इंच है। इस मूर्तिशिल्प में स्त्री व पुरूष को नृत्य व गायन की मुद्रा में बनाया गया है। स्त्री आकृति के हाथों में मंजीरें है जो बजाने की मुद्रा में हैं। दोनों के दांयें पैर ऊपर उठे हुए व पुरूष आकृति के हाथ भी नृत्य मुद्रा में कुछ ऊपर उठे हुए हैं। दोनों ने पैरों में कड़े पहने हैं व कुर्ते पर जैकेट भी पहन रखी है। इनका केश विन्यास कुण्डलाकार है। प्रस्तुत संयोजन में गति, लय एवं ऊर्जा है (चित्र सं–9)।

शीर्षकहीन (मानव और मशीन श्रृंखला) मूर्तिशिल्प 12 फीट तक ऊंचे है। इनमें मानव और मशीन के ऊर्जा स्वरूप को समन्वित करके प्रदर्शित किया गया है। इन मूर्तिशिल्पों के माध्यम से जैविक और यांत्रिक शक्तियों को एक दुसरे के सम्पूरक दिखाने का अप्रतिम प्रयास किया है, जो कि वर्तमान समय के संदर्भ में सटीक है। इसमें आधुनिकता व परम्परागत मूल्यों का सम्मिश्रण देख सकते हैं। इसमें गति एवं लय आदि को स्पष्टतः देख सकते हैं। प्रस्तुत मूर्तिशिल्प में समसामयिक विषय प्रबलता से दिखाया गया है

हिम्मत शाह –(1933ई.)

इनका जन्म 22 जुलाई को 1933ई. लोथल, गुजरात में हुआ था। इन्होंने घड़शाला, भावनगर जाकर अध्ययन कार्य किया तथा यहाँ पर जग्गू भाई शाह से कला का प्रशिक्षण प्रारंभ किया। इसके बाद जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट मुंबई गए। सरकार की तरफ से मिली छात्रवृत्ति द्वारा 1956 से 1960 तक बड़ौदा में रहे। इन्होंने बड़ौदा में एन. एस. बेंद्रे व के. जी. सुब्रमण्यम से कला की शिक्षा ग्रहण की। ये ग्रुप 1890 के सदस्य रहे लेकिन ग्रुप अधिक समय तक नहीं रहा। फ्रांसीसी सरकार से मिली छात्रवृत्ति के तहत 1967 में अध्ययन हेतु पैरिस गए। 1967 से 1971 में इन्होंने अहमदाबाद के सेंट जेवियर स्कूल में ईंट, सीमेंट व कंकरीट से स्मारकीय म्यूरल बनाया। इसके बाद उन्होंने टेराकोटा और कांस्य में मूर्तिशिल्पों की रचना की। इन्होंने दिल्ली में जाकर गढ़ी स्टूडियो में टेराकोटा मूर्तिशिल्पों को नए आयाम प्रदान किये। इन्होंने सन

चित्र संख्या–10 शीर्षक हीन हैड

2004–2005 में कांस्य मूर्तिशिल्पों की रचना की जिनकी ढ़लाई लंदन में की गई। उनके प्रसिद्ध मूर्तिशिल्पों में टेराकोटा और कांस्य माध्यम में बने सिर (हेड्स) हैं। सन 2000 में इन्होंने जयपुर में स्टूडियो की स्थापना की। हिम्मत शाह ने सिरैमिक, सीमेंट, कंक्रीट, जाली व लोहे के सरियों आदि विभिन्न माध्यमों में मूर्तिशिल्पों की रचना की है। कला के क्षेत्र में किए गए कार्य के लिए इन्हें अनेक पुरस्कार व सम्मान प्राप्त हुए, जिनमें साहित्य कला परिषद पुरस्कार 1988, राष्ट्रीय कालिदास पुरस्कार 2003–04 एवं गगन अकादमी पुरस्कार 2014 आदि प्रमुख हैं। ''क्या आप बीज को देखकर पूरे वृक्ष की कल्पना कर सकते हैं ? जो बीज को देखकर वृक्ष की तथा वृक्ष को देखकर बीज की कल्पना कर सकता है वह एक वास्तविक कलात्मक दृष्टिकोण का प्रतिबिम्ब है।'' – हिम्मत शाह

शीर्षकहीन हेड (2006) मूर्तिशिल्प का आकार 29.2x24x12.7 सेमी है। यह शिल्प कांस्य धातु से निर्मित है। यह आकृति मूलक विशेषता लिए हुए है। चेहरे पर आँखें गोलाई लिए हुए हैं। नाक लम्बी एवं मुँह छोटा बनाया है। साइड में हल्की व गहरी रेखाओं के द्वारा क्रास निशान बनाया है। यह सरलता व प्रतीकात्मकता के गुणों को प्रदर्शित करता है (चित्र सं–10)।

इस मूर्तिशिल्प में मानव व उसकी गूढ़ भावनाओं का प्रतीकात्मक अंकन हुआ है जो केवल अनुभव एवं कौशल से ही साकार हो सकता है। यह रचना कलाकार के विचारो, अनुभवों एवं भावनाओं के मंथन का परिणाम है जिसमें शब्द विहीन अभिव्यक्ति की गई है।

मृणालिनी मुखर्जी (1949 – 2015ई.)

इनका जन्म मुंबई में सन् 1949 में हुआ था। यह सुप्रसिद्ध चित्रकार विनोद बिहारी मुखर्जी व लीला मुखर्जी (माता) की इकलौती पुत्री थी। इन्होंने कला महाविद्यालय, वड़ोदरा से स्नातक की उपाधि सन 1970 में प्राप्त की। सन् 1970 से 1972 तक प्रो. के.जी. सुब्रमण्यमन् के निर्देशन में म्यूरल डिज़ाइन में पोस्ट डिप्लोमा प्राप्त किया। इसी समय में इन्होंने प्राकृतिक रेशों को एक माध्यम के रूप में प्रयोग करना शुरु किया। 1978 में उन्हें ब्रिटेन से छात्रवृत्ति मिली जिससे उन्होंने मूर्तिशिल्प के क्षेत्र में एक अलग पहचान बनाई। सन् 1994–95 में आधुनिक कला संग्रहालय ऑक्सफोर्ड द्वारा मूर्तिशिल्पों की प्रदर्शनी हेतु आमंत्रित किया गया। सन् 1996 में इन्होंने हॉलेण्ड में एक अंतर्राष्ट्रीय कार्यशाला में भी भाग लिया।

इन्होंने मूलरूप से रेशों का उपयोग करते हुए अनेक मूर्तिशिल्पों की रचना की। वे बंगाल व गुजरात से प्राप्त पतली रस्सियों को स्वयं के देखरेख में बैंगनी, हरे, नीले, काले व सुनहरें रंगों में रंगवाती थीं और उनका उपयोग मूर्तिशिल्प के निर्माण में करती थी। उन्होंने रेशों के अतिरिक्त कांस्य धातु का उपयोग करते हुए कई उत्कृष्ट मूर्तिशिल्पों का सृजन किया है। जूट की रस्सी, सुतली, डोरी आदि का प्रयोग कर गांठदार धरातल में त्रिआयामी प्रभाव देते हुए धातु के छल्लों का प्रयोग कर इन्होंने अपने मूर्तिशिल्पों को एक सुनिश्चित आकार व अभिव्यक्ति प्रदान की है। इनकी कला शैली आधुनिक प्रयोगवादी है तथा विषयवस्तु मुख्य रूप से प्रकृति से ही संबंधित है। इनके मूर्तिशिल्पों में वन राजा (1991 से 1994), वाटरफॉल (1975), पुरूष (1980), देवी (1981), वुमन ऑन पीकॉक (1991), पुष्प (1993), लोटस पॉण्ड–I&VIII (1995–96), पाम स्केप 2015 शृंखला (2015) आदि हैं। कला के क्षेत्र में अतुलनीय योगदान के लिए इन्हें देश–विदेश में काफी सम्मान मिला। फरवरी, 2015 में 65 वर्ष की आयु में इनका देहान्त दिल्ली में हो गया, जिससे मूर्तिकला के क्षेत्र में अपूर्णीय क्षति हुई है।

पाम स्केप (2015) इस कांस्य मूर्तिशिल्प में फैला हुआ सूखा तना है, जिसके शीर्ष पर बड़ी सूखी वक्राकार पत्तियां हैं। यह मूर्ति शिल्प ताड़ वृक्ष की सूखी हुई रचनाओं से संबंधित है। इसमें सूखापन व इनकी अनेक पर्तों को मुड़ते सिकुड़ते दिखाया है। मूर्तन अत्यंत सजीव है, प्रकृति की कोमलता व सहजता को बहुत बारीकी के साथ कांस्य में ढ़ालने में

चित्र संख्या–11 पाम स्केप

चित्र संख्या–12 वनराज

मृणालिनी मुखर्जी ने सफलता प्राप्त की है।

पाम स्केप की अनेक श्रृंखलाएं इन्होंने बहुत ही सजीवता लिए हुए बनाई है।(चित्र सं–11)

वन राजा मूर्तिशिल्प (1991–1994ई.) की रचना में रेशों (फाइबर) का उपयोग किया गया है, जिसमें वन राजा सिंह को खड़ी मुद्रा में सीधे तने हुए दिखाया है, जिसके हाथ नीचे की ओर प्रतीत होते हैं। वन राज की अभिव्यक्ति के लिये सिंहासन बनाया है, जिस पर फाइबर (रेशों) की गांठें डालकर अलग–अलग पैटर्न या नमूने बनाए है। वनराज को बैंगनी रंग व शेष शिल्प को हरे रंग के तानों के रेशे व गांठों द्वारा आकार दिया है । (चित्र सं–12)

आधुनिक मूर्तिकला में आए परिवर्तनों में पारंपरिकता व आधुनिकता का समन्वय होने के साथ–साथ विषय व तकनीक के क्षेत्र में अत्यधिक विस्तार एवं विभिन्नता देखने को मिलती है। मूर्तिकारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से वैश्विक मंच पर अपनी कला को नई पहचान दी। आधुनिक समय में मूर्तिकला के क्षेत्र में जीवन्तता व गति का अद्भुत संचार हुआ है। विभिन्न मूर्तिकारों ने न केवल इस क्षेत्र में अत्यधिक प्रसिद्धि पाई, बल्कि विश्व बाजार में कला को नई ऊँचाईयों तक पहुंचाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1.आधुनिक भारतीय मूर्तिकला का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी से माना जाना है जिसे प्रारम्भ करने का श्रेय राम किंकर बैज को दिया जाता है।

2. आधुनिक भारतीय मूर्तिकला परम्परावादी बंधन से मुक्त तथा विषय, माध्यम व अभिव्यक्ति की दृष्टि से स्वतंत्र रही।

3. रामकिंकर बैज ने सीमेन्ट व कंकरीट माध्यम में 'संथाल परिवार' एवं 'मिल–काल' जैसे अनेक मूर्तिशिल्पों की रचना की।

4. रामकिंकर बैज ने अपने मूर्तिशिल्पों में जनसामान्य की जीवन शैली व भावनाओं को सशक्त रूप से अभिव्यक्ति प्रदान की है।

5. देवी प्रसाद राय चौधरी के मूर्तिशिल्पों में शरीर संरचना का प्रभावी अंकन देखा जा सकता है। इनके मूर्तिशिल्पों (जैसे शहीद स्मारक, श्रम की विजय आदि) में गति, ऊर्जा एवं भाव का अद्भुत समन्वय किया गया है।

6. शंखो चौधरी ने लकड़ी प्रस्तर, धातु, टेराकोटा एवं संगमरमर आदि विभिन्न माध्यमों में नारी आकृतियों एवं वन्य जीवन से सम्बन्धित विषय वस्तु को अपने मूर्तिशिल्पों में साकार किया है।

7. धनराज भगत ने अमूर्तवादी शैली में कार्य करते हुए विभिन्न विषय वस्तुओं (जैसे 'कॉस्मिक मेन', शीर्षकहीन–मोनार्क श्रृंखला आदि) को ज्यामितीय आकृतियों में संजोया है।

8. बहुमुखी प्रतिभा के धनी सतीश गुजराल ने सिरेमिक, प्रस्तर, काष्ठ एवं धातु आदि माध्यमों में अपने आस–पास के परिवेश से प्रभावित होकर अनेक मूर्तिशिल्पों (जैसे स्ट्रीट सिंगिंग कपल एवं शीर्षक हीन मानव एवं मशीन श्रृंखला आदि) की रचना में गति, ऊर्जा एवं लय की आकर्षक अभिव्यक्ति की है।

9. हिम्मतशाह ने टेराकोटा, धातु (कांस्य), सीमेन्ट एवं कंकरीट आदि माध्यमों में अनेक मूर्तिशिल्पों (जैसे शीर्षकहीन हेड्स आदि) की रचना की है।

10. मृणालिनी मुखर्जी ने प्रकृति से सम्बन्धित विषयवस्तु को पतली रस्सियों एवं धातु (कांस्य) माध्यम द्वारा अपने मूर्तिशिल्पों (जैसे 'वनराजा' एवं 'पाम स्केप' आदि) में आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सतीश गुजराल कौन हैं?
2. 'मिल–कॉल'' मूर्तिशिल्प के मूर्तिकार का नाम लिखिए ?
3. 'प्राकृतिक रेशों'' का प्रयोग मुख्यरूप से किस मूर्तिकार ने किया?
4. आधुनिक भारतीय मूर्तिकला का जनक किसे कहा जाता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पटना में स्थित शहीद स्मारक की रचना किस कलाकार ने की थी?
2. किन्हीं दो मूर्तिकारों के नाम बताइए जिन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया गया।
3. मृणालिनी मुखर्जी की कलाकृतियों का माध्यम क्या था?
4. हिम्मत शाह का जन्म कब एवं कहां हुआ ?
5. मूर्तिकार धनराज भगत के किन्हीं दो मूर्तिशिल्पों के नाम बताइए।
6. आधुनिक मूर्तिकला की चार विशेषताएँ बताइए।
7. देवी प्रसाद राय चौधरी के दो मूर्तिशिल्पों के नाम बताइए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. रामकिंकर बैज की कलाशैली पर लेख लिखिए।
2. आधुनिक मूर्तिकला से आप क्या समझते हैं व इसकी विशेषता पर प्रकाश डालिए।
3. सतीश गुज़राल का भारतीय मूर्तिकला में क्या योगदान रहा है, स्पष्ट करें।
4. प्रयोगवादी मूर्तिकला क्या है, उदाहरण सहित समझाइए।
5. रामकिंकर बैज व मृणालिनी मुखर्जी पर तुलनात्मक लेख लिखिए।

अध्याय–12

राजस्थान की आधुनिक मूर्तिकला

पारम्परिक रूप से राजस्थान मंदिरों की भित्तियों पर सृजित मूर्तियों की उत्कृष्टता के लिए प्रसिद्ध है। देलवाड़ा, रणकपुर, नाकोड़ा, जगत शिरोमणि आदि मंदिरों की मूर्तियां इसका उदाहरण है। जयपुर का मूर्ति मोहल्ला किसी परिचय का मोहताज नहीं है। यहाँ के मूर्तिकारों के हाथों में पत्थर मनचाहे आकार में ढलता जाता है। मूर्ति मोहल्ले के मूर्तिकार पूर्णतः व्यावसायिक मूर्तियां बनाते हैं। देवी देवताओं की जीवंत मूर्तियां पूरे विश्व में यहीं से आपूर्ति होती हैं। आजीविका के लिए इन मूर्तिकारों की प्रतिभा व मौलिक सर्जना कहीं दब सी गयी है फिर भी कहीं–कहीं कला के नवांकुर यहाँ भी प्रस्फुटित होते रहे हैं। जिन में से कुछ पेड़ बने तो कुछ शैशवावस्था में ही मूर्झा कर जीवन संघर्ष की धूप में जल गये। पारपंरिक मूर्तिकला के बीच आधुनिकता के स्वर गुंजायमान करने वाले मूर्तिकार राजस्थान में अधिक नहीं हैं। उस्ताद मालीराम शर्मा ने यथार्थवादी मूर्तियों के माध्यम से राजस्थान की मूर्तिकला में नवीन विचार प्रस्तुत किया था। उनकी बनाई मूर्तियां यूरोपीय शास्त्रीय शिल्पों के समकक्ष मानी जाती है। उन्हे राजस्थान का माईकल एंजिलो कहते हैं।मालीराम जी ने राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्स में मूर्तिकारों की नयी खेप संवारने में महत्ती भूमिका निभाई। बंगाल मूल के तारापदो मित्रा (टी.पी. मित्रा) ने भी स्कूल ऑफ आर्ट्स में कला विद्यार्थियों को मिट्टी से मॉडलिंग का प्रशिक्षण देकर उन्हें पोर्ट्रेट बनाने में दक्ष किया। इनके अनेक शिष्यों ने राजस्थान की आधुनिक मूर्तिकला के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई। कलाविद् गोपीचंद मिश्रा ने पारपंरिक यथार्थवादी तथा महेन्द्र कुमार दास ने व्यक्ति मूर्तन के लिए प्रसिद्धि प्राप्त की। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में राजस्थानी मूर्तिकारों ने पत्थर के अलावा अन्य माध्यमों पर भी अपने हाथ आजमाये। प्लास्टर, लकड़ी व धातु की मूर्तियां भी आकार लेने लगी। नारायण लाल जैमिनी, अय्याज़ मोहम्मद, आनन्दी लाल वर्मा, बृजमोहन शर्मा, सोहनलाल खत्री आदि ने अपने रचनाकर्म से राजस्थान की मूर्तिकला को समृद्ध किया। 1960–65 के बाद राजस्थान की मूर्तिकला में प्रयोगवाद दिखाई देता है। हरिदत्त गुप्ता के काष्ठशिल्प, ऊषा रानी हूजा के सीमेंट शिल्प उल्लेखनीय है। विविध कला संस्थानों में मूर्तिकला विभागों का संचालन भी नव प्रयोगों व नव सर्जना के लिए मार्गदर्शक बना। ऊषा रानी हूजा, गोपीचन्द मिश्रा, अर्जुन प्रजापति आदि राजस्थान की कला के आधुनिक स्वरूप को गढ़ने वालों में सुपरिचित नाम हैं।

स्व. गोपीचन्द मिश्रा :–

कलाविद् गोपीचन्द मिश्रा राजस्थान की मूर्तिकला को नई दिशा व पहचान दिलाने वाले मूर्तिकार थे। 13 नवम्बर 1907 को इनका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ जहाँ संगमरमर पर छैनी–हथोड़े का संगीत गूंजता था। अपने नाना से कला के गुर सीखे और पत्थरों को प्राणवान बनाने में पूरा जीवन लगा दिया। कुछ महीने हरिद्वार में रहकर अपनी प्रतिभा से लोगों को चमत्कृत करने वाले गोपीचन्द जी ने अपनी वास्तविक कर्मस्थली जयपुर को ही बनाया तथा नोका विहार, शिवताण्डव आदि गतिपूर्ण मूर्तियों के निर्माण से अपनी विशिष्ठ पहचान बनाई। धार्मिक मूर्तियों के साथ–साथ अपने अन्तर्मन के भावों को भी मूर्तरूप देने में आप अग्रणी रहे। 'मां और शिशु' की वात्सल्यमय मूर्ति इसका प्रमाण है। यह मूर्ति मां की ममता और बालक की चंचलता का अद्भूत प्रदर्शन करती है (चित्र सं. 1)। इस कृति को राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया। 'शिव शक्ति' शीर्षक से बनाई मूर्ति में शिव का

चित्र संख्या 1मां व शिशु

चित्र संख्या 2 ऊषा रानी हूजा का एक शिल्प

अनोखा स्वरूप प्रदर्शित हुआ है। इस कृति में शारीरिक सौष्ठव, लावण्य एवं गति का सुन्दर समन्वय है। ''यह बोझ नहीं मेरा भाई है'' नामक कलाकृति दो भाईयों के प्रेम माधुर्य का सुन्दर प्रस्तुतिकरण है। इस मूर्ति में विद्यालय से घर लौटते दो भाइयों को बनाया गया है जिसमें बड़ा भाई अपने छोटे भाई को पीठ पर बैठाकर स्नेहपूर्वक ला रहा है।

यह कृति भी राजस्थान ललित कला अकादमी से पुरस्कृत हुई। ग्रामीण वृद्ध व्यक्ति की मूर्ति भी मानव शरीर की नश्वरता के प्रति सावचेती का उदाहरण है। इनके अलावा अनेक मूर्तियां संगरमरमर, बालुए पत्थर (सैण्ड स्टोन) मिट्टी पलास्टर आदि में आप द्वारा सृजित की गई। मूर्तिकला के जो संस्कार आपको विरासत में मिले उन्हें सहेजते हुए आपने अगली पीढ़ी को सौंपा है।

मूर्तिकला को बढ़ावा देने के निमित्त आपने 'सनातन धर्म मूर्ति आर्ट' संस्थान की स्थापना की।

कला सेवा के लिए राजस्थान ललित कला अकादमी ने आपको 'कलाविद्' की उपाधि से अलंकृत किया। 4 मार्च 1989 को आपने इस नश्वर संसार को हमेशा के लिए त्याग दिया लेकिन जीवन संध्या तक रची उनकी सृजना पीढ़ियों तक उनका स्मरण कराती रहेंगी।

ऊषा रानी हूजा– (1923–2016ई.)

18 मई 1923 को दिल्ली में जन्मी ऊषा रानी हूजा भारत की आधुनिक मूर्तिकला क्षेत्र का सुपरिचित नाम है। इन्होंने मूर्तिकला की विधिवत शिक्षा लंदन के रिजेन्ट स्ट्रीट पोलिटेक्नीक कॉलेज से ली। 1959ई. में इन्होंने जयपुर को अपनी कर्मस्थली बनाया। इन्होंने शुरू से ही कठोर व श्रमसाध्य मूर्तियां बनाने में रूचि ली। बड़े आकार की सीमेन्ट मूर्तियां इनकी पहचान है। लंदन में शिक्षा ग्रहण करने के समय इन पर यूरोपीय मूर्तिकारों का विशेषतः हेनरी मूर, एक्टिन मूलॉल आदि का प्रभाव पड़ा लेकिन वह अपनी कला की बुनियाद प्रेरणा मानवीय गतिविधियों को मानती थी। इनके विषय श्रमिक, खिलाड़ी, नृतक, कृषक आदि रहे हैं। इनके मूर्तिशिल्प भारत व भारत के बाहर अनेक महत्वपूर्ण स्थानों पर प्रदर्शित हैं। जयपुर के सवाई मानसिंह अस्पताल, रवीन्द्र रंगमंच, दुर्लभ जी अस्पताल, शहीद स्मारक आदि स्थानों पर बने विशाल शिल्प इनकी कठोर कला साधना को दर्शाते हैं। इन्होंने धातु के अनुपयोगी टुकड़ों को सुन्दर मूर्तरूप देने का अभिनव प्रयोग किया। ऊषा रानी के शिल्पों में अनावश्यक अलंकरण नहीं है बल्कि सीधे–सीधे खुरदरी सतह के साथ विषय का रूपांकन किया गया है। रिसर्च स्कॉलर (अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली), माइनर्स मॉन्यूमेन्ट (कोटा) श्रमिक (उदयपुर),

चित्र संख्या 3 बणी–ठणी

घूमर (जोधुपर) आदि उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ है(चित्र सं. 2)। समीक्षक हेमन्त शेष ने उनकी कला पर टिप्पणी करते हुए लिखा है ''इनके अधिकांश शिल्प जीवन की गति व लय की अभिव्यक्ति हैं।'' 22 मई 2016 को इनका निधन हो गया।

पद्मश्री अर्जुनलाल प्रजापति – (1957ई.)

राजस्थान की मूर्तिकला के क्षेत्र में पद्मश्री अर्जुन प्रजापति ने अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। इनका जन्म 9 अप्रैल 1957 को हुआ। बाल्यकाल से ही कला के प्रति इनका रूझान था। गुंथी हुई मिट्टी को विविध आकार देकर इन्होंने अपने भीतर की कला को मूर्त रूप दिया। इनकी नैसर्गिक प्रतिभा को कलागुरू स्वर्गीय महेन्द्रदास, द्वारकाप्रसाद शर्मा और आनन्दी लाल वर्मा ने निखारा। स्वयं अर्जुन प्रजापति भी अपनी हर उपलब्धि को अपने कलागुरूओं का आशीर्वाद मानते हैं। इनका मानना है कि मूर्ति बनाना श्रमसाध्य कला है। यह कठोर तप है जो अन्ततः ईश्वर प्राप्ति का मार्ग है। अर्जुन प्रजापति की यह साधना इनके मूर्तिशिल्पों में प्रत्यक्ष अनुभव की जा सकती है। यथार्थ जीवन की कठिनाइयों के बीच अपने विषय तलाशना और उन्हें जीवन्त स्वरूप देना इनकी विशेषता है। इनके कुशल हाथों में पत्थर भी मोम की तरह मुलायम बन जाता है। इनकी बनाई बणी–ठणी की मूर्ति जगप्रसिद्ध है (चित्र सं 3)। संगमरमर के इस शिल्प में वस्त्रों की सिलवटें और घूंघट की पारदर्शीता दर्शनीय है। देश–विदेश के प्रतिष्ठित संस्थानों में इनकी मूर्तियां सज्जित हैं। राजस्थान ललित कला अकादमी से राज्य पुरस्कार, राष्ट्रीय कालीदास पुरस्कार, महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन अवार्ड, नेशनल अवार्ड सहित अनेक पुरस्कारों से आपको नवाजा गया है। भारत सरकार ने सन् 2010 में इन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया है। अर्जुन प्रजापति मूर्तिकला की नयी पौध तैयार करने के लिए भी सतत् प्रयासरत रहे हैं। इनका ''माटी मानस संस्थान'' स्थापित करना इस क्षेत्र की उल्लेखनीय पहल है। बणी–ठणी, गाय–बछड़ा, लेडी विद रोज़, राजस्थानी स्त्री, दुर्गा आदि इनके प्रसिद्ध मूर्तिशिल्प हैं।

राजस्थान की समकालीन मूर्तिकला –

चित्रकला की अपेक्षा मूर्तिकला में प्रयोगवाद का प्रवेश अपेक्षाकृत देर से व धीरे हुआ है। राजस्थान की मूर्तिकला मूलतः पारम्परिक व धार्मिक विषयों तक सीमित रही। धीरे–धीरे मूर्तिकारो ने यथार्थ आकारों के साथ विषयगत परिवर्तन किये। जीवन को केन्द्र मानकर मूर्तियों का सृजन किया। विविध माध्यमों का प्रयोग और विश्व कला के नवप्रभावों से राजस्थान में मूर्तिकला के नये दौर का आरंभ होता है। 1965 के बाद प्रयोगवाद ने गति पकड़ी। कलाकारों के विविध समूहों व कला संस्थानों ने वातावरण निर्माण में महत्ती भूमिका निभाई। राजेन्द्र मिश्रा, ज्ञानसिंह, नरेश भारद्वाज, हर्ष छाजेड़, पंकज गहलोत, अशोक गौड़ आदि मूर्तिकार 80 के दशक के बाद महत्वपूर्ण है। इनके काम में पारपंरिक के स्थान पर नवीन कला चेतना और अमूर्त अब्स्ट्रेक्ट आकार दिखाई देते हैं।

गणना की दृष्टि से राजस्थान के समकालीन मूर्तिकार कम हैं लेकिन मूर्ति जैसे श्रमसाध्य माध्यम के साथ काम करने वाले राजस्थानी कलाकारों की कला देश–विदेश के ख्यातनाम कलाकारों से किसी भी दृष्टि में कम नहीं है। ज्ञानसिंह के मूर्तिशिल्पों में संगमरमर पिघलते मोम की तरह दिखता है। वहीं पंकज गहलोत ने काले पत्थरों को अपने हाथों से तराश कर हीरे जैसा मूल्यवान बना दिया है। पंकज महानगर की चमक दमक से सुदूर प्रकृति के आंचल में अपने सृजन में आनंदित हैं इनकी मूर्तियों में प्रकृति और मानव का सुन्दर समन्वय है। (चित्र सं. 4)।

चित्र संख्या 4 युगल(पंकज गहलोत)

चित्र संख्या 5 अंकित पटेल का एक शिल्प

अंकित पटेल ने काष्ठ प्रतिमाओं से अपनी यात्रा शुरू की जिसे विशाल धातु के कायनैटिक स्कल्पचर बनाने की ऊंचाई तक ले आये हैं। जीवन के अनुभवों का सार इनके शिल्पों में दिखता है (चित्र सं. 5)।

मूर्तिकारों की इस पीढ़ी में भूपेश कावड़िया एक ऊर्जावान सृजक हैं जिनके काम में निरन्तरता दिखाई देती है। पत्थर और लकड़ी के कलात्मक संयोग से स्त्री देह के विविध आयामों को जीवन्त कर देने की क्षमता इनके काम में दिखती है (चित्र सं. 6)। अशोक गौड़ के शिल्पों में गति और ठहराव का सामंजस्य दिखता है। राजस्थान की समकालीन मूर्तिकला में अनेक युवा चेहरें है जो अपने अंतस के कलाकार की छटपटाहट को पत्थर, लकड़ी धातु, फाईबर जैसे माध्यमों से प्रकट करना चाहते हैं।

चित्र संख्या 6 भूपेश कावड़िया का एक शिल्प

राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट और अन्य कला संस्थानों के मूर्तिकला विभाग इन युवाओं को प्रशिक्षण और प्रेरणा देकर उनके संवेदनशील कलाकार को अंतर्राष्ट्रीय स्तर का बनाने में महत्ती भूमिका निभा रहे हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. राजस्थान की मूर्तिकला 1960–65 के बाद प्रयोगवाद की ओर अग्रसर हुई।
2. मालीराम शर्मा और टी.पी. मित्रा ने राजस्थान में मूर्तिकला के लिये नवीन वातावरण का सृजन किया।
3. मालीराम शर्मा को राजस्थान का माईकल एंजिलो कहा जाता है।
4. महेन्द्र कुमार दास व्यक्ति मूर्तन के लिये प्रसिद्ध थे।
5. कलाविद् गोपीचंद मिश्रा ने अनेक पारम्परिक व यथार्थ परक मूर्तियां बनाई।
6. ऊषा रानी हूजा राजस्थान की प्रसिद्ध महिला मूर्तिकार थी।

7. अर्जुन लाल प्रजापति ने राजस्थान की मूर्तिकला को नई पहचान दी।

8. राजस्थान के युवा मूर्तिकारों में समकालीन भारतीय कला जगत में महत्वपूर्ण स्थान बनाया है।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्र 1 कायनेटिक स्कल्पचर के लिये किसे जाना जाता है ?

प्र 2 किसके मूर्तिशिल्पों में संगमरमर मोम की तरह दिखता है?

प्र 3 रिसर्च स्कॉलर किसका मूर्तिशिल्प है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्र 1 ''बोझ नहीं मेरा भाई है'' किसकी कृति है?

प्र 2 राजस्थान का माईकल एंजिलो किसे कहते है?

प्र 3 राजस्थान से किस मूर्तिकार को पदम्श्री से विभूषित किया गया है?

प्र 4 संगमरमरर की पारम्परिक मूर्तियों के लिए कौनसा शहर प्रसिद्ध है ?

निबन्धात्मक प्रश्न

प्र 1 राजस्थान की समकालीन मूर्तिकला पर लेख लिखिए ।

प्र 2 उषा रानी हूजा के कृतित्व व व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए ।

प्र 3 राजस्थान की आधुनिक मूर्तिकला की विकास यात्रा समझाइये ।

खण्ड – द
प्रायोगिक चित्रकला

प्रायोगिक कार्य

किसी भी कला का सैद्धान्तिक पक्ष नियम, उपनियमों के ज्ञान के लिए आवश्यक होता है परन्तु कला मूलतः अभ्यास का विषय है। बिना सतत् अभ्यास के किसी भी कला को आत्मसात कर उसे मूर्त रूप देना संभव ही नहीं है। पढ़े हुए कला सिद्धातों का प्रयोगिक रूप से अभ्यास करने पर भी कला सर्जना में पारंगत हुआ जा सकता है। विद्यार्थियों के लिए प्रायोगिक कार्य को दो खंडों में विभक्त करके अध्ययन करना चाहिए। वस्तु चित्रण, दृश्य संयोजन।

वस्तु चित्रण –

सदियों से कलाकारों ने अपने चित्रों के लिए वस्तु चित्रण को विषय के रूप में चुना है। इसके बहुत से कारण रहे हैं। भीतर के विचार को प्रतिबिम्बित करने के लिए प्रकृति की सुन्दरता आत्मसात करने के लिए और अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए, स्थिर जीवन में गति दर्शाने के प्रयास के रूप में कलाकारों ने इसे अपना प्रिय माध्यम बनाया। विश्व के ख्यातनाम कलाकारों ने स्टिल लाईफ या वस्तु चित्रण पर आधारित अपनी मास्टर पीस कृतियां रची हैं। पॉल सेजां, फ्रासिंसको डी जुर्बरान, जॉर्ज ब्रॉक, विन्सेट वॉन गोग आदि की स्टिल लाईफ कृतियां प्रसिद्ध है। विन्सेट वॉन गो की कृति ''सूरजमुखी'' विश्व की कुछेक ख्याति प्राप्त कृतियों में से एक है। हमारे आस–पास के सभी चल–अचल आकार वृत्त, शंकु या घनाकार रूपों को प्रतिबिम्बित करते हैं। वस्तु चित्रण के लिए हमें इन्हीं रूपाकारों को केन्द्र में रखकर वस्तुओं का चयन करना होता है। न्यूनतम तीन वस्तुओं का समूह अध्ययन के

वस्तु चित्र

वस्तु चित्र

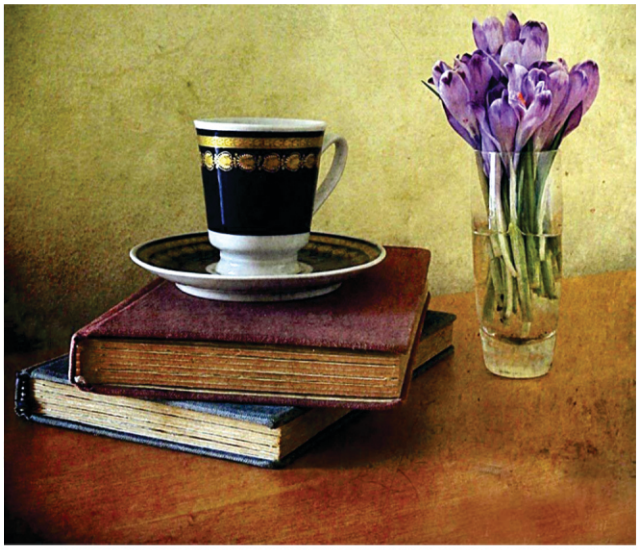

वस्तु चित्र

वस्तु चित्र

लिए श्रेष्ठ होता है जिसमें एक वस्तु अनिवार्यतः घनाकार होनी चाहिए। इन वस्तुओं को उनके बड़े–छोटे आकार के अनुसार व्यवस्थित करने चाहिए। पीछे पर्दे का प्रयोग इनकी स्पष्टता और आकर्षण को बढ़ा देता है। किसी एक दिशा से प्रकाश इन पर पड़े तो इनका सौंदर्य द्विगुणित हो जायेगा। चित्रण के लिए सर्वप्रथम पेंसिल द्वारा हल्का रेखांकन करना चाहिए। एच. बी., बी. या 2बी., 4बी., 6बी. पेंसिल का प्रयोग करना चाहिए। वस्तु समूह का भलिभांति निरीक्षण कर उसके स्वरूप को आत्मसात करना चाहिए। चित्रतल (ड्रॉईंग शीट) पर वस्तुओं के आकारानुसार विभाजक रेखाएं बनानी चाहिए। जिसमें संयोजन के सिद्धांतों को दृष्टिगत रखना चाहिए। रंग भरने के लिए जलरंग, टेम्परा या क्रेयॉन का उपयोग करना चाहिए। जलरंग अथवा टेम्परा के लिए ऐसा कागज़ प्रयोग में लिया जाना चाहिए जिसमें पानी को सहन करने की क्षमता हो। कार्ट्रीज पेपर, कैन्ट पेपर अथवा हस्तनिर्मित कागज़ (विशेषतः पूना हैण्डमेड) श्रेष्ठ माने जाते हैं। पानी के सम्पर्क में आने पर ये कागज़ जल्दी खराब नहीं होते। जलरंग में चित्रण करते समय हल्के से गहरे की ओर बढ़ना चाहिए। चूंकि ये पारदर्शी होते हैं इनमें सफेद रंग का प्रयोग नहीं किया जाता है।

हाईलाईट वाले क्षेत्रों रिक्त छोड़ते हुए पहले हल्की रंगतों का प्रयोग करते हुए अंत में गहरी रंगतों से चित्र को पूर्ण करते हैं। जलरंग के प्रयोग में रंगों की शुद्धता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। मैले रंगों के प्रयोग से चित्र खराब हो सकता है। जिसे सुधारना संभव नहीं होता।

पारंपरिक रूप से टेम्परा माध्यम बहुत लोकप्रिय रहा है। ये लघुचित्र शैलियों के समय से प्रचलन में है। पहले सूखे रंगों में गोंद या सरेस मिलाकर इन्हें तैयार किया जाता था। लेकिन आजकल पोस्टर कलर के रूप में तैयार मिलते हैं। ये अपारदर्शी होते हैं। इसमें कलाकार स्वअभ्यास के अनुसार रंगतों का प्रयोग करता है। लेकिन हाईलाईट क्षेत्र व अत्यन्त गहरे क्षेत्रों को अन्त में फिनिश किया जाता है। यर्थाथपरक प्रभाव के लिए ये श्रेष्ठ माध्यम है। टेम्परा में प्रायः पूरे चित्रतल को रंगों से भरा जाता है अर्थात पृष्ठभूमि आदि में भी रिक्त स्थान नहीं छोड़ा जाता है। वस्तुचित्रण में छाया–प्रकाश को विशेष महत्व के साथ दर्शाया जाना चाहिए ताकि त्रि–आयामी प्रभाव उत्पन्न किया जा सके। चित्रित की जाने वाली वस्तुओं द्वारा चित्रतल का लगभग 60 प्रतिशत क्षेत्र को घेरा जाना चाहिए। शेष भाग पृष्ठभूमि व अग्रभूमि के लिए छोड़ा जाना चाहिए।

चित्र संयोजन –

इसके लिए अपने आस–पास के जीवन का अध्ययन तथा उनमें से चित्रण विषय खोजने चाहिए जैसे ग्राम्य जीवन, पनघट, यात्रा, प्रतीक्षा, बस–स्टैण्ड, लोक उत्सव, नृत्य, परिश्रम आदि। दृश्य संयोजन के लिए मानवाकृतियों को प्रकृति व अन्य रूपाकारों के साथ संयोजित किया जाना चाहिए। मानवाकृतियों के अंकन के लिए उन्हें यथार्थपरक बनाना आवश्यक नहीं होता बल्कि अपने ज्ञान व सृजनक्षमता से उनका अनुर्कन करना चाहिए। संयोजन में विषय के साथ चित्रतल का प्रयोग रंग और भाव को महत्व दिया जाना चाहिए। तीन मानवाकृतियों के साथ संयोजन का अभ्यास किया जाना चाहिए। इनका आपसी

संतुलन व सामंजस्य (विचार सामंजस्य, आकार सामजंस्य, भाव सामंजस्य) महत्वपूर्ण होता है। श्रेष्ठ संयोजन के लिए विविध प्रयोगों का ज्ञान बड़े चित्रकारों की कृतियों का अध्ययन करने से प्राप्त किया जा सकता है। हमेशा प्रतिकृति बनाने के स्थान पर नवसर्जना करनी चाहिए। चित्र संयोजन में पात्र चित्रण में उसके शील स्वरूप, उसके अंतस की प्रवृत्तियों को भी प्रत्यक्ष करना पड़ता है। उसी प्रकार उसके अंग सौष्ठव को भी प्रत्यक्ष करना पड़ता है। प्रकृति के नाना रूपों के साथ मनुष्यों के हृदय का सामंजस्य दिखाने और प्रतिष्ठित करने के लिए वन, पर्वत, निर्झर आदि अनेक पदार्थों को ऐसी स्पष्टता के साथ अंकित करना पड़ता है कि दर्शक का अंतःकरण उनका पूरा बिम्ब ग्रहण कर सके। दृश्य चित्रण में केवल अर्थ ग्रहण कराना नहीं होता बल्कि भाव ग्रहण कराना भी होता है। यह भाव ग्रहण किसी वस्तु के आकार मात्र से नहीं हो सकता है। आस–पास की अन्य वस्तुओं के बीच उसकी स्थिति व विभिन्न अंगों की संश्लिष्ट योजना के साथ सामंजस्य द्वारा ही संभव होता है। ऐसा आदर्श चित्र संयोजन सतत अभ्यास और सूक्ष्म निरीक्षण से ही संभव होता है। चित्र का प्रथम उद्देश्य सौंदर्य की प्रस्तुति होता है। अतः चित्र बनाते समय हमें उसे आकर्षक व सौंदर्य युक्त बनाने को महत्व देना चाहिए। वस्तु चित्रण और चित्र संयोजन में दक्षता के लिए रेखांकन (स्केचिंग) व त्वरित रेखांकन (रेपिड स्केचिंग) का पेंसिल से सतत अभ्यास करना चाहिए। स्केचिंग से कला विद्यार्थियों को आकारों की बनावट, अनुपात, क्षयवृद्धि व स्थितिजन्य लघुता आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। अनुर्कन या आकारों के साथ प्रयोग तभी आकर्षक हो पायेगा जब हमें आकारों की वास्तविक सरंचना का ज्ञान होगा। प्रायोगिक कार्य विद्यार्थी के अभ्यास एवं सृजनक्षमता का प्रतिबिम्ब होता है। विद्यार्थियों को रेखांकन, वस्तुचित्रण व चित्र संयोजन से युक्त सत्रीय कार्य का पोर्टफोलियो तैयार करना चाहिए।

चित्र संयोजन

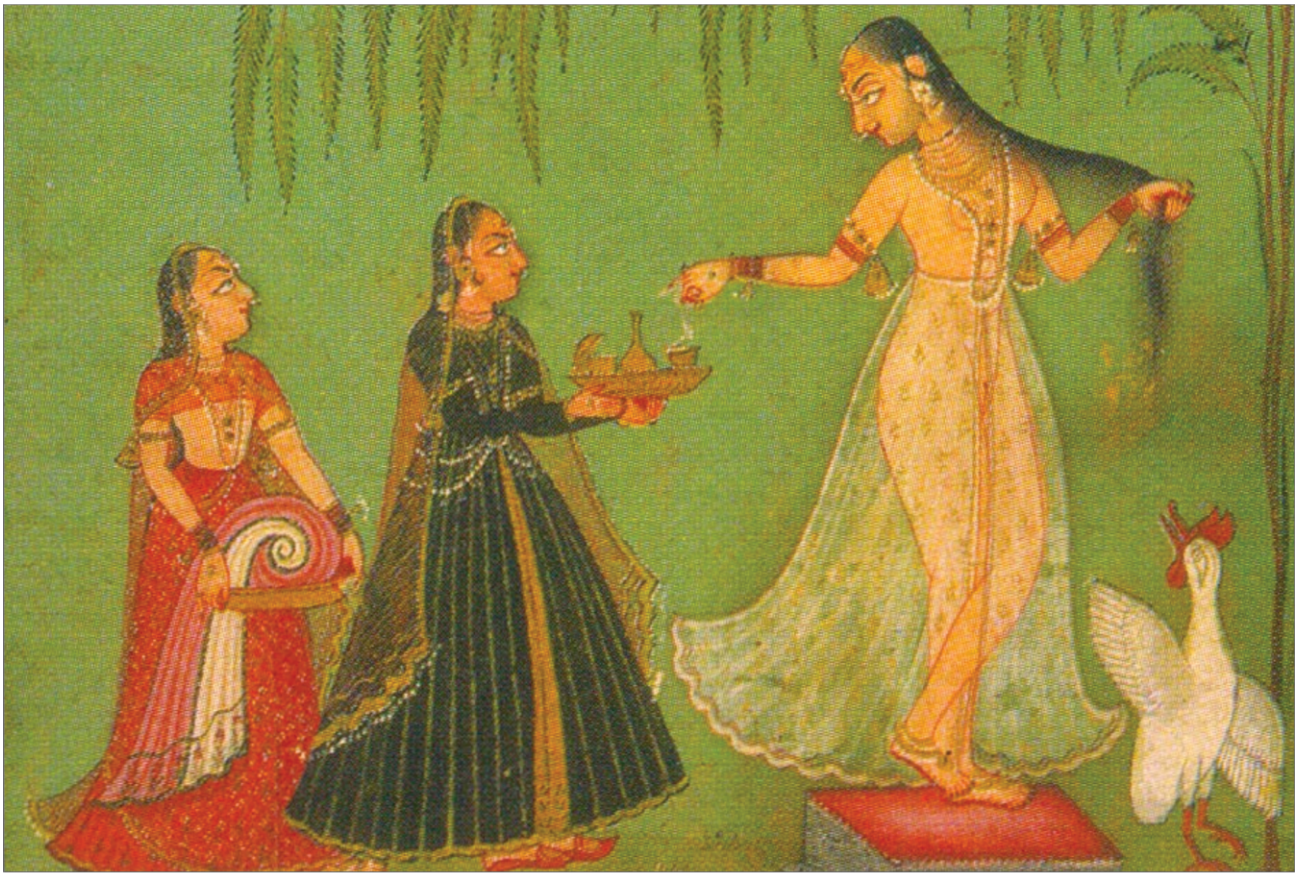

चित्र संयोजन (राजस्थानी लघुचित्र शैली आधारित)

चित्र संयोजन (लोक कला आधारित)

चित्र संयोजन (यामिनी राय)

चित्र संयोजन (अमृता शेरगिल)

चित्र संयोजन (असित कुमार)

परिशिष्ट

– प्रमुख कला संग्रहालय
– प्रमुख कला शिक्षण संस्थाएँ
– विशिष्ट परिभाषाएँ
– पारिभाषिक शब्दावलीं

प्रमुख कला संग्रहालय

1. राष्ट्रीय संग्रहालय, जनपथ, नई दिल्ली : देश का सबसे महत्पूर्ण संग्रहालय है। जिसमें सिन्धुघाटी से लेकर अर्वाचीन तक की कलाकृतियाँ विभिन्न विथिकाओं में प्रदर्शित है।
2. राष्ट्रीय आधुनिक कलादीर्घा, जयपुर हाऊस, नई दिल्लीः देश में समासामयिक कला एवं आधुनिक कलाकृतियों का महत्पूर्ण संग्रहालय है। जिसमें कम्पनी शैली, बंगाल स्कूल से लेकर आज तक के कलाकारों की कृतियाँ संग्रहित है।
3. पुरातत्व संग्रहालय, लाल किला, नई दिल्ली
4. प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई : 1905 में इस महत्वपूर्ण संग्रहालय की नीवं रखी गई एवं आज एक विशाल संग्रहालय है।
5. दी इंडियन म्यूजियम : 27, जवाहर लाल नेहरू मार्ग, कलकत्ता, स्थापना सन् 1875, भरहूत के महत्वपूर्ण शिल्पों के अतिरिक्त कई महत्पूर्ण कृतियाँ संग्रहित।
6. दी विक्टोरिया मेमोरियल म्यूजियम, क्वीन्स वे, कलकत्ता : इस संग्रहालय में भारतीय एवं यूरोपीयन कलाकारों की कृतियाँ संगृहित है।
7. राजकीय संग्रहालय एवं आर्ट गैलरी, पेंटनरोड़, एग्मोर मद्रास : स्थापना सन् 1909 में, इसमें अमरावती स्तूप के शिल्पखंड प्रर्दशित है। दक्षिण भारतीय कांस्य प्रतिमाओं का महत्पूर्ण संग्रह एवं आधुनिक कलाकारों की कृतियों की अलग आर्ट गैलरी है।
8. दी फोर्ट सेंट जार्ज म्यूजियम, बीच रोड़, चेन्नई।
9. दी केलिको म्यूजियम, शांतिबाग, अहमदाबाद : भारतीय हाथकरघा व बुनाई की कलात्मक सामग्री का महत्वपूर्ण संग्रहालय।
10. बड़ौदा म्यूजियम एण्ड पिक्चर गैलरी, सयाजी पार्क, बड़ौदरा।
11. भारत भवन रूपकंर म्यूजियम, भोपाल : लोककथाओं एवं समसामयिक कलाकृतियों का महत्वपूर्ण संग्रह।
12. उड़ीसा स्टेट म्यूजियम, जयदेव मार्ग, भुवनेश्वर।
13. दी आर्केलोजियम म्यूजियम, ओल्डगोआ, गोआ।
14. आसाम राज्य म्यूजियम, गुहाटी, आसाम।
15. सलारजंग म्यूजियम, हैदाराबाद : पूर्वी एवं पश्चिमी कला

का महत्वपूर्ण संग्रहालय।

16. पुरातत्व संग्रहालय, खुजराहों (मध्यप्रदेश)
17. राजकीय संग्रहालय, संग्रहालय मार्ग, मथुरा, उत्तप्रदेश : कुषाणकालीन मूर्तियों का महत्वपूर्ण संग्रह।
18. राजकीय संग्रहालय, बुद्ध रोड़, पटना।
19. राजा दिनकर केलकर म्यूजियम, पूना
20. तंजोर आर्ट गैलरी, पैलेस बिल्डिंग, तंजोर, तमिलनाडू।
21. राजकीय संग्रहालय, तिरूअनन्तपुरम, केरल।
22. भारत कला भवन, बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी : कलामनिषी रायकृष्णदास के निजी प्रयासों से भारतीय कला की श्रेष्ठ कृतियों का संग्रह।

    राजस्थान के महत्वपूर्ण कला केन्द्रो एवं शहरों में राजकीय एवं निजी संग्रह जनता के अवलोकनार्थ स्थापित किये गये है।
23. राजकीय संग्रहालय जयपुर, अलवर, कोटा, बीकानेर, उदयपुर, जोधपुर, भरतपुर, महाराणा प्रताप, सवाई माधोसिंह म्यूजियम, जयपुर आदि भी महत्पूर्ण कलाकृतियों की संग्रहालय है।
24. आधुनिक कला संग्रहालय रविन्द्र मंच, जयपुर, जवाहर कला केन्द्र, जयपुर, पश्चिम, सांस्कृतिक केन्द्र, उदयपुर, लोक मंडल उदयपुर भी राजस्थान की कला के प्रमुख दर्शनीय है।

प्रमुख कला शिक्षण संस्थाएँ :

1. सर जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट, म.गा.रोड़, बम्बई।
2. कॉलेज ऑफ आर्टस् एण्ड क्राट्स, मद्रास।
3. कॉलेज ऑफ आर्टस एण्ड क्राट्स, कुम्भकोणम, जिला तंजोर, तमिलनाडू।
4. कॉलेज ऑफ आर्टस एण्ड क्राट्स, कलकत्ता जवाहरलाल नेहरू मार्ग।
5. रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय, द्वारकानाथ टैगोर लेन, कलकत्ता।
6. कला भवन, विश्वभारती, शांतिनिकेतन, पं. बंगाल।
7. ललितकला संकाय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
8. कॉलेज ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट्स, टैगोर मार्ग, लखनऊ।
9. ललितकला संकाय, एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा।
10. सी.एन. कॉलेज ऑफ आर्ट, एलिसब्रिज, अहमदाबाद।
11. नेशनल स्कूल ऑफ डिजाईन, पालड़ी, अहमदाबाद।
12. गोआ कॉलेज ऑफ आर्ट, मीरमार, पणजी, गोआ।
13. दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, तिलक मार्ग, नई दिल्ली।
14. ललित कला संकाय, जामिया मिलिया ईस्लामिया, नई दिल्ली।
15. गवर्मेंट कॉलेज ऑफ फाईन आर्ट, मसकटेंट, हैदराबाद।
16. कॉलेज ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट्स, शांतिपुर, गुवाहाटी, आसाम।
17. राजकीय ललितकला महाविद्यालय, विद्यापति मार्ग, पटना।
18. ललित कला महाविद्यालय, सेक्टर–10सी, चंडीगढ़।
19. इंसीट्यूट ऑफ म्यूजिक एण्ड फाईन आर्ट, जवाहर नगर, श्रीनगर।
20. इंसीट्यूट ऑफ म्यूजिक एण्ड फाईन आर्ट, एक्सचेंज रोड़, जम्मू।
21. कॉलेज ऑफ फाईन आर्ट, पलयम, तिरूअनन्तपुरम।
22. राजकीय ललित कला संस्थान, सनातन धर्म मन्दिर मार्ग, ग्वालियर।
23. राजकीय ललितकला विश्वविद्यालय, कृष्णपुरा ब्रिज, इन्दौर।
24. दी आई आई एस विश्वविद्यालय, जयपुर।
25. ललितकला संकाय, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
26. राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट, शिक्षा संकुल, जयपुर।
27. ललित कला संकाय, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर।
28. दृश्य कला संकाय, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर।

उपरोक्त संस्थाओं के अतिरिक्त देश के अन्य विश्वविद्यालयों में भी चित्रकला विषय सहित स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम भी संचालित है।

विशिष्ट परिभाषाएँ

(1) अग्रगामी रंगतें
शुद्ध रंग जो अमिश्रित होने के कारण बहुत चमकदार होते हैं और अन्य रंगों से आगे बढ़ते हुए प्रतीत होते हैं। जैसे लाल एवं नारंगी आदि रंग अन्य समस्त रंगों से आगे बढ़ते और शीतल रंग पीछे हटते हुए प्रतीत होते है। मूलतः गर्म रंग ही अग्रगामी होते हैं।

(2) अग्रभूमि
चित्रभूमि का निचला स्थान जो दर्शक को अपने निकट प्रतीत होता है।

(3) अतिप्रकाश
वस्तु का वह भाग जहाँ सर्वाधिक प्रकाश होता है।

(4) अन्तराल
चित्रभूमि का समस्त विस्तार। यह दो प्रकार का होता है – सक्रिय एवं सहायक। सक्रिय अन्तराल मुख्य आकृतियों के समूह से निर्मित होता है और सहायक अन्तराल पृष्ठभूमि से निर्मित होता है।

(5) अंतराल, आकाश, अवकाश **(Space)**
यह सम्पूर्ण त्रिमितीय (Tridimensional) व्याप्ति दर्शाता है।

(6) अभिप्राय
किसी विषय, आकृति अथवा घटना का बारम्बार अंकित किया जाने वाला परम्परागत रूप। जैसे : स्वास्तिक, ताण्डव, योगी, मेडोन्ना, ईसा की सूली आदि।

(7) असम्मात्रा
चित्रसंयोजन में आकृति–रचना को सम्मात्रिक न होने देना। सम्मात्रिकता सो चित्र में जहाँ कृत्रिमता अथवा जड़ता आने की आशंका हो वहाँ सौन्दर्य की दृष्टि से असम्मात्रिक आकृतियों की रचना की जाती है।

(8) अलंकारिक
आकृतियों का वह स्वरूप जिसमें प्राकृतिक रूपों में सूक्ष्मता एवं ज्यामितियता के प्रभाव से सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है।

(9) अनुपात **(Proportion)**
चित्र में भिन्न रंगों, छटाओं, आकारों की लम्बाइ–चौड़ाई व चित्रित वस्तु या प्राणी के भिन्न अंगों के बीच का अनुपात नैसर्गिक रूप की अपेक्षा परम्परा, शैली, कलाकार की व्यक्तिगत अभिरूचि, अभिव्यक्ति की आवश्यकता, सौन्दर्य की कल्पना, फैशन वगैरह बाह्य तत्वों पर ही अकसर निर्भर करता है। ग्रीक कला में आदर्श मानव शरीर की लम्बाई शीर्ष से आठ गुना मानी जाती थी। भारतीय शास्त्रों में देव, मानव, राक्षस वगैरह की आकृतियों के लिए भिन्न अनुपात निर्णित किये हैं। नारी, पुरुष व शिशु के शरीर के अंगों के अनुपात भिन्न होते हैं।

(10) अत्युष्ण रंग **(Hot colour)**
लाल, सेंदूरी एवं तत्सम अतिउत्तेजक रंग।

(11) अग्रभाग **(Foreground)**
चित्रित यथार्थ या आकृति मलक दृश्य का आगे का हिस्सा। वस्तु निरपेक्ष कलाकृति के संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग अर्थहीन है।

(12) अभिश्लेषक **(Agglutinant)**
गोंद जैसा पदापर्थ जिसके साथ मिलाने से रंग कागज़ से चिपकता है।

(13) आकार, आकृति
कलाकार व दर्शक की भावनाओं एवं प्रकाश जैसे चंचल बाह्य तत्वों को छोड़कर रचना तत्वों पर आधारित वस्तु की बाह्याकृति व बनावट। आकार वस्तु के अस्तित्व का दर्शक है। वह वस्तुनिष्ठ है।

(14) आकृति
किसी भी माध्यम में उपयुक्त सामग्री द्वारा प्रस्तुत किया गया रूप। मुख्यतः मानवीय, पशु–पक्षी एवं वानस्पतिक जगत के रूपों को ही इस वर्ग में रखा जाता है।

(15) आकृति मूलक
मानवाकृति का आधार लेकर अंकित की जाने वाली कलाकृतियाँ।

(16) आलेखन
ऐसा अंश अथवा खंड (इकाई) जिसकी आवृत्तियों द्वारा चित्र पूर्ण किया जाये।

(17) आर्द्र भित्ति चित्रण
भित्ति चित्रण की वह प्रविधि जिसमें दीवार के गीले पलस्तर पर ही पतले–पतले रंग लगाये जाते हैं जो पलस्तर सूखने के साथ ही पक्के हो जाते है।

(18) आदिम कला **(Primitive art)**

घने जंगलों में आदिम अवस्था में रहकर संघर्षमय जीवन व्यतीत करने वाली मानव जातियों की कला। इसमें प्रागैतिहासिक (Prehistoric) कला के अतिरिक्त उसके पश्चात् वर्तमान काल तक उसी अवस्था में रह रही जातियों की कला आती है। प्रागैतिहासिक काल के आदिम मानवों से आधुनिक काल की आदिम जातियों में काफी परिवर्तन आने से (जैसे कि जाति व्यवस्था, जीवन यापन के नये संसाधन, वस्त्राभूषण, धार्मिक अन्धविश्वास आदि में) प्रागैतिहासिक कला की अपेक्षा विभिन्न प्रदेशों की वर्तमान आदिम कला में अत्यधिक विविधता दिखायी देती है और कुछ तो कलात्मक दृष्टि से बहुत ही उच्च स्तर की है यहाँ तक कि उससे श्रेष्ठ आधुनिक कलाकारों ने भी प्रेरणा पायी है। बुशमन कला, नीग्रो कला, प्रीकोलंबन (प्राक्कोलंबस) कला व ओशियानिक कला विशेष अभ्यसनीय हैं।

(19) ओप

चमकदार तेल या वार्निश माध्यम के प्रयोग से कलाकृति की बढ़ी हुई चमक। इसकी प्रायः तीन पद्धतियां हैं। प्रथम पद्धति में प्रत्येक रंग में अधिक माध्यम का मिश्रण किया जाता है। द्वितीय विधि में चित्र–रचना के उपरान्त अति प्रकाश वाले भागों में स्थानीय हल्के रंग को माध्यम में मिलाकर पुनः लगा देते हैं जिससे वे स्थान बहुत अधिक चमकने लगते हैं। तृतीय विधि में सूख जाने के उपरान्त सम्पूर्ण चित्र पर ही वार्निश अथवा तेल की परत चढ़ा देते हैं जो सूखकर चित्र के ऊपर चमकदार झिल्ली बना देती है।

(20) इण्टेग्लियो

काष्ठ, धातु अथवा लिनोलियम आदि की आकृतियां खोदकर या छीलकर स्याही लगाकर कागज पर छापना।

(21) इम्पेस्टो

पर्याप्त गाढ़े तैल अथवा टेम्परा रंगों से चित्रण करना। इस प्रकार के चित्रों का प्रयोग तूलिका एवं चाकू से किया जा सकता है।

(22) उच्च कलाएँ

दृश्य कलाओं में से चित्र, मूर्ति एवं वास्तु कलाओं को उच्च माना जाता है। काशीदाकारी, आभूषण, पात्र, खिलौनों एवं बुनाई को निम्न कलाओं में रखा जाता है।

(23) उपयोगी कलाएँ

वे कलाएँ जिनका प्रधान लक्ष्य उपयोग रहता है जैसे बढ़ईगिरी आदि। इन्हें प्रायः निम्न कलाएँ भी कहा जाता है।

(24) उपवर्ण

तृतीय श्रेणी के रंग जो प्राथमिक एवं द्वितीय श्रेणी के मिश्रित वर्णों के मिश्रण से निर्मित किये जाते हैं।

(25) उष्ण वर्ण

लाल तथा नारंगी रंग जो अग्रगामी भी कहे जाते हैं। इनके सहयोग से बनने वाले कत्थई तथा उन्नावी रंग भी इसी वर्ग में आते हैं।

(26) एकवर्णी रंग योजना

एक ही वर्ण के विभिन्न बलों से चित्र पूर्ण करना। विभिन्न बल निर्मत करने के हेतु श्वेत एवं काले रंग का मिश्रण किया जाता है।

(27) एम्बॉसिंग **(Embossing)**

उभारदार चित्र या नक्काशी जो धरातल को पीछे से दबाकर या उत्कीर्ण कर बनायी जाती है।

(28) एक्शन पेन्टिंग

चित्र भूमि पर रंग छिड़कनें, फेंकने, टपकाने अथवा बहा देने से जो अमूर्त प्रभाव उत्पन्न होते हैं। उन्हें अंत में संयोजन की दृष्टि से कुछ सुधार दिया जाता है। इस पद्धति का प्रमुख प्रयोक्ता अमेरिकी चित्रकार जैकसन पौलौक था।

(29) एकाश्मक **(Monolith)**

एक ही पत्थर को उकेरकर बनाया शिल्प या वास्तु– उदाहरणार्थ एलोरा का कैलाश मंदिर।

(30) ऐकेडमिक पद्धति

किसी देश की प्राचीन एवं शैक्षणिक दृष्टि से मान्य परम्पराओं के आधार पर चित्रांकन करना। इस पद्धति में कलाकार अपनी इच्छानुसार कोई परिवर्तन नहीं कर सकता अतः इसमें मौलिकता नहीं होती।

(31) कला

कुशलतापूर्वक किया गया कोई भी कार्य कला कहा जाता है किन्तु सीमित अर्थ में शिवत्व की उपलब्धि के लिए सत्य की सौंदर्यमयी अभिव्यक्ति ही कला है।

(32) कला–ललित एवं उपयोगी
जिनमें सौंदर्य अथवा अभिव्यंजना का उद्देश्य प्रमुख रहता है उन्हें ललित कलाएँ कहते हैं। जिनमें उपयोगिता का ध्यान रखा जाता है उन्हें उपयोगी कलाएँ कहा जाता है। उपयोगी कलाओं को ही प्रायः शिल्प भी कहा जाता हैं किन्तु शिल्प वस्तुतः कलाकृति की रचना से सम्बन्धित पक्ष है जो ललित कलाओं में भी है और उपयोगी कलाओं में भी है।

(33) कला–दृश्य तथा श्रव्य
दृष्टि से सम्बन्धित कलाओं को दृश्य एवं कानों से सम्बन्धित कलाओं को श्रव्य कहा जाता है। चित्र, मूर्ति वास्तु आदि दृश्य कलाएँ और कविता, संगीत आदि श्रव्य कलाएँ है। दृश्य कलाओं को स्थानाश्रित एवं श्रव्य कलाओं को समयाश्रित भी कहा जाता है।

(34) कांच–चित्रण
कांच पर चित्रांकन पर दरवाजों अथवा खिड़कियों में लगा देते हैं। इसके हेतु विशेष प्रकार के रंग अलग बनाये जाते हैं। विभिन्न रंगों के कांच के टुकड़े सादा काँच के ऊपर चिपका कर भी इस प्रकार के चित्र अथवा आलेखन बनाये जाते हैं।

(35) क्षितिज रेखा
चित्र भूमि की सभी आकृतियों की रंखाएँ यदि बढ़ा दी जाये तो वे क्षितिज रेखा पर जाकर मिल जाती है। इसे दृष्टि तल भी कहते हैं। चित्र की आकृतियों के समस्त तल इस रेखा के समानान्तर, ऊपर या नीचे होते हैं।

(36) क्षितिज **(Horizon)**
वह वृत्ताकार रेखा जहाँ गुरुत्वाकर्षण की दिशा के अभिलम्ब समतल भूमि द्वारा आकाशीय गोल को काटने का आभास होता है।

(37) क्षैतिज रेखा **(Horizontal line)**
क्षितिज के किन्हीं दो बिन्दुओं को जोड़ने वाली या उसी के समानान्तर रेखा।

(38) खनिज वर्ण
मिट्टी, पत्थर आदि पदार्थों से निर्मित रंग जैसे गेरू, खड़िया, रामरज, हिरोंजी आदि।

(39) गढ़नशीलता
कलाकृति में उभार तथा गहराई के प्रयोग से त्रिआयामी प्रभाव उत्पन्न करने की विधि। इससे वस्तु में घनत्व की सृष्टि होती है।

(40) ग्राफिक कलाएँ
वे कला रूप जिनमें पहले किसी सतह पर उल्टा चित्र अंकित किया जाता है। फिर उस पर स्याही लगाकर सीधा छापा जाता है। इसके हेतु प्रायः पत्थर, काष्ठ, लिनोलियम एवं धातु की प्लेट की सतह का प्रयोग किया जाता है।

(41) गेसो **(Gesso)**
टेम्पेरा पद्धति के चित्रण से पहले उचित धरातल बनाने के लिए प्लास्टर या चॉक जैसे सफेद चूर्ण व सरेस या केसीन जैसे बन्धक के घेल को मिश्रित करके तैयार किया लेप। इसका उपयोग मूर्ति, उभारदार शिल्प या चित्र के चौखटे बनाने के लिए भी किया जाता है। प्राचीन काल में इसका प्रयोग तैलचित्रण में कैनवास का धरातल बनाने के लिए भी किया जाता था। किन्तु इससे कुछ समय बाद चित्र पर दरारें आती हैं।

(42) घनत्व
किसी वस्तु अथवा आकृति का त्रिआयामी स्वरूप।

(43) चित्रवल्लरी **(Frieze)**
वास्तु पर चित्रित या तक्षित आलंकारिक माला।

(44) छाया–प्रकाश
रंग के हल्के–गहरे बलों अथवा श्वेत–काले के प्रयोग से आकृतियों के प्रकाशित एवं अंधेरे वाले भागों का चित्रण।

(45) छींट, बातिक **(Batik or Battik)**
कपड़े पर आलंकारिक आकृति या चित्र बनाने की एक विधि। इस विधि में प्रथम कपड़े पर पिघले हुए मोम से आकृति बनायी जाती है। शेष हिस्से को लाख के रंगों से रंजित करने के पश्चात् मोम को हटाया जाता है।

(46) छटा, तान **(Tone)**
किसी भी रंग का हल्का या गहरापन।

(47) ज्यामितिक रूप
ज्यामिति में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख आकृतियों – घन, बेलन, शंकु एवं पिंड – पर आधारित रूप।

(48) टेम्पेरा रंग **(Tempera colour)**
आजकल अपारदर्शी जलरंगों को भी टेम्पेरा रंग कहते हैं किन्तु पहले अण्डे की जरदी मिलाए रंगों को टेम्पेरा

कहते थे।

(49) टेम्पेरा चित्रण **(Tempera painting)**
रंगद्रव्य को अण्डे की जरदी जैसे एल्ब्युमिनयुक्त या कोलायडीय (Colloidal) पदार्थ व पानी में मिलाकर चित्रण करने की विधि।

(50) तटस्थ रंग
श्वेत तथा काले वर्ण ये वस्तुओं के छाया–प्रकाश को प्रदर्शित करते हैं।

(51) तान
वस्तु पर छाया अथवा प्रकाश की मात्रा। इसे रंगों के विभिन्न बल अथवा मान प्रदर्शित करते हैं।

(52) निर्वर्ण रंग–योजना
ऐसी रंग योजना जिसमें रंग–हीनता के समान अनुभूति हो जैसे कत्थई, बादामी, काला।

(53) पच्चीकारी **(Mosaic)**
रंगीन पत्थर, कांच या मार्बल के टुकड़ों को मसाले में बिठाकर बनाया गया अलंकरण या चित्र। प्राचीन मिस्र व मेसोपोटामिया में छोटे पैमाने पर इस पद्धति से अलंकरण किया जाता था। बिजांटाइन साम्राज्य में जस्टिनियन के शासनकाल में सर्वोत्कृष्ट दर्जे के बड़े आकारों के व चमकीले पच्चीकारी चित्र बनाये गये। अब इसका महत्व और बढ़ गया है व मार्बल के अतिक्ति नवीन आविष्कृत सामग्री का उपयोग करके दीवारों व फर्श पर पच्चीकारी की जाती है।

(54) पूरक वर्ण **(Complementary colours)**
1. वर्णक्रम (spectrum) के ऐसे दो रंग जिनके मिश्रण से श्वेत (प्रायः श्वेत) रंग बन जाता है; उदाहरणार्थ लाल व हरा, पीला व जामूनी, नीला व नारंगी। 2 . लाल, पीला व नीला इन तीन मूल रंगों में से किन्हीं दो रंगों के मिश्रण से प्राप्त द्वितीय (secondary) रंग शेष तीसरे रंग का पूरक वर्ण होता है।

(55) पायस **(Emulsion)**
तैलीय पदार्थ का अन्य द्रव में घोल। पायसीकरण के लिए अण्डा, अल्ब्युमेन, केसीन या मोम को साथ में मिलाना पड़ता है।

(56) पोत, बुनावट **(Texture)**
कलाकृति की सतह का स्पर्शग्राह्य गुण।

(57) पुंज
रंग अथवा छाया–प्रकाश से निर्मित सीमा–रेखा–विहीन क्षेत्र।

(58) पृष्ठभूमि
(1) चित्रतल का वह भाग जो प्रायः क्षितिज तथा आकश से सम्बन्धित रहता है।
(2) किसी चित्र में मुख्य आकृतियों के पीछे अंकित वातावरण अथवा दृश्य।

(59) फिक्सेटिव
चित्र बन जाने पर स्प्रे किया जाना वाला घोल। यह प्रायः पेस्टल द्वारा निर्मित चित्रों पर छिड़का जाता है। इससे रंग स्थायी हो जाते हैं।

(60) फ्रेस्को, भित्ति चित्र **(Fresco)**
योरोप में फ्रेस्को चित्रण मुख्यतः दो विधियों से किया जाता रहा है। प्रथम विधि में पलस्तर की हुई सूखी दीवार पर जलरंगों से चित्रण किया जाता है जिसे फ्रेस्को सेक्को (Fresco secco) कहते हैं। इससे बनाये चित्र न स्थायी रहते हैं और न उनमें रंगों की एकसी चमक होती है। दूसरी दूसरी विधि में गीले पलस्तर पर जलरंगों में काम किया जाता है। इस विधि के रंग पक्के हो जाते हैं व पलस्तर को हटाये बिना चित्र को मिटाया नहीं जा सकता। इस विधि को फ्रेस्को ब्वान (Fresco buon) कहते हैं। इस विधि का प्रयोग इटली में लगभग 14वीं से 16वीं सदी तक हुआ। इस विधि में साधारण पलस्तर पर विशेष आरित्चोतो पलस्तर (Arricciato) चढ़ाया जाता है जिस पर चित्र का रेखांकन उतारा जाता है। अब इसके ऊपर फिर उतने हिस्से पर पुनः पलतर चढ़ाया जाता है जितने पर एक दिन में चित्रण हो सके। इसे इन्तोनाको (Intonaco) कहते हैं। इस तरह विभिन्न हिस्सों में कार्य करके भित्तिचित्र पूरा किया जाता है। भित्तिचित्रण की भारतीय विधियाँ विविध प्रकार की हैं।

(61) बाध्य पदार्थ
वह पदार्थ जो रंगों के चूर्ण के कणों को बाँधने के हेतु मिलाया जाता है। जैसे तेल, गोंद या सरेस।

(62) बिन्दुवर्तना
छोटे–छोटे बिन्दुओं के द्वारा छाया–प्रकाश देना अथवा रंग भरना।

(63) ब्लूम **(Bloom)**
पुराने वार्निश किये हुए तैलचित्र पर निकलने वाली धुंधली हल्की नीली परत, इसको Bluing भी कहते हैं।

(64) भूमि
चित्र का वह स्थान अथवा क्षेत्र जिस पर चित्र की रचना की जाती है।

(65) भूरंग **(Earth colours)**
कुछ खनिज रंग मिट्टी के रूप में मिलते हैं। इनको भूरंग कहते हैं– उदाहरणार्थ ओकर्स, अम्बर्स, स्टोन ग्रीन, टेरा वर्ट, वान डाइक ब्राउन, वेनिशियन रेड (Ochres, Umbers, Stone Green, Terre Verte, Vandyke, Brown, Venetian Red)

(66) भित्तिचित्र **(Mural painting)**
दीवार पर बनाया भित्तिचित्र या पट या फलक पर बनाके दीवार को स्थायी रूप से जोड़ दिया चित्र। भित्ति चित्रण के प्रमुख माध्यम हैं फ्रेस्को, टेम्पेरा, तैल रंग, पच्चीकारी व रंगीन कांच चित्र (Stained glass)।

(67) मान
किसी भी रंग का छाया अथवा प्रकाश के विचार से गहरा या हल्कापन। इसे तानका मान भी कहते हैं।

(68) मणिकुट्टिकम
भित्ति अथवा भूमि पर रंगीन पत्थर एवं काँच के टुकड़ों द्वारा बनाये गये चित्र अथवा अभिकल्प (डिजाइन)।

(69) मध्य तान
किसी भी वर्ण का वह बल जो काले तथा श्वेत के मय बल अर्थात भूरे बल के अनुरूप हो।

(70) मध्यभूमि
चित्र भूमि का मध्य भाग। इस पर प्रायः चित्र की प्रमुख आकृतियां स्थित रहती है। इसके पीछे पृष्ठभूमि एवं नीचे अग्रभूमि कहलाती है।

(71) माध्यम
वह तरल पदार्थ जिसमें रंग घोल कर चित्रांकन किया जाता है। इसे रंग का वाहन भी कहते है। जल, तैल, टेम्परा एवं शुष्क – ये प्रमुख माध्यम हैं।

(72) मिश्रित वर्ण
वे वर्ण जो प्राथमिक वर्णों के मिश्रण से बनते हैं।

(73) रूप
भोग्य सामग्री को काट–छाँट के साथ प्रस्तुत करने से निश्चित क्षेत्रों में विभाजित चित्र–भूमि।

(74) रेखा
निकट अथवा दूर अंकित बिन्दुओं के मध्य गति और निरन्तरता का आभास।

(75) रेखांकन
चित्रण की एक प्रविधि जिसमें केवल रेखाओं के द्वारा ही आकृति रचना की जाती है।

(76) रेखा वर्तना
छोटी–छोटी समान्तर रेखाओं के द्वारा आकृतियों में छाया अंकन। परस्पर काटती हुई रेखाओं का अंकन कहा जाता है।

(77) रेखा **(Line)**
वस्तुतः ज्यामितीय सिद्धान्तों के अनुसार रेखा दो निकटवती समतलों के बीच की सीमा का आभास मात्र है जिसका भौतिक अस्तित्व नहीं होता। किन्तु कला की परिभाषा में इस आभास को स्पष्ट रूप देने के उद्देश्य से जो गहरे रंग का बारीक अंकन किया जाता है उसे रेखा कहते हैं। आकारों को स्पष्टतया देने के लिए इस तरह का रेखांकन करना पड़ता है।

(78) रूपंकर कलाएँ, लचीली कलाएँ **(Plastic arts)**
Plastic शब्द का प्रयोग मूलतः गढ़कर बनायी कलाकृति के लिए किया जाता है जो उकेरकर (Carved) बनायी कलाकृति के ठीक विपरीत है।

(79) ललित कलाएँ **(Fine arts)**
ऐसी कलाएँ जिनके द्वारा कलाकार को अपनी स्वतंत्र प्रतिभा से सर्जनात्मक कृति निर्माण करने का अवसर मिले जैसेकि चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, नृत्य, नाटक, साहित्य।

(80) लय, ताल **(Rhythm)**
कला का एक महत्वपूण्र मूल तत्व जो कलाकृति के भिन्न अंगों को स्वाभाविक गतित्व में बांधकर उसे एकत्व प्रदान करता है जिससे दर्शक कलाकृति के भिन्न अंगों का बिना रूकावट क्रमबद्ध सौन्दर्यग्रहण कर कलात्मक अनुभूति प्राप्त कर लेता है। लय साधने के लिए कलाकार को आकार, रेखा, रंग, छटा वगैरह कला के सभी मूलाधारों का कुशलतापूर्ण प्रयोग करना आवश्यक होता है– केवल गतिपूर्ण रेखाओं से इसकी कार्यसिद्धि

नहीं।

(81) लोक चित्रण
सामान्य जन–जीवन का चित्रण जो धार्मिक विषयों से पृथक हो।

(82) लोक कला **(Folk art)**
साधारण लोगों द्वारा निर्मित परम्परागत चली आयी कला। इसमें धार्मिक एवं पुराने रिवाज, सौन्दर्य की परम्परागत कल्पना व उपयुक्तता को महत्व होता है व नवीनता या सर्जनशीलता का विचार नहीं होता।

(83) वर्ण **(Hue)**
रंग की वह विशेषता जिसके कारण उसे वर्णक्रम में (spectrum) अपना स्थान दिया जाता है और अन्य रंगों से पृथक् पहचाना जाता है।

(84) वर्ण गुण
वर्ण के तीन गुण हैं – (1) रंगत (2) बल अथवा मान तथा (3) सघनता।

(85) वर्ण एकता
किसी चित्र में वर्ण वृत्त के अनुसार लगाये गये निकटवर्ती उष्ण अथवा शीतल रंगों की योजना जैसे नारंगी–लाल–बैंगनी।

(86) वर्णिका
किसी चित्र में प्रयुक्त रंगों का विशेष समूह।

(87) वर्ण वृत्त
उष्ण तथा शीतल छः रंगों का चक्र एवं ओस्टवाल्ड का आठ रंगों का चक्र।

(88) वस्तुचित्रण **(Still-life painting)**
इसमें निर्जीव वस्तुओं का चित्रण किया जाता है। प्राचीन काल में वस्तुचित्रण करने का किसी को ख्याल नहीं आया। पाम्पेई के उत्खननों व रोम के भित्तिचित्रों में कुछ वस्तु चित्र मिले हैं किन्तु उसके पश्चात् 17वीं सदी तक वस्तुचित्रण अज्ञात ही रहा। कारवाद्ज्यों ने 16वीं सदी के अन्त में एक फलों का वस्तुचित्र बनाया। 17वीं सदी की डच कला से वस्तुचित्रण का विकास शुरू हुआ व फ्रेंच कलाकार शार्दं वस्तुचित्रण के पहले ख्यातनाम चित्रकार बने।

(89) वयन
कलाकृति में प्रयुक्त सामग्री से उत्पन्न होने वाला धरातलीय प्रभाव। यह चिकना अथवा खुरदरा आदि अनेक प्रकार का हो सकता है। इसकी रचना के तीन स्रोत हैं–प्राप्त, अनुकृत एवं मौलिक।

(90) वातावरणीय प्रभाव
स्थान, ऋतु, समय अथवा भावना के अनुसार चित्र में रंगों तथा छाया–प्रकाश की योजना।

(91) वायवीयता
छाया–प्रकाश एवं गढ़न शीलता के अभाव से आकृतियों में उत्पन्न होने वाला हल्कापन।

(92) वाश
चित्रतल पर रंग की पतली–पतली सतह लगाना। जब यह स्थानीय रूप से लगाया जाता है तो इसे स्थानीय वाश कहते हैं और जब सम्पूर्ण चित्र पर लगाया जाता है तो इसे सम्पूर्ण वाश कहते हैं।

(93) व्यापारिक कला **(Commercial art)**
वाणिज्य, प्रकाशन, प्रचार, संचार जैसे व्यापारिक क्षेत्रों में उपयुक्त कला जैसे कि विज्ञापन, व्यंग्यचित्र, पुस्तक–चित्रण, अक्षर–लेखन, पोस्टर आदि।

(94) शीतल वर्ण
वे वर्ण जो शीतलता का प्रभाव उत्पन्न करते हैं। जैसे नीला और हरा।

(95) श्वेतमिश्रित रंग **(Gouache)**
सफेद रंग मिला के गाढ़ा किये हुए रंग में चित्रण। इसके लिए कभी रंगीन कागज का भी धरातल के रूप में उपयोग किया जाता है।

(96) संयोजन **(Composition)**
कला के विभिन्न अंगों (रेखा, रंग, आकार, अवकाश, बुनावट आदि) की इस तरह रचना करना कि निर्मित कृति एकरूपता, सुसंगति, संतुलन व प्रभावोत्पादकता के गुणों से परिपूर्ण हो।

(97) सुवर्ण अवच्छेद, स्वर्णिम अनुपात **(Golden section)**
यह अनुपात प्राप्त करने के लिए रेखा को इस तरह विभाजित किया जाता है कि उसके बड़े हिस्से का छोटे हिस्से से अनुपात समूची रेखा के बड़े हिस्से से अनुपात के बराबर हो। यह अनुपात लगभग 5/8 होता है। यह अनुपात जहाँ कहीं भी प्रयुक्त हो अक्सर आदर्श माना गया है। वोल्तेर ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि ''हाथ से निर्मित कलाओं में भी अदृश्य ज्यामिति होती है।''

स्वर्णिम अनुपात को प्रथम सूत्रबद्ध करने का श्रेय ८
वित्रुवियस को जाता है जिस पर पुनरुत्थान काल में
ल्युका पाचिओली ने अधिक संशोधन करके उसे दिव्य
अनुपात (Divine proportion) नाम से प्रकाशित
किया जिसके लिए लिओनार्दो ने रेखा–लेख बनाये थे।

(98) सतह, पृष्ठ, धरातल, तल **(Surface)**
यह क्षेत्रदर्शक है व उसकी केवल लम्बाई व चौड़ाई
होती है, मोटाई नहीं होती।

(99) सम्मिति, सममिति **(Symmetry)**
आकृति या रचना की मध्यवर्ती रेखा या समतल की
दोनों ओर समरूपता।

(100) सुसंगति **(Harmony)**
रेखाओं, रंगों, क्षेत्रों आदि कला के मूलाधारों का चित्र में
आन्तरिक एवं अन्य मूलाधारों से सामंजस्य।

(101) स्टेन्सिल, क्षेपांकन आकृति **(Stencil)**
कागज जैसे पतले समतलीय पृष्ठ को काटकर छापने
हेतु बनायी आकृति या चित्र।

(102) स्वर्णानुपात
यूनानियों द्वारा विकसित अनुपात जिससे सौन्दर्यानुभूति
में सहायता मिलती है। इस क्रम 2 : 3 : 5 : 8 : 13 : 21 :
आदि है।

(103) स्थिरीकरण **(Fixing)**
चॉक, पेंसिल, कार्बन या पेस्टल जैसे अस्थिर माध्यमों में
बनाये चित्रों को कागज पर उचित द्रव का छिड़काव
करके स्थिर करना।

परिभाषिक शब्दावली

अर्द्धचित्र - Relief
अधखुली आँख - Halfclosed eyes
अर्ध मूर्ति (अर्ध प्रतिमा) - Bust
अर्धछटा - Half-tone
अक्षर कला - Calligraphy, Lettering
अंकन - Drawing
अंग - Limb, Canon
अकादमी - Academy
अश्ममुद्रण - Lithography, Surface printing
अमूर्त - Abstract
अमूर्त - Abstract
अमल–लेखन - Aquatint, Etching
अधिष्ठापन - Installation
अक्षिपटल - Retina
अभिधा - Denotation
अभियोजन - Adjustment
अभिप्राय - Motif
अभिज्ञान - Recognition
अभिव्यंजना - Expression
अभिव्यक्ति - Expression
अभिवृत्ति - Attitude
अतियाथार्थवाद - Surrealism
अतिन्द्रिय - Transcendental
अतिवाद - Extremism
अन्विति - Unity
अभ्यास - Practice, Training
अभ्यास चित्र - Sketch
अपकर्ष - Anticlimax
अपरिष्कृत - Coarse
अपारदर्शी - Opaque
अज्ञेय तत्व - Noumenon
असंगति - Anamoly
असमिमतीय - Asymmetrical
अस्तर - Primer, Priming
अवधारणा - Concept
अवबोधन - Perception
अवकाश - Space
अचेतन - Unconscious
अचल - Region
अन्वंकन - Rendering

अनुरूप - Analogous
अनुकृति - Copy
अनुकरण - Imitation
अनुचित्रित मुद्रण - Offset printing
अनुभव - Experience
अनुपात - Proportion
अनुरेखण - Tracing
अनुदर्शी (प्रदर्शनी) - Restropective (exhibition)
अन्तराल - Space
अन्तर्ज्ञान - Sixth-sense, Intution
अग्रभाग - Foreground
अलंकृत शैली - Decorative -Style
अलंकरण - Decoration
अलकार - Rhetor
अश्लील - Obscene
अलौकिक - Imaginative, Supersensus
आधुनिक कला - Modern art
आयाम - Dimension
आघात - Accent
आख्यान - Fable
आद्यबिम्ब - Archetype
आकृति - Figure, Shape, Form
आकृति उत्कीर्णन - Intaglio
आकृतिमूलक - Figurative
आकार - Size
आकाशीय दूरदृश्यलघुता - Aerial perspective
आदिरूप - Prototype
आदिम - Primitive
आदिम कला - Primitive art
आहार्य - Ariculate, Acquired
आभास - Semblence, Appearance
आरोपण - Projection
आरेख - Diagram
आरेखण - Drawing
आदर्श - Model, Ideal
आदर्शवाद - Idealism
आवक्ष मूर्ति - Bust
आवर्तन - Repetition
आवेग - Impulse
आफसेट मुद्रण - Offset printing
आत्म स्वीकृति - Confession
आत्म–चित्र - Self-portrait
औचित्य - Propriety, Decorum
आनन्द - Delight

आलंकारिक - Ornamental
आलंकारिक रचना - Pattern
आलमबन - Plumb line
इम्पेस्टो - Impasto
इन्द्रियवाद - Sensualism
इच्छा - Desire
उभार - Relief
उपमा - Simile
उद्दीपक - Stimulus
उपाख्यान - Episode
उद्भावना - Ideation
उदात्त - Lofty, Sublime
उत्खनन - Engraved
उत्कीर्ण - Engraved
उत्कीर्णन - Engraving, carving
उत्तरोत्तर क्रम - Successive order
उज्जवल - Bright
ऊष्ण रंग - Warm colour
ऊर्ध्व - Vertical
एकाकी - Solitary
एकाश्म - Monolith
एकवर्णी - Monochromatic
एकवर्णी चित्रण - Monochromatic painting
ऐन्द्र - Sensuous
ओप - Glaze, Patina
ओप - Overcoat, polish
कर्णवत् - Diagonal
कठोर किनार चित्रण - Hard-edge painting
कथानक रूढ़ि - Motif
कल्पित - Imaginary
काष्ठ कर्तन - Wood cut
कांच चित्रण - Glass painting
काम - Pleasure
कौशल - Craftsmanship, Virtuosity
कोशल - Skill
कौतूहल - Interest, Eagerness
कोलाज - Collage
काल - Time, Period
काल दोष - Anachronism
कसौदी - Criterion
कुण्डली–चित्र - Scroll
कुट्टी - Papier mache
कैनवास - Canvas
कलम - Bursh, Style of painting
कलम - School
कल्पना - Imagination
कला - Art
कला शैली - School
कला वीथी - Art gallery
कला–तत्व - Art of the art's sake
कलाकार - Artist
कलापारखी - Connoiseus
क्रेयान - Crayon
खड़िया - Chalk
खनिज रंग - MIneral colour
खाका - Lay out
खड़ी रेखा - Vertical line
गति - Movement, Motion
गतिशील - Dyanamic
गीताम्क - Lyrical
गो मूत्रिका - Meander
गोदना - Tattooing
ग्वाश - Gouache
गच - Stucco
गुफा चित्र - Cave art, cave painting
घनत्व - Solidity, Volume
चमत्कार - Amazement
चारू - Lovely
चारण - Bard
चेहरा - Face, mask
चेतन - Conscious
चेतना - Sentience
चित्र - Picture, Painting
चित्रण चाकू - Painting Knife
चित्रकला - Art of Painting
चित्रारोपण - Montage
चित्रोपम - Picturesque
चित्रवल्लरी - Frieze
चित्रित - Painted
चित्रित पर्दा - Tapestry
चित्तवृत्ति - Fluctuations of mind
चिह्न - Sign
चिन्तन - Thinking
छींट - Batik
छाया - Shade
छाया प्रकाश चित्रण - Chiaroscuro
छायाचित्र - Silhoutte
छाप चित्र - Print
जटिलता - Complication
जनसंचार माध्यम - Mass-media
जनजाति चिन्ह - Totem
ज्यामितिक - Geometric

ज्यामितीय आकार - Geometric form
टेम्पेरा रंग - Tempera colour
ठंडे रंग - Cool colours
ठप्पा - Block
ठप्पा - Seal
डाय - Dye
ड्राय पाइंट - Dry-point
ढांचा - Armature, Cradling
ढालना - Casting
तृतीय रंग - Tertiary colours
तंत्र कला - Tantra art
ताम्र - Copper
तारपीन - Turpentine
तादात्म्य - Empathy
तोरण - Arch
तान - Tone
ताल - Head, Cannon of Proportion
ताल - Rhythm
तेल चित्रण - Oil painting
तेल रंगीय छाप चित्र - Oleograph
तनाव - Tension
तूलिका - Brush
तूलिकाघात - Bursh stroke
तिपायी - Easel
थंका - Thunka
दरबारी कला - Court art
दशा - Condition
दस्तकारी - Handicraft
दूरी - Distance
दूरदृश्यलघुता - Perspective
दृश्य - Visible, Scene
दृश्य कलाएँ - Visual arts
दृष्टि - Vision, Sight
दृष्टि रेखा - Eye-level, Eye-line
दृष्टिजन्य मिश्रण - Optical mixture
दिव्यानन्द - Ecstacy
द्विमितीय - Two dimensional
द्विवर्णिक - Dichromatic
द्वितीय रंग - Secondary colours
धब्बांकन - Patch work
धड़ प्रतिमा - Torso
नीति निरपेक्ष - Amoral
नेत्रीय - Optical
नैतिक - Moral
नैसर्गिक - Innate, Natural
नन्दतिक - Aesthetic
नटराज - Nataraja
नगन–मूर्ति - Nude
नग्न–चित्र - Nude
निष्ठा - Sincerity
निष्कर्ष - Empitome
निष्पादन - Execution
निरूपण - Portrayal
नियम - Rule, Canon of proportion
नियमन - Control
निजिता (रंग की) मान - Hue
पर्यावरण - Environment, Milieu
पर्यवेक्षक - Observer
परिष्कार - Polish, Refinement
परिकल्पना - Design, Disegno
परिमाण - Quantity
परिप्रेक्ष्य - Perspective
पवित्र प्रतिमा या मूर्ति - Icon
पहेली - Riddle, Maze
पर निरपेक्ष - Exclusive
परम्परागत कला - Traditional art
परत पद्धति रंगांकन वाश - Wash painting
पाषाण युग - Stone age
पाण्डुलिपि - Manuscript
पात्र - Character, Pot
पार्श्व - Side
पार्श्व दृष्टि - Side View, Profile
पोस्टर रंग - Poster colour
पोत - Texture
पच्चीकारी - Mosaic
पुराण कथा - Myth
पुरातन - Archaic
पुरालेख - Epigraph
पुनरावृत्ति - Repetition
पट–पत्री, कुण्डलित पट - Scroll
पूर्णरूप - Prototype
पूरण - Filling
पूर्वाभास - Foreshadow
पूर्वापर क्रम - Preceding Order
पलस्तर - Plaster
प्रक्षेपण - Projection
प्रकृति चित्रण - Landscape painting
प्रकृत - Naivite
प्रकार - Genre, Kind
प्रमाण - Size
प्रविधि - Technique
प्रतिमा - Image

प्रतिमा (मूर्ति) - Statue
प्रतिबिम्ब - Image, Reflection
प्रतिक्रिया - Reaction
प्रतिनिधित्व - Representation
प्रतिभा - Talent
प्रतिपादक - Exponent
प्रतिस्थापना - Antithesis
प्रतिच्छाया - Shadow
प्रभाविता - Dominance
प्रभाववाद - Impressionism
प्रशंसा - Praise
प्रौढ़ता - Maturity
प्रागैतिहासिक कला - Prehistoric art
प्रसंग संकेत - Alusion
प्रस्तुति - Representation
प्रत्यय - Idea
प्रतीक - Symbol
फलक - Panel, Paper-board
फूलकारी - Diaper
फ्रेस्को - Fresco
बहुदेववाद - Polytheism
बहुवर्णीय - Polychromatic
बहुआयामी - Multi dimensional
बोध - Perception
बुनकारी - Textile art
बुनावट–पोत - Texture
बल - Value, Emphasis
बिम्ब - Image, Model
भंगिमा - Pose
भाव - Emotion, Mood
भावना - Feeling
भूदृश्य - Land Scape
भित्ति चित्र - Fresco, Mural painting
मृण्मूर्ति - Terra cotta
महराब - Arch
मान - Value
मानसिक - Mental, Intellectual Rational
मानवचित्रण - Life Painting
मुलम्मा करना, ओप - Gilding
मनोविकार - Emotion
मनोहर - Seductive
मनोदृष्टि - Attitude
मूर्त - Concretem Formal, Morphological
मूल रंग - Primary colours
मूल्य - Value
मूलभाव (अभिप्राय) - Motif
मिथ्याभास - Hallucination
मूलप्रवृत्ति - Instinct
यथार्थवाद - Realism
युक्ति - Skill
रंजक - Painter
रंग–विधान - Colour scheme
रंगत - Hue
रसिक - Critic
रीति - Manner
रोमांच - Thrill
रस - Aesthetic Delight
रसाास्वादन - Appreciation
रसानुभव - Aesthetic experience
रचना - Creation
रत्यात्मक कला - Erotic art
रेखीय परिप्रेक्ष्य - Linear perspective
रेखा - Line
रेखांकन - Drawing
रूप - Form
रूपंकर कलाएँ - Plastic arts
रूपान्तर - Adaptation, Transformation
रूपवाद - Formalism
लय - Rhythm, Melody
लघुचित्र - Miniature painting (work of art)
लघुतम कला - Minimal art
लक्षण - Attribute, Sign, Symbol
ललित - Fine
ललित कल्पना - Fancy
ललित कलाएँ - Fine arts (French-Beaux arts)
लाइनो कट - Lino cut
लालित्य - Grace
लावण्य - Charm
लोक कला - Folk art
लोककला - Folk Art
लोकोत्तर - Supersensous
लोपी बिन्दु - Vanishing point
वर्ण - Chrome, Hue
वर्ण नियोजन - Descriptive art
वर्ण चक्र - Chromatic circle, colour circle
वर्ण तीव्रता - Intensity of colour
वर्णहीन - Achromatic
वर्णक्रम - Spectrum
व्यंग्य - Sugestive
व्यक्ति चित्रण - Life, Life drawing
व्यवहार - Behavior
वयन - Texture

वर्णिक - Chromatic
वर्णिका भंग - Brushing
वर्तिका - Brush
वर्तिका - Pencil, Crayon, Pastel
वारनिश - Varnish
वास्तविक - Actual, Real
वास्तु कला (वास्तु विद्या, स्थापत्य) - Architecture, Architectonics
वास्तुकार - Architect
वातावरणीय परिप्रेक्ष्य - Aerial perspective
वस्तुचित्रण - Still-life painting
वस्तुनिष्ठ - Objective
वस्तुनिरपेक्ष कला - Abstract art
वर्तना - Shading
वेदी - Altar
विषयवस्तु - Content
विकृतिकरण - Distoration
विकास - Development
विरोध - Contrast
विज्ञापन - Advertisement
विस्तरण - Elaboration
विस्तार - Extension
विश्वसनीय - Believable
विट्रुवियन आकृति - Vitruvian figure
शबीह - Portrait
शरीर रचना विज्ञान - Anatomy
शास्त्रीय - Classical
शैक्षणिक - Academic
शैली - School, Style
शैली - Style, Diction
श्वेत मिश्रित रंग - Gouache
शिष्ठता - Decorum
शिल्प - Craft
शिल्पकारिता - Craftsmanship
शिलाचित्र - Rock painting
शिलालेख - Epigraph
सद्य - Instantly
संयोजन - Composition
संयोग - Accident
संरचना - Structure
संवाहन - Conduction
संवेदन - Sensation
संवेदनशील - Sensitive
संगति - Consistency
संग्रहालय - Museum
सम्प्रदाय - School
सम्प्रेक्षण - Communication
समाधि - Concentration
समाधि गुफाएँ - Catacombs
स्मारकीय - Monumental
समन्वय - Synthesis
सम्मिति - Symmetry
सहयोग - Unity
सहज - Spontaneous, Naive
सक्रान्ति - Transition
सुवर्ण अवच्छेद - Goldern section
सुन्दर - Beautiful
सत्य - Face
सतही मुद्रण - Surface printing
सत्याभास - Verisimilitude
सज्जा कला - Decorative art
सर्जनशीलता - Creativity
सूक्ष्म - Abstract, Mycoroscopi
सृजनात्मक - Creative
स्थायीभाव - Sertimert, Pemianert mood
स्थापित कला - Academic art
स्वर्णिम अनुपात - Golden section
स्फ्यूमातो (इटा.) - Sfumato
स्वप्न - Fantacy
स्वचलता या स्वयंचालितता - Automaticism
स्तम्भ - Pillar
स्तर - Layer, Standard
स्तूप - Stupa
साधारणीकरण - Generalisation
सामंजस्य - Concordance, Harmony
सादृश्य - Similitude
सौम्यरूप - Idyll
सौन्दर्य - Beauty
सौन्दर्यशास्त्र - Aesthetics
सिद्धान्त - Principle
स्थिति - Situation
स्थिर - Static
हरण - Plagiarism
हस्तलिपि कला - Chirography
श्रृंगारिक - Erotic
श्रृंगार - Erotice
क्षैतिज - Horizontal
क्षेपांकन–आकृति - Stencil drawing, stencil
क्षितिज रेखा - Horizontal line